मनुस्मृति रत्नावली

अर्थात्

मनुस्मृति के प्रत्यक्ष में सान्सारिक सर्व सुखोत्पादक तथा मोक्ष मार्ग को प्रकाश स्वरूप श्लोक रत्नों की अवली माला । जिसको

धर्म जिज्ञासुओं के हितार्थ लीलापति ने सङ्ग्रह कर

भाषार्थ टीका सहित निर्माण किया

और यह ग्रन्थ श्रीमान् लाला बांके लाल परम देश हितैषी ने परोपकारार्थ

विद्याविलास यन्त्रालय जौहरी बाज़ार आगरा में

लाला ख्यालीराम के प्रबन्ध से मुद्रित कराया

प्रथमबार	सम्बत	मूल्य
१००० प्रति	१९४६	डाकव्यय

हस्ताक्षर कन्हैयालाल शर्मा बेला ज़िला इटावा निवासी।

सूचीपत्र

ओ३म्

भूमिका

श्लोक

प्रणम्य जगदाधारं सच्चिदानन्दमीश्वरम् ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते मनु संग्रहः ॥

प्रथम उस जगदाधार अर्थात् यह जगत जिस में उत्पत्ति के पूर्व और प्रलय के अनन्तर रहता है और उत्पन्न होकर जिसमें स्थित होता है तथा इस (जगत) का पालन और रक्षण जो करता है ऐसे सर्वाधार, सर्व उत्पादक, सर्व पालक, सर्व रक्षक, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, नित्य, निराकार, निर्विकार, अमित, अनादि, अनन्त, अचिन्त्य, अप्रमेय शुद्ध, बुद्ध, सत, चित, आनन्दस्वरूप, अतिदयालु, न्यायकारी, सर्वहितकारक, दीनोद्धारक, बुद्धि विस्तारक, ईश्वर को सविनय अनन्त प्रणाम कर अर्द्ध शिक्षित बालकों के सुख पूर्वक ज्ञानार्थ मनुस्मृति के सात सौ (७००) रत्न संग्रह कर भाषार्थ (टीका सहित) निर्माण करता हूं, और इसके करने की आवश्यकता भी दर्शाता हूं। यह वही भारतवर्ष है जो सम्पूर्ण पदार्थ रत्नों की खानि समस्त देशों में उत्तम सर्व का मुकट मणि स्वर्गवत् भूमण्डल विख्यात यहां के बासी समस्त विद्या, सर्व धन, धान्य सम्पन्न देववत भोग करते थे। सो भारत अब जैसा आरत है सभी जानते हैं लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं, अतएव समस्त देशहितैषी विद्वज्जन भारतोद्धारणार्थ अनेक सभा सामाजिक नियम संशोधन अतिव्यय निवारण स्त्री शिक्षादि अनेक

यत्न कर रहे हैं ॥

यथा हिन्दी समाचार पत्रों का प्रचार तिनमें देशोपकारी लेखों की भरमार हिन्दी भाषा में उपयोगी ग्रन्थों का अधिक सञ्चार अनेक विद्वान् निर्माण कर रहे हैं तथा फूट के निवारण को · एकता सञ्चारण को · राज्य गृह से हानि कारक उर्दू (अक्षरों) के निकारण को · अति सुगम यथार्थ बाचक नागरी विस्तारण को · भारत की बर्त्तमान दुर्दशा के टारन को गवर्नमेण्ट से भी प्रार्थना कर रहे हैं · परन्तु भारत की अनुदिन दशा हीन ही होती जाती है · इस लिखने से मेरा यह प्रयोजन नहीं कि देश हितैषियों के समस्त उपाय निष्फल हो जाते हैं किन्तु देश हितैषियों के उद्देश्य यथार्थ सफल नहीं होते · इसका मुख्य कारण मैं ने तो यह निश्चित किया है कि भारत बासियों को धर्म तथा स्वस्व कर्म में प्रीति का अभाव और अधर्म का फल है । प्रथम अधर्म का किञ्चित निदर्शन (नमूना) दिखाता हूं · देखिये कन्याओं पर सामाजिक अन्याय · प्रथम तो उन को सम्पूर्ण सुख का मूल विद्या नहीं पढ़ाना और अति बालिका को धन के लोभ से सर्बगुण रहित अति बृद्ध को देना तथा किसी जाति में धन के अभाव से अधिक उमर तक कन्या का विवाह न करना · इत्यादि कारणों से व्यभिचार · गर्भपातनादि अनेक पातक होते हैं । धर्म के अभाव को भी देखिये · धर्म शास्त्र के अनुसार धर्म और कर्म को न करना · इतना ही नहीं किन्तु अधिकांश मनुष्य तो प्राय: यह भी नहीं जानते कि धर्म किसको कहते हैं और हमारा कर्म क्या है · यहां तक कि कोई कोई कहते हैं धर्म शास्त्र के अनुसार चलना अति कठिन है पृथ्वी पर पैर धरने को भी सावकाश (जगह) नहीं और कोई कहते हैं शास्त्र के अनुसार चलने में पृथ्वी पर तृण धरने की भी जगह नहीं अस्तु अब पाठक स्वयम बिचार कीजिये कि धर्म में प्रवृत्ति कैसे हो · और बिना धर्म के सुख कहां · सुख तो धर्म का फल है · अधर्म का फल दुःख

हीहै यह समस्त वेदशास्त्रों का सिद्धान्त है । और सज्जनों को अनुभव सिद्ध है लिखने की कोई आवश्यकता नहीं फिर धर्म की अधिकता बिना देशोन्नति तथा देश हितैषियों के उद्देश्यों की सफलता अति असम्भव है । इस सब अनर्थ का अर्थात भारत वर्ष में अधर्म की अधिकता और धर्मशास्त्र में तथा धर्म । कर्म में अरुचि का मुख्य कारण विद्या का अभाव है । जिसके बिना धर्म शास्त्र को न जान कर मन माने सामाजिक नियम तथा धर्म कर्म कल्पना कर लेते हैं और विद्या शून्य इन्हीं (आधुनिक अशास्त्रीय) नियमों में प्रवृत्त होअति कठिन क्लेश सहित कालक्षेप कर मनुष्य जन्म वृथा नष्ट करते हैं॥

दूसरा धर्मशास्त्र में अरुचि का कारण यह है कि अनेक नवीन मत ऐसे कठिन हैं जिन (नवीन मतों) के अनुसार चलने वालों को अति कठिनता पड़ती है इसी से वे धर्म शास्त्र प्रतिपाद्य धर्म । कर्मों को भी कठिन जानते हैं क्योंकि धर्म शास्त्र तो उन्होंने कभी देखा ही नहीं । जो देखते तो ऐसे कठिन क्लेश दायक नवीन अशास्त्रीय मतों में क्यों फस अपना समय नष्ट करते । अतएव मैं यह छोटा सा ग्रन्थ (जिसमें चतुर्थांश मानव धर्मशास्त्र के श्लोक हैं) आप लोगों की सेवा में समर्पण करता हूं इसी को प्रीति पूर्वक आदि से अन्त तक देखिये । स्वयं जान लोगे कि धर्म शास्त्र के अनुसार ऐहिक पारमार्थ (इस लोक । परलोक के अर्थ) कर्म कैसी सुगमता से हो सक्ते हैं । जिन (शास्त्रानुसार धर्म । कर्म करने) से इस लोक में सर्व सुख और परलोक में मोक्ष अवश्य मिलती है और यह भी जान लोगे कि नवीन अशास्त्रीय मतों के अनुसार चलने में ही अति कठिनता है । धर्मशास्त्र के अनुसार चलने वालों को अति सुगम मार्ग तथा समस्त पदार्थ ईश्वर ने बनाये हैं ॥

अब इसमें यह प्रश्न उठता है कि सम्पूर्ण मनुस्मृति (जिसके

अनुकूल बर्त्तने से पूर्व काल में समस्त भारत बासी स्वर्ग के समान (भोग करते थे) बर्त्तमान में उपास्थित है उस से ही भारत बर्ष का कुछ उपकार नहीं होता तो इस तुम्हारे क्षुद्र ग्रन्थ से (जिसमें चौथाई मनु के श्लोक हैं) क्या उपकार होने की सम्भावना है ॥

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि प्रथम तो मनुस्मृति संस्कृत होने से सर्व साधारण देख ही नहीं सक्ते (द्वितीय मनुस्मृति में मद्य (मांसादि की बिधि के श्लोक भी बहुत हैं जिन को विद्वान् तो क्षेपक (पीछे के मिलाये कहते हैं और अति प्रबल यह युक्ति भी देते हैं कि मनुजी महाराज अपने ग्रन्थ में अति बिरोध कभी न लिखते जिन्हों ने चारों वर्णों को अहिंसादि दश लक्षण का धर्म अपने ग्रन्थ में लिखा है और अनेक श्लोकों कर के मद्य (मांस का निषेध किया है (वे कभी (मद्य मांस की) बिधि करते ? कदापि नहीं (ऐसा परस्पर बिरोध तो कोई आधुनिक अल्पज्ञ कवि भी एक ग्रन्थ में नहीं लिखता फिर सर्वज्ञ महर्षी मनुजी लिखते ? कदापि नहीं (लीजिये प्रत्यक्ष ही देखिये (बर्त्तमान में मनुस्मृति के पाञ्च पुस्तक पृथक पृथक सम्बत्सर में मुद्रित हुए मेरी लेखिनी के सन्मुख उपास्थित हैं यथा सन् १८३० - कलकत्ता (१८७८ - काशी (१८६६ - १८८७ - १८८८ ई - श्रवी मुम्बई इन पाञ्च पुस्तकों में से सन् १८८८ में मुद्रित हुई मनुस्मृति के अध्याय एकादश (११) में किसी कुशाग्र बुद्धि ने (संख्या ५२ की देखो) यह श्लोक मिलाया है (

"दीपहर्त्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत
हिंसया व्याधि भूतस्तु स्फीतो ऽन्यस्वभिमर्षकः"

इस श्लोक सहित इस पुस्तक के ग्यारहवे अध्याय में २६६ श्लोक हैं शेष पूर्व मुद्रित पुस्तकों में इस श्लोक के न होने से २६५ ही श्लोक हैं ॥

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि निन्दित श्लोक किसी द्वेषी, वेदविरोधी, अन्य मतावलम्बी ने मिलाये हैं, अस्तु इन निंदित (मद्य, मांसादि विधायक) श्लोकों के होने से वर्त्तमान में अनेक महाशय घृणा कर मनुस्मृति को देखते भी नहीं ॥

यदि कोई कहे कि भाषाटीका सहित भी मनुस्मृति छपी है और संक्षेप भी "मानव धर्मसार" तथा "मानव धर्म विचार" भाषाटीका सहित छपे हैं उन से भारत का उपकार नहीं हुआ फिर तुम्हारे इस ग्रन्थ से क्या होगा। उत्तर - प्रथम तो यह असम्भव है कि उनसे कुछ उपकार न हुआ हो किन्तु उनसे भी कुछ उपकार हुआ ही है, द्वितीय भाषा टीका सहित मनुस्मृति का विस्तार भी अधिक होगया तथा मूल्य भी उसका ५) मुद्रा से अधिक है इससे सर्व साधारण नहीं लेसक्ते और जो किसी धनी ने ले भी ली तो वे इतने बड़े ग्रन्थ को आलस्य से नहीं पढ़ते क्योंकि हिन्दी में प्रीति तो प्रायः धनी लोगों की है ही नहीं यदि किसी हिन्दी रसिक ने पढ़ी भी तो पूर्वोक्त (मद्य, मांसादि विधि के) दोषों से श्रद्धा होनी अति कठिन है॥

इसी प्रकार "मानव धर्मसार" में २०० ही श्लोक हैं सो भी उपयोगी नहीं और "मानव धर्म विचार" में भी थोड़े ही हैं उससे भी धर्म, कर्म का पूर्ण ज्ञान होना असम्भव है, अतएव यह ग्रन्थ (जिसमें अत्यन्त उपयोगी चौथाई मनुस्मृति भाषार्थ टीका सहित) वर्त्तमान में अति उपकारक है क्योंकि समस्त मनु में कुछ कम तीन सहस्र (हज़ार) श्लोक हैं जिसमें अर्द्ध तो राज्य धर्म के हैं सो तो वर्त्तमान में (अन्य मतावलम्बी राजा होने से) अति उपयोगी नहीं और एक चौथाई निन्दित (मद्य, मांसादि की विधि के) हैं, शेष रहे एक चौथाई सो अत्यन्त उपयोगी होने से समस्त इस ग्रन्थ में आय ही गये हैं और अर्थ भी इसका हिन्दी सरल भाषा में किया है, किसी किसी श्लोक पर उचित टिप्पणी तथा क्रिया करने की विधि, बलिवैश्वदेव का यंत्र भी लिखा है, मनुस्मृति की उ-

तमता को तो प्रायः सभी जानते हैं कि वेद के अनुकूल समस्त ग्रन्थों से उत्तम तथा पहिले की रचित है और अनेक ग्रन्थों में इसकी प्रशंसा भी लिखी है. यथा. श्लोक

"तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानिच
धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्यावन्न दृश्यते"
"वेदार्थोपनिबद्धत्वात प्राधान्यंहि मनोः स्मृतिः
मन्वर्थविपरीतायासास्मृतिर्नप्रशस्यते"

भावार्थ - न्यायव्याकरणादि शास्त्रों की शोभा तभीतक है जब तक अर्थ धर्म मोक्ष का बताने वाला मानव धर्म शास्त्र (मनुस्मृति) नहीं दीखता ॥

धर्म शास्त्र के कर्त्ताओं में मनु जी सब से प्रधान तथा मान्य हैं क्योंकि उन्होंने अपनी मनुस्मृति में सम्पूर्ण वेदों का तात्पर्य लिखा है और जो मनुस्मृति से विरुद्ध है सो कदापि माननीय नहीं है ॥

महाभारत में भी लिखा है कि मानव धर्म शास्त्र वेद वेदाङ्ग ही की व्याख्या है "पुराणंमानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम"
कहां तक लिखूं इस की प्रशंसा का एक ग्रन्थ पृथक होना चाहिये इस में अधिक प्रशंसा लिखने की आवश्यकता नहीं। फिर क्यों इस से उपकार की सम्भावना नहीं है? अवश्यमेव है. अब समस्त पाठकों से सविनय प्रार्थना कर पूर्ण आशा है कि जो इस ग्रन्थ में (मेरी अल्पज्ञता से) अशुद्ध तथा अनुचित शब्द लिखे गये हों उन्हें शुद्ध कर पढेंगे और मुझे क्षमा करेंगे तथा मेरी अल्पज्ञता की ओर ध्यान न देंगे किन्तु मेरा हार्दिक आशय समझ एक बार इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक अवश्य पढेंगे और इससे लाभ उठावेंगे। इति शम्

(लीलापति)

ओ३म

मनुस्मृति रत्नावली

प्रथमोऽध्यायः

मूल- मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ।
प्रति पूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १

अर्थ- महानुभाव महर्षियों ने समस्त वेदादि ज्ञाता एकाग्र चित्त सुखासीन प्रश्नोत्तर योग्य महर्षी मनु महाराज के निकट जा यथा विधि से प्रति पूजन कर यह प्रश्न किया ॥ १ ॥

मूल- भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ।
अन्तर प्रभवाणांच धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २

अर्थ- हे भगवन् (षट् भग ऐश्वर्यादि सम्पन्न) आप समस्त वर्ण तथा अन्तर प्रभवों के धर्मों को यथा क्रम हमारे प्रति यथा वत कहने को योग्य हैं ॥ २ ॥

१- प्रति पूज्य अर्थात प्रथम मनु महाराज ने महर्षियों का आसनादि से सत्कार किया तदनन्तर महर्षियों ने मनुजी की प्रशंसा कर प्रश्न किया। वेद मतावलम्बी सुख की इच्छा वाला तथा जो इसे पढ़ सके सो इस ग्रन्थ का अधिकारी है अर्थात वह इसे पढ़े। धर्म ही इसका विषय है अर्थात इस ग्रन्थ में धर्म प्रति पादन करा है। ग्रन्थ और विषय का परस्पर प्रति पाद्य प्रति पादक भाव सम्बन्ध हैं। इस लोक और परलोक में सुख तथा मोक्ष इसका प्रयोजन है अर्थात इसको पढ़ इसके अनुसार चलने से सुख और

मूल- त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्वार्थ वित्प्रभो ॥ ३

अर्थ- हे प्रभु! इस समस्त विधि जो कि अपौरुषेय, अचिन्त्य, अप्रमेय, वेदप्रतिपाद्य अग्निहोत्रादि के जानने वाले तथा तत्ववेत्ता आप (एक) अद्वितीय हैं ॥ ३ १

मूल- मतैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः।
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥ ४

अर्थ- जब महर्षियों ने यह प्रश्न किया तब तेजमान मनुजी सब महर्षियों की सम्यक प्रकार पूजा कर बोले कि सुनिये ॥ ४

मूल- एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ ५

अर्थ- इस हमारे समस्त शास्त्र को ये भृगु मुनि आप को सुनावेंगे क्योंकि यह सम्पूर्ण इन्होंने हम से पढ़ा है ॥ ५

मूल- ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः।
तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ६

अर्थ- जब इस प्रकार महर्षी मनु जी ने कहा तब भृगु प्रसन्न चित्त तिन समस्त महर्षियों से बोले कि प्रीतिपूर्वक सुनिये ॥ ६

मोक्ष होती है ये चार अनुबंध चार श्लोक में मनुजी ने दिखाये हैं इनके दिखाने से यह प्रयोजन है कि इनके बिना जाने बुद्धिमान् किसी ग्रन्थ में प्रवृत्त नहीं होते ॥

२- सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, यश, श्री (शोभा), ज्ञान, वैराग्य ये छः जिस में सो भगवान् और स्त्री में हों तो भगवती कहाती है ये ही छः भग हैं ॥

३- अपौरुषेय अर्थात ईश्वर रचित अचिन्त्य तर्क करके अबाधित अप्रमेय प्रमाण शून्य अर्थात स्वतः प्रमाण ऐसा वेद है ॥

मूल- अध्यापन मध्ययनंयजनंयाजनन्तथा ।
दानंप्रतिग्रहञ्चैव ब्राह्मणा नामकल्पयत ॥ ७

अर्थ- विद्यापढ़ना, पढ़ाना, यज्ञकरना, कराना, दानदेना, और लेना, ये छः कर्म ईश्वर करके ब्राह्मणों के अर्थ रचेगये ॥ ७ ॥ १

मूल- प्रजानांरक्षणंदान मिज्याध्ययन मेवच ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ८

अर्थ- प्रजाकारक्षणकरना, दान देना, यज्ञकरना, विद्यापढ़ना, विषयों में आसक्त नहोना, ये कर्म संक्षेपसे क्षत्रिय के हैं ॥ ८ ॥

मूल- पशूनांरक्षणंदान मिज्याध्ययन मेवच ।
वणिक्पथंकुसीदंच वैश्यस्य कृषिमेवच ॥ ९

अर्थ- गोआदि पशुओं की रक्षाकरना, दानदेना, यज्ञकरना, विद्यापढ़ना, वाणिज्य करना, व्याज लेना, खेती करना) ये कर्म वैश्य के लिये रचेगये ॥ ९ ॥

मूल- एकमेवतु शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ १०

अर्थ- एकही निन्दा रहित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों की सेवा शूद्र का कर्म प्रभुनेनिर्मित किया है ॥ १० ॥

मूल- इदंस्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदम्बुद्धिविवर्द्धनम् ।
इदंयशस्य मायुष्य मिदंनिःश्रेयसंपरम् ॥ ११

अर्थ- यहशास्त्र बुद्धि, यश, आयुष का विवर्द्धक (बढ़ाने वाला) और

---

१ -- यहांतक अर्थात् प्रथमाध्याय के ८७ श्लोकतक जगत की उत्पत्ति कही सो इस (ग्रन्थ) में विस्तार के भयसे नहीं लिखी, जगत की उत्पत्ति के अनन्तर ब्राह्मणादि के कर्म कहे जिन (अपने २ कर्मों) को प्रीतिपूर्वक करने से ही सुख होना सम्भव है अन्यथा नहीं ॥

मोक्ष का दाता अत एव स्वस्ति का मन्दिर है अर्थात् इससे मनुष्य सर्व सुख पाता है ॥११॥ *

मूल- अस्मिन् धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥१२

अर्थ- इस (मनुस्मृति) में सम्पूर्ण धर्म तथा कर्मों के गुण दोष चारों वर्णों का सनातन आचार कहा है ॥१२॥

मूल- आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥१३

अर्थ- श्रुति स्मृति (वेद और धर्म शास्त्र) प्रतिपाद्य परम धर्म आचार है अतएव अपने हित के नित्य कांक्षी द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) इस शास्त्र में सदा युक्त रहें ॥१३॥ *

मूल- आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेद फलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥१४

अर्थ- आचार से रहित ब्राह्मण वेद फल को नहीं भोग सक्ता आचार करके संयुक्त समस्त फल का भागी होता है ॥१४॥

मूल- एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारञ्जगृहुः परम् ॥१५

अर्थ- इस प्रकार मुनियों ने धर्म की प्राप्ति आचार से देख समस्त तप का

---

११ - पाठक ! बिचारिये भृगुजी इस (धर्म शास्त्र) से ही यश, बुद्धि, आयुष, मोक्ष, एवं सर्व सुख की प्राप्ति कहते हैं फिर इसके बिना पढ़े सुख कब हो सक्ता है ॥

१३ - भृगुजी कहते हैं कि इस लोक तथा परलोक में हित (सुख) की इच्छा करें तो इसके अनुसार ही बर्त्ते, मेरी प्रार्थना यह है कि ऐसे सुख समुद्र को छोड़ वृथा मृगतृष्णा में क्यों भटकते हो ॥

मूल आचार ग्रहण किया ॥ १५॥

मूल - जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कार विधिमेवच ।
व्रतचर्य्योपचारञ्च स्नानस्य च परम्बिधिम् ॥ १६
दाराधिगमनञ्चैव विवाहानाञ्च लक्षणम् ।
महायज्ञ विधानञ्च श्राद्ध कल्पश्च शाश्वतः॥ १७
बृत्तीनां लक्षणञ्चैव स्नातकस्य व्रतानिच ।
भक्ष्या भक्षञ्च शौचञ्च द्रव्याणां शुद्धिमेवच ॥ १८
स्त्रीधर्म योगंतापस्यं मोक्षं सन्यास मेवच ।
राज्ञश्च धर्ममाखिलङ्कार्याणाञ्च विनिर्णयम् ॥ १९
साक्षिप्रश्न विधानञ्च धर्मंस्त्री पुंसयोरपि ।
विभाग धर्मंद्यूतञ्च कण्टकानाञ्च शोधनम् ॥ २०
वैश्य शूद्रोपचारञ्च संकीर्णानांच सम्भवम् ।
आपद्धर्मञ्च वर्णानां प्रायश्चित्त विधिन्तथा ॥ २१
संसार गमनञ्चैव त्रिविधं कर्म सम्भवम् ।
निःश्रेयसं कर्मणाञ्च गुण दोष परिक्षणम् ॥ २२
देश धर्मान् जाति धर्मान्कुल धर्माश्च शाश्वतान् ।
पाषंडगण धर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः॥२३
यथेदमुक्तवान् शास्त्रम्पुरा पृष्टो मनुर्मया ।
तथेदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत ॥ २४

इति प्रथमोऽध्यायः

अर्थ - १६ से २४ तक नौ श्लोकों में सम्पूर्ण मनुस्मृति को अनुक्रमणि का (सूची) दिखावे हैं ॥

जगत् की उत्पत्ति, संस्कार विधि (गर्भा धानादि १६ संस्कार), व्रत का आचरण, तथा उपचार, गुर्वादि की सेवा, अभिवादनादि,

स्नान की उत्तमविधि · स्त्रीसंयोग · विवाह के लक्षण · महायज्ञविधि · पितादि ज्येष्ठों की सेवा · ब्रह्मचारी के जीवन का उपाय · तथा व्रत · भक्ष्याभक्ष्य · शौच · द्रव्य शोधन · स्त्रीधर्म योग · तप · मोक्ष · संन्यास · राजधर्म · समस्त कार्यों का निर्णय · साक्षी (गवाही) से प्रश्न विधान · स्त्री पुरुषों के धर्म का विभाग · जूआ आदि कण्टकों का शोधन · वैश्य · शूद्रों के कर्मों का अनुष्ठान · वर्णसंकरों की उत्पत्ति · जीविका का उपाय · प्रायश्चित्त विधान · संसार का आवागमन · तीन प्रकार के कर्म (नित्य · नैमित्य · प्रायश्चित्त) · मोक्ष · कर्मों के गुण दोषों की परीक्षा · देशधर्म · जातिधर्म · कुलधर्म · पाखंडियों के धर्म · इत्यादि इस शास्त्र में मनु जी महाराज ने कहे हैं ·
भृगु जी कहते हैं कि जिस प्रकार मनु जी ने पूर्व में मेरे पूछने से यह शास्त्र मेरे प्रति कहा तिसी प्रकार आप लोग मुझ से सुनिये १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ ॥ ९

१६ से २४ तक का सृष्टि की उत्पत्ति तो पूर्व भृगु जी कह चुके अन्य समस्त आगे कहेंगे ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

अथद्वितीयोऽध्यायः

मूल- सङ्कल्पमूलः कामोवैयज्ञास्सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानियमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥१

अर्थ- समस्तकामनाकामूल सङ्कल्प है, यज्ञ, व्रत, नियम, धर्म, सङ्कल्पसे हीहोतेहैं॥१॥

मूल- अकामस्य क्रियाकाचि दृश्यतेनेहकर्हिचित।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत्कामस्यचेष्टितम्॥२

अर्थ- इसलोकमें कामना रहितकुछभीक्रिया नहींदीखती जोजो (ऐहिक पारमार्थिक कर्म) करतेहैं सोसो किसी कामना सेहीकरतेहैं॥२॥

मूल- तेषु सम्यग्वर्त्तमानो गच्छत्यमरलोकताम्।
यथासङ्कल्पितांश्चेह सर्वान्कामान् समश्नुते॥३

अर्थ- जोफलकी इच्छारहित समस्त शुभकर्मों में वर्त्तमान है अर्थात प्रीतिपूर्वक करता है सो मोक्षपाता है और इस संसार में समस्त इच्छित इष्ट पदार्थों को भोगता है॥३॥ १

१- निष्काम कर्म काफल मोक्ष है, सकाम काफल बन्धन है, जो स्वर्गादिकी इच्छा से कर्म करता है उसे स्वर्गादि अवश्य मिलते हैं परंतु जबतक सुकृत का फल रहता है तभीतक स्वर्गादि हैं अन्त में "क्षीणे पुण्ये मृत्यलोके बसन्ति" सुकृतबीते फिर मृत्युलोक में आये औरनिषेध कर्म बनगया तो नर्क भोगना पड़ा, अतएव स्वार्थरहित स्वकर्म का अनुष्ठानयथादेशोपकार करें क्योंकि स्वार्थ रहित पुरुषसे निषेध कर्मतो प्रायः होतेहीनहीं, जो कुछ अनर्थ होता है स्वार्थ सेहीहोता है जब स्वार्थ साधन दृष्टि होती है तबपरस्पर अनर्थ दीखता हो नहीं और ऐसे मनुष्यबहुत थोड़े हैं जो परहानिको बचायकर अपना कार्य्य

मूल - वेदो ऽखिलो धर्म मूलं स्मृति शीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ४

अर्थ - धर्म का मूल सम्पूर्ण वेद है और वेदवेत्ता (मन्वादि) की स्मृति तथा स्वभाव है साधुओं का आचार आत्मा की प्रसन्नता भी है ॥ ४ ॥ १

मूल - यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्त्तितः।
स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ ५

अर्थ - जो कुछ कर्म (धर्म) जिसका मनु महाराज ने कहा है सो समस्त वेद में है क्योंकि मनुजी सर्वज्ञ (वेदवेत्ता) हैं ॥ ५ ॥ १

मूल - सर्वन्तु समवेक्ष्येदन्निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ६

अर्थ - समस्त शास्त्र को ज्ञान रूपी नेत्रों से देख श्रुति प्रमाण स्वधर्म में ही विद्वान् निमग्न रहें ॥ ६ ॥ १

मूल - श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ७

अर्थ - श्रुति जो वेद स्मृति मन्वादि धर्म शास्त्र के कथनानुसार धर्म करने

निकालते हैं वे ही परहित (देशोपकार) कर सक्ते हैं स्वार्थी कदापि नहीं।

४ - वेद ऋग, यजु, साम, अथर्ब, वेदवेत्ताओं की स्मृति अर्थात् वेद के अनुकूल स्मृति, साधू सद्विद्वान् वेदानुकूल चलने वालों का आचरण आत्मतुष्टि विकल्प में अर्थात् जो धर्म दो प्रकार के हों उस में जिस में चित्त प्रसन्न हो सो करें ॥

५ - इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मनुस्मृति वेद के अनुकूल है ॥

६ - वेदाङ्ग अर्थात् व्याकरणादि से वेद का यथार्थ ज्ञान, सोई नेत्र सो ज्ञान नेत्र हैं ॥

७ -- परीक्षार्थ तीन बर्ष धर्म शास्त्र के अनुसार चले यदि कीर्त्ति, यश,

वाले मनुष्य इस संसार में समस्त कीर्त्ति, यश, तथा सुख को पाते हैं अन्त में अनुत्तम मोक्ष पाते हैं ॥ ७ ॥ ६

मूल- श्रुतिस्तु वेद विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मोहि निर्बभौ ॥ ८

अर्थ- श्रुति वेद को जानो स्मृति धर्मशास्त्र को ये सम्पूर्ण विषय में अतर्क हैं क्योंकि इन दोनों से ही समग्र धर्म की उत्पत्ति हुई है ॥ ८ ॥

मूल- योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ९

अर्थ- जो द्विज तर्कशास्त्र से श्रुति स्मृति को अप्रमाण कहते हैं सो वेदनिन्दक नास्तिक हैं अतएव सभ्यों कर के समाज से निकालने योग्य हैं ॥ ९ ॥

मूल- वेदः स्मृतिस्सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुस्साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १०

अर्थ- वेद, धर्मशास्त्र, सद्विद्वानों का आचरण, अपने चित्त को जो प्रिय हो, ये चार प्रकार धर्म के साक्षात लक्षण कहे हैं ॥ १० ॥

मूल- अर्थकामेष्वसक्तानान्धर्मज्ञानम्विधीयते ।
धर्मञ्जिज्ञासमानानाम्प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ ११

अर्थ- अर्थ, काम की इच्छा रहित वैराग्यमान् को केवल धर्मज्ञान का ही विधान है । धर्म जानने की इच्छा करने वालों को परम प्रमाण श्रुति है ॥ ११ ॥

मूल- एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता ।
सम्भवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत ॥ १२

सुख होय तो निश्चित करें कि मोक्ष भी होयगी ॥
९ - नास्तिक का लक्षण यह है जो इस श्लोक में कहा वेद, स्मृति, के अनुकूल चलने वाले ही आस्तिक हैं ॥

अर्थ- भृगुजी कहते हैं कि यह धर्म का मूल संक्षेप से कहा और सम्पूर्ण की उत्पत्ति कही अब वर्णों के धर्म सुनिये ॥ १२॥

मूल- वैदिकैः कर्म्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ १३

अर्थ- द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के वैदिक शुभ कर्मों से गर्भाधानादि शरीर के संस्कार अवश्य करने चाहिये क्योंकि इस संसार तथा परलोक में येही पवित्र करते हैं ॥ १३॥ १

मूल- गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौडमौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकञ्चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ १४

अर्थ- गर्भाधान, जातकर्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, इन संस्कारों से बीज दोष तथा गर्भदोष से निवृत्त होता है अतएव ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों को अवश्य करने चाहिये ॥ १४॥

मूल- स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ १५

अर्थ- वेद वेदाङ्ग का पढ़ना व्रत अर्थात् निषेध कर्मों के त्याग में नियमबद्ध रहना सायंकाल प्रातःकाल हवन करना ब्रह्मचर्य अवस्था में देव ऋषि पितरों का तर्पण करना ग्रहस्थावस्था में पुत्रोत्पत्ति करना, पञ्च महायज्ञ करना, यज्ञ ज्योतिष्टोमादि करना इन शुभ कर्मों से आत्मा मोक्ष के योग्य होता है ॥ २५॥ २

१३- भृगुजी कहते हैं इस संसार में तथा परलोक में येही (गर्भाधानादि संस्कार) पवित्र करते हैं अन्य कोई नहीं अब हम नहीं जानते कि वर्त्तमान में द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) किसके भरोसे इन (संस्कारों) को त्यागते हैं अर्थात् किससे पवित्र होने की आशा है ॥

२५- निषेध कर्मों का त्याग अर्थात् परधन, परस्त्री, हिंसा, मद्य,

मूल- प्राङ्नाभि वर्द्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मंत्रवत्प्राशनञ्चास्य हिरण्य मधु सर्पिषाम् ॥ २६

अर्थ- जन्मकेपीछे नालछेदन से पहिले पुत्रका जातकर्म संस्कारका विधान है जिसमें मंत्रसे सुवर्ण, मधु, घृत, बालक के मुखमेंदे ॥ २६ ॥

मूल- नामधेयन्दशम्यान्तु द्वादश्याम्वास्य कारयेत् ।
पुण्येतिथौ मुहूर्तेवा नक्षत्रेवा गुणान्विते ॥ २७

अर्थ- दशवेंवा बारहवें दिन नामकरण संस्कार करनाचाहिये अथवा श्रेष्ट तिथि, मुहूर्त, नक्षत्र, वाले दिन करें ॥ २७ ॥

मूल- मङ्गल्यम्ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्यतु जुगुप्सितम् ॥ १८

अर्थ- मङ्गल, बल, धन, निन्दायुक्त, क्रमसे ब्राह्मणादि वर्णों के नाम होने चाहिये ॥ १८ ॥

मूल - शर्म्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षा समन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्य संयुतम् ॥ १९

अर्थ - ब्राह्मणका शर्म्मान्त, क्षत्रिय का रक्षान्त, वैश्यका पुष्टि संयुक्त, शूद्र का दासान्त होनाचाहिये ॥ १९ ॥

मांस, मिथ्या भाषणादि के त्यागमें सदैव दृढ रहना, इसश्लोकमें वेदप ढ़ना, हवनकरना, पुत्रउत्पन्नकरना, इनसे मोक्ष के योग्यहोना है और छठे अध्याय में येही तीनों ऋण कहे हैं, इनतीनों के विना करे मोक्ष की इच्छा करने वाला नर्कमें जाताहै, अतएव इन्हें अवश्य करें ॥

१९ - देवदत्त शर्म्मा, जयदेव शर्म्मादि, ब्राह्मण के। वीरसिंह वर्म्मा दि क्षत्रिय के। लक्ष्मीचन्द्र गुप्त, इत्यादि वैश्य के। चरणदास, मनो हरदास, इत्यादि शूद्र के नाम धरें ॥

मूल - स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ।
मङ्गल्यन्दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ॥ २०

अर्थ - जो सुख से उच्चारण किया जाय, तथा क्रूरतारहित, स्पष्ट अर्थद्योतक, मनोहर, कल्याणवाचक, दीर्घाक्षरान्त, आशीर्वादात्मक शब्द युक्त स्त्रियों का नाम करना चाहिये ॥ २० ॥

मूल - चतुर्थे मासकर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टम्मङ्गलङ्कुले ॥ २१

अर्थ - चतुर्थ मास में बालक का घर से बाहर निकालना और छठे मास में अन्नप्राशन करना, वा जब कुल में होता हो ॥ २१ ॥

मूल - चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्म्मतः ।
प्रथमेब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥ २२

अर्थ - वेद की आज्ञा से द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का चूडाकर्म (मुण्डन संस्कार) प्रथम वा तृतीय वर्ष में सब को धर्मार्थ करना चाहिये ॥ २२ ॥

मूल - गर्भाष्टमेब्दे कुर्व्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ २३

अर्थ - गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का, ग्यारहवें क्षत्रिय का, बारहवें वैश्य का, यज्ञोपवीत संस्कार करना चाहिये ॥ २३ ॥

मूल - ब्रह्मवर्च्चसकामस्य कार्य्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येर्थिनोऽष्टमे ॥ २४

---

२० - यशोदा, सुभद्रा, सुखदा, मोहनी, कल्याणी, सौभाग्यवती, इत्यादि स्त्री के नाम धरें ॥

२१ - इस श्लोक में दो संस्कार कहे, एक घर से निकालना इससे पहले बालक घर में ही रहे, दूसरा अन्नप्राशन इसके बिना अन्न न दे,

अर्थ- ब्रह्मतेजकी कामनावाले ब्राह्मण का पाँचवें बर्ष , बलकी इच्छा वाले क्षत्रियका छठे , धनकी इच्छावाले वैश्य का आठवें बर्ष में यज्ञो पवीत संस्कार करना चाहिये ॥ २४॥

मूल- आषोड शाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नाति वर्त्तते ।
आद्वा विंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशते र्विशः ॥२५

अर्थ- सोलहवें बर्षतक ब्राह्मण , बाईसतक क्षत्रिय , चौवीस तक वैश्य , गायत्रीसे पतित नहीं होता ॥ २५॥

मूल- अत ऊर्द्धं त्रयो प्येते यथाकालम संस्कृताः ।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्य वि गर्हिताः ॥२६

अर्थ - इन (१६ , २२ , २४) बर्षसे उपरान्त ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बिना संस्कार गायत्रीसे पतित हो व्रात्य होकर श्रेष्टों में निन्दा योग्य होते हैं ॥ २६॥

मूल- नैतै रपूतै र्विधि वदा पद्य पिहि कर्हिचित ।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धान्नाचरेद्ब्राह्मणैः सह ।२७

अर्थ- वे व्रात्य जबतक यथावत शास्त्ररीति से प्रायश्चित्त कर अपने संस्कार शुद्ध न करें तब तक उन के संग पढ़ने पढ़ाने का तथा विवाहादि कोई सम्बन्ध आपत्कालमें भी ब्राह्मण कभी न करें ॥ २७

अर्थात् इस संस्कार को कर पीछे अन्न भोजन करावे ॥

२७ व्रात्य के संग आपत्तिकाल में भी विवाहादि का निषेध है अर्थात् और कोई ना मिले तो भी व्रात्य से सम्बन्ध न करें क्योंकि व्रात्य शूद्र से भी नीच है शूद्र शास्त्रानुसार अपना कर्म करने से चार वर्णों में तो है , जो शूद्र अपना कर्म त्यागदे तो वह भी व्रात्य ही होगा अतएव व्रात्य नीच है ॥

मूल - उपस्पृश्य द्विजो नित्य मन्नमद्यात्समाहितः ।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ।२८

अर्थ - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्वस्थ चित्त होकर के सदा आचमन कर भोजन करें भोजनोत्तर भी हाथ पैर धोके आचमन करें और नाक, कान, नेत्रादि, इन्द्रियों का स्पर्श करें ॥ २८ ॥

मूल - नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥२९

अर्थ - झूठा अन्न किसी को न दे, तथा एक दिवस में दो बार भोजन न करे अर्थात् एक बार दिन में और एक बार रात्रि में करें और अति भोजन भी न करे, झूठे मुख कहीं न जाय ॥ २९ ॥

मूल - अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ ३०

अर्थ - स्त्रियों के गर्भाधानादि समस्त संस्कार शरीर शोधनार्थ यथा क्रम उक्त काल में मंत्र रहित करने चाहिये ॥ ३० ॥

मूल - वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया ॥३१

अर्थ - विवाह ही स्त्रियों का वैदिक (वेदमंत्र से) संस्कार है पति की सेवा ही गुरुकुल में बास है गृहकार्य ही अग्नि होत्र है ॥ ३१ ॥

---

२९ - धर्मशास्त्र में झूठा खिलाने का निषेध है, इसके विरुद्ध वर्त्तमान में नीच वर्ण किसी मत का आश्रय ले गुरु बन उत्तम वर्णों को भी अपना झूठा प्रसादी कराते हैं यह अविद्या ही का प्रताप है ॥

३१ - पति की सेवा ही गुरुकुल में बास है अर्थात् पति की सेवा ही गुरू की सेवा है अतएव स्त्री पति त्याग गुरू की चेली न हो क्योंकि पतिव्रत नष्ट होता है ॥

तथा जगन्नाथ के भात को शूद्र भी झूठा कर ब्राह्मण पर्यन्त को भोजन करा पवित्र बतलाते हैं

मूल- एषप्रोक्तोद्विजातीनामौपनायनिको विधिः ।
उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगन्निबोधत ॥ ३२

अर्थ- द्वितीय जन्मके बोधक अति पवित्र द्विजातियों के उपनयन सम्बन्धी कर्म कहे अब कर्मयोग सुनो ॥ ३२ ॥

मूल- उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमाग्निकार्यञ्च सन्ध्योपासनमेवच ॥ ३३

अर्थ - गुरु शिष्य का यज्ञोपवीत (जनेऊ) करवा के प्रथम शौच (जल मृत्तिका से शरीर शुद्धि) सिखावे, फिर आचार और अग्निहोत्र तथा सन्ध्योपासन सिखावे ॥ ३३ ॥

मूल- अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः ।
ब्रह्माञ्जलिकृतोध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः ॥ ३४

अर्थ - पढ़ने के समय शास्त्र रीति आचमन किये हुए उत्तर मुखवाले गुरू के सन्मुख अञ्जली किये शुद्ध वस्त्र धारण किये हुए जितेन्द्रिय शिष्य को गुरु पढ़ावे ॥ ३४ ॥

मूल- ब्रह्मारम्भेवसानेच पादौग्राह्यौ गुरोस्सदा ।
संहत्य हस्तावध्येयं सहि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ ३५

अर्थ- वेद पढ़ने से पहिले और पीछे गुरू के चरणों का स्पर्श करे तथा पढ़ते समय भी हाथ जोड़े रहना, यही ब्रह्माञ्जलि कही है ॥ ३५ ॥

मूल- व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेनच दक्षिणः ॥ ३६

अर्थ - गुरू के सन्मुख बैठकर दक्षिण हाथ से दक्षिण पाद और वाम हाथ से वाम पाद का स्पर्श करे अर्थात् गले ऊपर हाथ धरि के चरण छूवे ॥ ३६ ॥

मूल- अध्येष्यमाणस्तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ।
अधीष्वभोइतिब्रूयाद्विरामोस्त्विति चारमेत् ॥ ३७

अर्थ - सदा आलस्य रहित पढ़न समय शिष्य गुरु की आज्ञासे अर्थात् पहले गुरु कहे पढ़ो, तब पढ़े । अन्त में समाप्ति करो ऐसे कहे तब समाप्ति करे ॥ ३७ ॥

मूल - अकारञ्चाप्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः ।
वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवःस्वरितीतिच ॥ ३८

अर्थ - अकार, उकार, मकार, इन तीनों वर्णों को और भूर्भुवःस्वः इन तीनों व्याहृतियों को प्रजापति ने क्रम से तीनों वेद (ऋग, साम, यजु) से निकाला है ॥ ३८ ॥

मूल - त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादम्पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापति ॥ ३९

अर्थ - इन तीनों वेदों ही से ब्रह्माने गायत्री के तीनों पाद निकाले हैं ॥ ३९ ॥

मूल - एतदक्षरमेताञ्च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
संन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ ४०

अर्थ - वेद के जानने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ओंकार का तथा व्याहृति सहित गायत्री का दोनों संध्याओं में जप करने से समस्त वेदपाठ के फल प्राप्ति होते हैं ॥ ४० ॥

मूल - सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य वहिरेतत्त्रिकं द्विजः ।
महतोप्येनसोमासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ ४१

अर्थ - इन्हीं तीनों को जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, नगर से बाहर जा हजार बार जपता, सो महान् पाप से एक मास में छूट जाता है जैसे सर्प कांचुरी से छूटता है ॥ ४१ ॥

---

४१ - देखिये ! गायत्री का माहात्म्य, जो इस गायत्री को वर्त्तमान में नहीं जपते उन्हें सुख कहां ? कहीं भी नहीं ॥

मूल- एतदृचया विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ।
ब्रह्म क्षत्रिय विड्योनि र्गर्हणां याति साधुषु ॥ ४२

अर्थ- इस मंत्र का जप तथा अपनी क्रिया (सायं-प्रातः हवनादि) को समय पर जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, नहीं करें सो साधु विद्वानों में निन्दा को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥

मूल- ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयम्ब्रह्मणो मुखम् ॥ ४३

अर्थ - ओंकार सहित तीनों व्याहृति तथा गायत्री वेद का मुख है अथवा परमात्मा की प्राप्ति का द्वार है ॥ ४३ ॥

मूल- योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्त्तिमान् ॥ ४४

अर्थ- जो ओंकार युक्त तीनों व्याहृति सहित गायत्री को आलस त्याग नित्य प्रति तीन बर्ष जपता है सो पवनवत् स्वच्छन्द चारी होता है तथा पर ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

मूल- एकाक्षरम्परम्ब्रह्म प्राणायामाः परन्तपः ।
सावित्र्यास्तु परन्नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥ ४५

अर्थ - यह ओंकार परब्रह्म की प्राप्ति का हेतु होने से परब्रह्म है, प्राणा

४२- सुखदायक अपने धर्म को छोड़ निन्दनीय बनना बुद्धिमानों का कार्य नहीं है ॥

४४- कहां तक लिखूं मनु में गायत्री की अधिक प्रशंसा है यदि समस्त लिखी जाय तो अति विस्तार होगा अतएव इतना ही लिखता हूं कि गायत्री दोनों सन्ध्याओं में अवश्य जपनी चाहिये ॥

४५ - चुप्प रहने से सत्य बोलना उत्तम है और मिथ्या बोलने से चुप उत्तम है ॥

याम् परमतप है गायत्री से परे और कोई मन्त्र नहीं है मौन अर्थात मौन धारण करने से (चुप रहने) से सत्य बोलना अच्छा है ॥ ४५ ॥

मूल- बिधियज्ञाज्जप यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ४६

अर्थ- ज्योतिष्टोमादि दर्श पौर्णमासादि यज्ञ से जप यज्ञ का दश गुणा फल अधिक है और शब्द रहित का सौ गुणा और मानसिक का सहस्र गुणा अधिक है ॥ ४६ ॥

मूल- इन्द्रियाणांप्रसङ्गेन दोषमृच्छत्य संशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ४७

अर्थ- इन्द्रियों की यथेष्ट विषयों में प्रवृत्ति होने से निस्सन्देह मनुष्य दोषी होता है और उनको विषयों से रोकने से मोक्षादि पुरुषार्थ के यो- ग्य होता है इससे इन्द्रियों का निग्रह करें ॥ ४७ ॥

मूल- न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभि वर्द्धते ॥ ४८

अर्थ - विषयों के भोगने से अभिलाषा निवृत्त नहीं होती किन्तु अधिक बढ़ती जैसे घृत के डालने से अग्नि अधिक प्रज्वलित होती है ॥ ४८ ॥

मूल- श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ४९

अर्थ - जो मनुष्य सुन, स्पर्श कर, देख, खाय, सूंघ के, हर्ष तथा विषाद को प्राप्त नहीं होता सो जितेन्द्रिय है ॥ ४९ ॥

४९- स्तुति (बड़ाई) को सुन, कोमल आनन्द दायक का स्पर्श कर, सुन्दर स्वरूप को देख, मधुर स्वादिष्ट पदार्थ को खाय के, सुगन्धित पदार्थों को सूंघ कर, अर्थात इष्ट पदार्थों के भोगने से हर्षित नहीं होता तथा निन्दा (गाली आदि) को सुन, कठोर दुःख दायक का स्पर्श कर

मूल- पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमांतु समासीनो मलं हंति दिवा कृतम् ॥ ५०

अर्थ- पूर्व (प्रातकाल) की सन्ध्या से रात्रि के अज्ञात कृत पापों का नाश होता है, पश्चिम (सायंकाल) की सन्ध्या से दिवस के अज्ञात कृत पाप नष्ट होते हैं ॥ ५० ॥ १

मूल- न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
सशूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विज कर्मणः ॥ ५१

अर्थ- जो प्रात काल, सायंकाल सन्ध्या नहीं करता वह शूद्र के समान है अतएव सम्पूर्ण द्विज कर्म (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के कृत्य) से बाहिर निकालने योग्य हैं ॥ ५१ ॥ १

मूल - अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥ ५२

अर्थ - निर्जन देश में जल के निकट नित्यकर्म (सन्ध्योपासनादि) करए काग्रचित्त से गायत्री का जप करे ॥ ५२ ॥

मूल - वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोस्त्यनध्याये होममंत्रे षु चैव हि ॥ ५३

अर्थ - वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द)

कुरूप को देख, कटु, क्षार, शुष्कान्न को खाय, दुर्गन्ध को सूंघ, अर्थात् अनिष्ट की प्राप्ति में शोक नहीं होता जिसको, सो जितेन्द्रिय है ॥

५० - अज्ञात दिन में चलने आदि से जीवों का मरना रात्रि में मच्छड़ आदि का मरना अर्थात जो पाप बिना जाने होता है उसका सन्ध्योपासन से नाश होता है और जान के तो बुद्धिमान करते ही नहीं ॥

५१ - इस श्लोक पर अवश्य ध्यान देना चाहिये क्योंकि एक पतित समस्त जाति को पतित बनाता है अतएव अवश्य निकालिये ॥

ब्रह्मयज्ञ • नित्यकर्म • और होम के मन्त्रों का अनध्यायन करें ॥ ५३॥

मूल - लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत ॥ ५४

अर्थ - लौकिक विद्या • वैदिक विद्या • आत्म विद्या • इनके सिखाने वाले को (सब मान्य मण्डली में) पहले अभिवादन (प्रणाम) करें। ५४

मूल - सावित्री मात्रसारोपि वरं विप्रः सुयंत्रितः ।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोपि सर्वाशी सर्व विक्रयी ॥ ५५

अर्थ - नियमपूर्वक शास्त्रानुकूल कार्य में युक्त केवल गायत्री ही जानना हो सो ब्राह्मण श्रेष्ठ है • तीनों वेद जानने वाला शास्त्र विरुद्ध सर्वभक्षी प्रतिषिद्ध वस्तु का बेचने वाला श्रेष्ठ नहीं है ॥ ५५ [१]

मूल - शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत ।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत ॥ ५६

अर्थ - जिस आसन तथा शय्या पर बड़ा बैठे तिस पर आप कभी न बैठे और आप आसन तथा शय्या पर बैठा हो तो उठ करके बड़ों को अभिवादन (प्रणाम) करे ॥ ५६॥

मूल - ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ ५७

अर्थ - बड़ों के आगमन से छोटों के प्राण ऊर्ध्व अर्थात् शरीर से बाहर को निकलना चाहते हैं उन (बड़ों) को उत्थान (उठना) और प्रणाम करके फिर स्वस्थ होते हैं अतएव विद्या • गुण • वय • वृद्ध (बड़ों)

---

५५ - शास्त्र के विरुद्ध चलने वाला त्याज्य (पतितादि) का भोजन तथा निषेध पदार्थ का भोजन करने वाला रसादि वस्तुओं के बेचने वाला ब्राह्मण कैसा ही पण्डित हो श्रेष्ठ नहीं है ॥

५७ - जो इस शिक्षा को नहीं मान कर अर्थात् प्रातःकाल उठके गुरु•

को अवश्य उठकर प्रणाम करना चाहिये ॥ ५७ ॥ १

मूल - अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ५८

अर्थ - गुण, विद्यादि वृद्धों की जो मनुष्य नित्य (सौभाविक) प्रणाम तथा सेवा करता है उसके आयु, विद्या, यश, बल, चारों बढ़ते हैं। ५८

मूल - आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥ ५९

अर्थ - अभिवादन (प्रणाम) करने वाले को प्रतिअभिवादन (आशीर्वाद) देने वाला आयुष्मान्भव ऐसा कहे और नाम के अन्त में स्वर तथा व्यञ्जनान्त नाम के अन्त अक्षर के पूर्व स्वर को प्लुत (त्रिमात्रिक) कहे ॥ ५९ ॥

मूल - यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ ६०

अर्थ - जो ब्राह्मण प्रतिअभिवादन नहीं जानता उसको अभिवादन न करें क्योंकि जैसा शूद्र है तैसा ही वह है ॥ ६० ॥

मूल - भ्रातुर्भार्य्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥ ६१

अर्थ - अपनी जाति वाली बड़े भाई की स्त्री के नित्य ही चरण छू के प्रणाम करें और जाति सम्बन्ध जेष्ठाओं को परदेश से आते ही एकबार प्रणाम करें नित्य का नियम नहीं ॥ ६१ ॥ २

माता पिताादि की प्रणामादि सेवा नहीं करते फिर उन्हें सुख का होना असम्भव है, किन्तु जो इनकी सेवा करते हैं वे ही सर्व सुख के भोगी हैं।

६१ - वर्तमान में यह रीति तो प्राय: भारत वर्ष से उठ ही गयी किंतु जिस बड़े भाई की स्त्री के चरण छूने की धर्मशास्त्र से आज्ञा है इस के विष

मूल - पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्य्यपि ।
भ्रातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥ ६२

अर्थ - पिता की बहन, माता की बहन, तथा अपनी बड़ी बहन, ये माता के समान पूजनीय हैं और माता इन सब से विशेष पूजनीय है। ६२

मूल - वित्तम्बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ ६३

अर्थ मान्य होने के कारण द्रव्य, कुटुम्ब, अवस्था, कर्म, विद्या, ये पांच हैं इनमें भी पहले से पीछे २ के बड़े हैं ॥ ६३ ॥

मूल - उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्य्यं प्रचक्षते ॥ ६४

अर्थ - जो ब्राह्मण शिष्य का जनेऊ करके सकल्प रहस्य अर्थात वेदाङ्ग सहित वेद को पढ़ावे सो आचार्य्य कहाता है ॥ ६४ ॥

मूल - निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथा विधि ।
सम्भावयति चान्नेन सो विप्रो गुरुरुच्यते ॥ ६५

अर्थ - जो गर्भाधानादि संस्कार विधिवत करे और अन्न करके बढ़ाता हो सो ब्राह्मण गुरू कहाता है ॥ ६५ ॥ १

मूल - य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तन्न द्रुह्येत्कदाचन ॥ ६६

अर्थ - जो ब्राह्मण दोनों कानों द्वारा वेद से पूर्ण करे उसे माता पिता के समान समझे और उस (गुरु) से द्रोह कदापि न करे ॥ ६६

रीति उसमें हास्य (होली खेलनादि) करते हैं यह सब अविद्या ही की तो दया है ॥

६५ - इसके विपरीत "काना बाती कुरू, तू चेला मैं गुरू" ऐसे गुरू भी बहुत हैं ॥

मूल - उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतंपिता ।
सहस्रंतुपितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ ६७

अर्थ - उपाध्याय से दश गुणा आचार्य्य, उससे शत गुणा पिता, पिता से सहस्र गुण माता बड़ी है ॥ ६७ ॥

मूल - उत्पादक ब्रह्मदात्रो र्गरीयान्ब्राह्मदः पिता ।
ब्रह्मजन्महि विप्रस्य प्रेत्यचेह च शास्वतम ॥ ६८

अर्थ - उत्पन्नकर्त्ता, वेददाता, ये दो पिता हैं इनमें वेद पढ़ाने वाला बड़ा है क्योंकि वेदादि विद्या इस लोक तथा परलोक के सुख का हेतु है, अतएव वेद संस्कार रूप नित्य है ॥ ६८ ॥

मूल - आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सासत्या सा जरामरा ॥ ६९

अर्थ - वेदवित् (वेद को अच्छे प्रकार जानने वाला) आचार्य जिस शिष्य का विधिवत गायत्री से जन्म करता है सो जन्म सत्य है और अजर अमर है ॥ ६९ ॥

मूल - अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकारोऽतियः ।
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया ॥ ७०

अर्थ - जो शिष्य को थोड़ा वा बहुत वेद पढ़ावे उस उपकारी को भी गुरु मानना चाहिये ॥ ७० ॥

मूल - ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्यन्च शासिता ।
बालोपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्म्मतः ॥ ७१

अर्थ - संस्कार रूप द्वितीय जन्म का देने वाला अर्थात यज्ञोपवीत करने वाला तथा वैदिक धर्म का उपदेश करने वाला बालक भी ब्राह्मण बड़े का धर्म से पिता है ॥ ७१ ॥

मूल - अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः ।
अज्ञंहि बाल मित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम ॥ ७२

अर्थ - अज्ञानी जो है वही बालक है, न कि कम अवस्था वाला, वेद का उपदेशक जो है वही पिता है, न कि बड़ी अवस्था वाला ॥ ७२ ॥

मूल - न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ ७३ ॥

अर्थ - अधिक अवस्था, तथा केशों के स्वेत (सफ़ेद) होने से, धन तथा कुटुम्ब के अधिक होने से बड़ा नहीं होता, किन्तु ऋषियों ने यह धर्म किया है कि जो वेद वेदाङ्ग का पढ़ाने वाला है वही हम से बड़ा है ॥ ७३ ॥

मूल - विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणान्तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्य धनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ ७४ ॥

अर्थ - ब्राह्मणों में विद्या से, क्षत्रियों में बल से, वैश्यों में धन धान्य से और शूद्रों में अवस्था ही से बड़पन है ॥ ७४ ॥

मूल - यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ ७५ ॥

अर्थ - जैसे काठ का हाथी, चर्म का मृग, तथा बिन पढ़ा ब्राह्मण, ये तीनों कथन मात्र ही हैं । अर्थात् ये सवारी देना, कूदना, विद्या पढ़ाना नहीं कर सके ॥ ७५ ॥ १

मूल - यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला ।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रो नृचोऽफलः ॥ ७६ ॥

अर्थ - जैसे स्त्रियों में नपुंसक और गौओं में गौ तथा मूर्ख ब्राह्मण को दान देना निष्फल है तैसे ही बिना विद्या के ब्राह्मण भी निष्फल है किन्तु ब्राह्मणत्व होता नहीं ॥ ७६ ॥ १

७५, ७६ - इन दोनों श्लोकों को देख कर अवश्य विद्या पढ़नी चाहिये नहीं तो ब्राह्मणत्व निष्फल है और दाताओं का दान निष्फल है ।

मूल- अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोनुशासनम् ।
वाक्चैव मधुराश्लक्ष्णाप्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥ ७७

अर्थ - धर्मकी इच्छा वाले जो मनुष्य समस्त प्राणियों को क्लेश रहित कल्यान कारी जो कर्म उसे करें और कोमल शब्दों से मीठी वाणी बोलें ॥ ७७

मूल- यस्यवाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ।
सवै सर्व मवाप्नोति वेदान्तोप गतं फलम् ॥ ७८

अर्थ - जिस मनुष्य के मन, वाणी शुद्ध और सर्वदा रक्षित हैं सो वेदान्त के सम्पूर्ण फल (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥

मूल- सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्य मुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकांक्षेद पमानस्य सर्वदा ॥ ७९

अर्थ - ब्राह्मण सन्मान से विषवत् नित्य अप्रसन्न रहें अपमान की नित्य अमृत के समान आकांक्षा करें अर्थात् मानापमान में हर्ष शोक न करें ॥ ७९ ॥

मूल- सुखंह्यव मत: शेते सुखंच प्रतिबुध्यते ।
सुखञ्चरति लोकेस्मिन्न वमन्ता विनश्यति ॥ ८०

अर्थ - अपमान से खेद न करने वाला सुख से सोता है तथा उठता है और इसलोक में सुख से विचरता है और जो अपमान करने वाला है उसका पाप से नाश होता है ॥ ८० ॥

मूल- तपो विशेषे र्विविधै र्व्रतैश्च विधिचोदितैः ।
वेदः कृत्स्नोधि गन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ ८१

अर्थ - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वेद प्रति पाद्य नाना तप तथा व्रतों को करके समस्त रहस्य सहित वेद पढ़ें ॥ ८१ ॥

मूल- वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासोहि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ ८२

अर्थ - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तप को तपते हुए वेद का ही अभ्या

सकें क्योंकि वेद पढ़ना ही ब्राह्मण का मुख्य तप है ॥ ८२॥

मूल - आहैव स नखाग्रेभ्यः परमन्तप्यते तपः ।
यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥ ८३

अर्थ - जो पुरुष सम्पूर्ण देह से परम तप को करता है, जो ब्रह्मचर्य के उत्तर भी अपनी शक्ति के अनुसार वेद को पढ़े ॥ ८३॥

मूल - योऽनधीत्य द्विजो वेद मन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्व माशु गच्छति सान्वयः ॥ ८४

अर्थ - जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वेद वेदाङ्ग को छोड़ अन्य विद्याओं में परिश्रम करते हैं सो जीवते ही कुटुम्ब सहित शूद्र भाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८४॥ *

मूल - मातुरग्रेऽधि जननं द्वितीयं मौञ्जि बन्धने ।
तृतीयं यज्ञ दीक्षायां द्विजस्य श्रुति चोदनात् ॥ ८५

अर्थ - प्रथम माता से, द्वितिय यज्ञोपवीत से, तृतिय यज्ञ से, वेद में तीन जन्म द्विजों के कहे हैं ॥ ८५॥

मूल - तत्र यद्ब्रह्म जन्मस्य मौञ्जीबंधन चिन्हितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥ ८६

अर्थ - उन तीन जन्मों में यज्ञोपवीत संस्कार रूपी जन्म की गायत्री माता और आचार्य पिता है ॥ ८६॥

मूल - वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥ ८७

अर्थ - जिस उपनयन रूप संस्कार के बिना किसी वैदिक कर्म का अधिकार नहीं हो सकता उस संस्कार के करने से तथा वेद विद्या के देने से

---

८४ - इस श्लोक को देख ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अपने बालकों को वेद वेदाङ्ग पढ़ावें नहीं तो शूद्र संज्ञा हो जायगी ॥

आचार्य को भी महर्षि जन पिता कहते हैं ॥

मूल- एकः शयीत सर्वत्र न रेतस्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धि स्कंदयन् रेतो हिनस्ति व्रत मात्मनः ॥८८

अर्थ- ब्रह्मचारी सर्वत्र इकल्ला सोवे वीर्य्य को कभी न गिरावे यदि इच्छा से वीर्य्य को गिरावे तो अपने ब्रह्मचर्य व्रत को नष्ट करता है ।८८

मूल- चोदितो गुरुणा नित्य मप्रचोदित एव वा ।
कुर्यादध्ययने यत्न माचार्यस्य हितेषु च ॥ ८९

अर्थ- गुरू की आज्ञा हो अथवा न हो परन्तु शिष्य वेद पढ़ने तथा गुरू के हित चिन्तन में आलस्य त्याग कर यत्न करे ॥ ८९

मूल- विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयो निषु ।
प्रतिषेधत्सु चाधर्मान् हितं चोपदिशत्स्वपि ॥ ९०

अर्थ- विद्या पढ़ाने वाले और कुल में जो बड़े (चाचा, ताऊ, बड़ा भाई आदि) में अधर्म से बचाने वाले में तथा हित उपदेशकों में गुरू के समान पूज्य बुद्धि सदा रक्खे ॥ ९०

मूल- गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ।
पूर्णविंशति वर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥ ९१

अर्थ- तरुण पुरुष (गुण दोष के जानने वाला) गुरू की तरुण स्त्री के चरण स्पर्श कर अभिवादन न करें किन्तु पृथ्वी में मस्तक रख के करें ॥ ९१

मूल- स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अतोर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ ९२

अर्थ - पुरुषों को दूषित करना यह स्त्रियों का स्वभाव होता है अतएव बुद्धिमान पुरुष स्त्रियों में सावधान रहें तथा बचते रहें ॥ ९२

मूल- अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥ ९३

अर्थ - काम क्रोध के वशीभूत विद्वान् वा मूर्ख पुरुष को स्त्रीजन कुमार्ग में ले जाने को समर्थ हैं ॥ ६३

मूल - मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ ६४

अर्थ - विद्वान् को भी इन्द्रियों का समूह बलात्कार विषयों में लगा देता है अतएव माता, बहन, पुत्री, कोई हो एकान्त में परस्त्री के साथ न रहना चाहिये ॥ ६४ १

मूल - आचम्य प्रयतो नित्यमुभे सन्ध्ये समाहितः ।
शुचौ देशे जपन्जप्यमुपासीत यथाविधि ॥ ६५

अर्थ - दोनों काल आचमन सहित सन्ध्योपासन कर एकाग्रचित्त पवित्र स्थान में बैठ यथाविधि गायत्री जपें ॥ ६५

मूल - आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ ६६

---

६४ - अवश्य मेव परस्त्री के साथ बिना तृतीय मनुष्य के एकान्त में कदापि न रहे, क्योंकि बलात्कार (ज़बर्दस्ती) इन्द्रियां विषयों में लगा देती हैं । गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है

"यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः"

भावार्थ - हे अर्जुन प्रयत्न करने वाले विद्वान् विवेकी पुरुष की भी इन्द्रियां (क्षोभ करनेवाली) बलकरके मन को हरलेती हैं जब विद्वान् के मन को हरलेती हैं तब कामियों की तो कथा ही क्या है ॥

६६ - ये सब शिक्षार्थ ताड़ना करें तिस में भी अपना कुछ हित ही समझना चाहिये ॥

अर्थ - वेद पढ़ाने वाला और पिता, माता, ज्येष्ठ भाई, इन सब का आर्त्त होने पर भी अपमान न करे अर्थात् ये कुछ ताड़ना से क्लेश भी दें तो भी इनका सत्कार ही करे ॥ ९६ ॥ १

मूल - यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्ष शतैरपि ॥ ९७

अर्थ - पुत्र के उत्पन्न, पालनादि समय में जो क्लेश माता पिता सहते हैं उसका बदला पुत्र सौ १०० वर्ष में भी करने को समर्थ नहीं है ॥ ९७

मूल - तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ ९८

अर्थ - उन (माता, पिता, आचार्य) को नित्य ही प्रसन्न रक्खो क्योंकि उन (तीनों) के प्रसन्न होने ही से सम्पूर्ण तप का फल प्राप्ति होता है ॥ ९८ १

इति द्वितीयोऽध्यायः

९८ - इन तीनों की प्रसन्नता से समस्त फल मिलता है फिर क्यों न इनका सेवन करना चाहिये ? किन्तु अवश्य करना चाहिये ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

(०)

मूल- षट् त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिक मेव वा ॥१

अर्थ - गुरू के घर बसता हुआ ब्रह्मचर्य्य व्रत से वेद का अध्ययन करे उसकी अवधि यह है । ३६ वर्ष वा १८ वर्ष वा ९ वर्ष अथवा जितने काल में वेदाध्ययन करले ॥ १ ॥ १

मूल- वेदान धीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रम मावसेत् ॥ २

अर्थ - जब यथावत अखण्डित ब्रह्मचर्य से समस्त वेद अथवा दो वेद वा एक वेद को साङ्गोपाङ्ग पढ़ले तब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे ॥ २ १

१- जिस अवस्था में अर्थात् बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य से विद्या (जो सब सुख का मूल है) पढ़ाना धर्म शास्त्र में लिखा है उस अवस्था में वर्त्तमान समय विवाह रूपी बंधन में डाल बालक का सर्वस्व नष्ट करते हैं ॥

२- अपनी सन्तान से सुख की इच्छा करे तो बिना विद्या पढ़ाए विवाह न करे यह वेदवेत्ता धर्म शास्त्र के कर्त्ता मनुजी की आज्ञा है इसके विपरीत वर्त्तमान में स्थनधाई (दूध पीते) बालक के विवाह का उद्योग तन, मन, धन, से करते हैं विद्या से कुछ प्रयोजन नहीं, फिर कहते हैं कि हमारा पुत्र हमारी सेवा नहीं करता किन्तु स्त्री के बश हो वृद्धावस्था में हमारी अप्रतिष्ठा करता है ऐसा मूर्ख है, अस्तु इस मूर्खता के कारण तो आप ही हैं जो बिना धर्मशास्त्र पढ़ाये विवाह कर दिया ॥

मूल- गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ ३

अर्थ- गुरुकी आज्ञासे बिधि पूर्वक समावर्त्तन स्नानकरके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अपने वर्णकी सुन्दर लक्षण युक्त कन्या से विवाह करें ॥ ३

मूल- असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ४

अर्थ- जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से द्विजातियों को बिवाह करना चाहिये। ४

मूल- महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ५

अर्थ- चाहे कितने ही धन धान्य से तथा गो आदि पशुओं से सम्पन्न ये आगे कहे हुए दश कुल होंय तो भी बिवाह सम्बन्ध में इन्हों का त्याग करदे ॥ ५ [१]

मूल- हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ६

अर्थ- संस्कार आदि क्रिया से हीन (१) जिस कुल में पुरुष न हो (२) वेद के पठन पाठन रहित (३) बड़े रोम वाले जिसमें मनुष्य हों (४) अर्श (बवासीर) रोगवाला (५) राजक्ष्मा (क्षई) रोग वाला (६) मन्दाग्नि आदि रोग वाला (७) अपस्मार (मृगी) रोग वाला (८) श्वित्र रोगवाला (९) कुष्ट रोग वाला (१०) ये

१- इसके विरुद्ध वर्त्तमान में समस्त दोष कन्या हो परन्तु धन होना चाहिये और बर वाला धनी हो तो सब दोष वाले बर का विवाह करले ॥

दशकुल विवाह सम्बन्ध में त्याज्य हैं ॥ ६ ॥

मूल- नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ ७

अर्थ - पीले केश वाली, अधिक अंग वाली, रोगवाली, बिना रोमवाली, अति रोम वाली, वाचाल बहुत बोलने वाली, पीले नेत्र वाली, कन्या को न विवाहे ॥ ७ ॥

मूल- नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्य पर्वत नामिकाम् ।
न पक्ष्यहि प्रेष्य नाम्नीं न च भीषण नामिकाम् ॥ ८ ॥

अर्थ- नक्षत्र, वृक्ष, नदी, चाण्डाल, पर्वत, पक्षी, सर्प, शूद्र, इनके नाम वाली तथा भयानक नाम वाली कन्या को न विवाहे ॥ ८ ॥ १

मूल- अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ ९

अर्थ- अङ्ग भङ्ग जिसका न हो, सुन्दर नाम जिसका हो, हाथी तथा हंस के समान जिसकी चाल हो और सूक्ष्म जिसके रोम, केश, दांत हों, तथा कोमल अङ्ग वाली हो, ऐसी कन्या के साथ विवाह करे ॥ ९ ॥

१- नक्षत्र नाम वाली - रोहिणी, रेवती आदि । वृक्ष नाम वाली - तुलसी, गेंदो, गुलाबो, चम्पा, चमेली, आदि । नदी नाम्नी - गङ्गा, यमुनादि । पर्वत नाम्नी - पार्वती, मैनिका, गिरजादि । पक्षी नाम्नी - मैंना, कोकिला, हन्सी, आदि । सर्प नाम्नी - नागी, भुजङ्गादि । भयानक नाम वाली - चण्डी, चण्डिका, काली, कालिका, इत्यादि ॥

मूल- हीन जातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम् ॥ १०
अर्थ- द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अज्ञान के वश हो कर हीन वर्ण की कन्या से विवाह करे तो अति शीघ्र सन्तान सहित अपने कुल को शूद्र बनाते हैं ॥ १० ॥

मूल- शूद्रां शयन मारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।
जनयित्वा सुतंतस्यां ब्राह्मणया देव हीयते ॥ ११
अर्थ- शूद्र की कन्या को शय्या पर बैठाने से ब्राह्मण अधोगति को प्राप्ति होता है और उस में पुत्रोत्पन्न करे तो ब्राह्मणत्व ही से गिर जाता है ॥ ११ ॥

मूल- वृषलीफेन पीतस्य निःश्वासो पहतस्यच।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १२
अर्थ- शूद्र स्त्री के ओष्ट रस पीने वाले की तथा उस की स्वांस का स्पर्श अर्थात् सङ्ग शयन करने वाले की और उसमें पुत्र उत्पन्न करने वाली की शुद्धि शास्त्र में नहीं कही है ॥ १२ ॥

मूल- ब्राह्मोदैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ १३
अर्थ- ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, पैशाच, ये आठ प्रकार के बिवाह इनमें पैशाच विशेष कर अधम है ॥ १३ ॥

मूल- आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ १४
अर्थ- वेद, वेदाङ्ग, विद्यायुक्त, बर को बुला के यथा शक्ति बस्त्र भूषणा से बर, कन्या को शोभित कर कन्या दे यह ब्राह्म बिवाह है। १४

मूल- यज्ञेतु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।

अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ १५

अर्थ- यज्ञ में विधि के अनुसार यज्ञ कार्य करने वाले ऋत्विज् को यथा शक्ति कन्या को शोभित करके देवे यह दैव विवाह है। २५

मूल- एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्या प्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ १६

अर्थ- धर्म के लिये वर से एक वा दो गौ का जोड़ा लेकर विधि पूर्वक कन्या वर को देना यह आर्ष विवाह है ॥ १६

मूल- सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः। १७

अर्थ- हम दोनों धर्म पर चलेंगे यह वचन पहले स्वीकृत करा के कन्या को वस्त्र भूषण से शोभित करके देना यह प्राजापत्य विवाह है ॥ १७

मूल- ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्या प्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ १८

अर्थ- कन्या तथा उसके पितादि को यथा शक्ति धन देकर अपनी इच्छा से कन्या लेना यह आसुर विवाह है ॥ १८

मूल- इच्छयान्योन्य संयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः काम सम्भवः ॥ १९

अर्थ- वर और कन्या की इच्छा से परस्पर संयोग होना यह गान्धर्व विवाह है। यह स्त्री पुरुष दोनों की इच्छा से होना है इस से भोग के लिये हितकारी है ॥ १९

मूल- हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्या हरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ २०

अर्थ- बलात्कार का हरण करना राक्षस विवाह अर्थात् कन्या को न देने की इच्छा कर कन्या पक्ष के पिता भ्रातादि लड़ाई करें

तोउन्हें मार, पीट के तथा कूद, फांद के बलात्कार (जबर्दस्ती) से रोती पुकारती हुई को घर से ले जाना यह राक्षस विवाह है। २०

मूल- सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रो पगच्छति ।
सपापिष्ठो विवाहानां पैशाच्च श्चाष्टमोऽधमः। २१

अर्थ - सोती हुई से, मतवाली (नशे में बेहोश) से, प्रमत्त अर्थात उन्माद से असावधान हो, उससे एकान्त में भोग करना यह पापों का हेतु होने से विवाहों में नीच पैशाचविवाह है। २१

मूल- ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वे वानु पूर्वशः ।
ब्रह्मवर्च्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्ट संमताः ॥ २२

अर्थ - ब्राह्मादि चार विवाहों से वेदादि विद्या अध्ययन में पूर्ण तथा तेजस्वी और उत्तम पुरुषों को प्रिय पुत्र उत्पन्न होता है। २२

मूल- रूप सत्त्व गुणो पेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्त भोगा धर्मिष्ठा जीवान्ति च शतं समाः ॥ २३

अर्थ - और सुन्दर स्वरूप वान् ज्ञानादि गुण वाले धनवान् कीर्ति वाले सम्पूर्ण संसार के सुखों को भोगने वाले धर्मात्मा हो सौ बर्ष तक जीते हैं ॥ २३

मूल- इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसा नृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्म धर्म द्विषः सुताः ॥ २४

अर्थ- पीछे कहे हुए जो चार (आसुरादि) नीच विवाह उन से जो पुत्र उत्पन्न वे निर्दयी मिथ्यावादी वेद और धर्म के द्वेषी अर्थात वेद और धर्म के न मानने वाले होते हैं ॥ २४

मूल- अनिन्दितैः स्त्री विवाहै रनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितै र्निन्दिता नृणां तस्मा न्निंद्या न्विवर्जयेत्। ४२

अर्थ - अनिन्दित विवाहों से अनिन्दित पुत्र और निन्दित विवाहों से निन्दित पुत्र होते हैं अतएव निन्दित (आसुरादि) विवाहों को

कभी न करें ॥ २५

मूल- ऋतु कालभिगामीस्यात्स्वदार निरतः सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रति काम्यया ॥ २६

अर्थ- ऋतुकाल में स्त्री संयोग अवश्य करे यदि न करे तो पातकी होता है और सदा अपनी ही स्त्री से प्रसन्न रहे अर्थात परस्त्री की अभिलाषा कभी न करे और भोगकी इच्छा से स्त्री की प्रसन्नता के लिये ऋतु काल से भिन्न समय में भी मैथुन करने का कोई दोष नहीं परन्तु पर्वादिवसको कभी न करे ऋतु काल होवा अन्य ॥ २६

मूल- ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ २७

अर्थ- रुधिरस्राव जिस दिन हो उस दिन से सोलह १६ दिवस पर्यन्त स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल है ॥ २७

मूल- तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ २८

अर्थ- उन सोलह १६ दिनों में पहले ४ दिन तथा ११, १३ दिन श्रेष्ठ पुरुषों से निन्दित हैं इसी से उन (६) दिवसों में कभी भोग न करे बाकी के १० श्रेष्ठ हैं अर्थात संभोग योग्य हैं ॥ २८

मूल- निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ २९

अर्थ- पूर्व कहे हुए ६ दिवसों को तथा श्रेष्ट दश दिवसों में से आठ ८ दिवस छोड़ बाकी रहे दो (२) दिवसों में जो स्त्री गमन करता है वह गृहस्थाश्रम में हो वा वानप्रस्थाश्रम में हो ब्रह्मचारी ही है, अर्थात अखण्ड ब्रह्मचर्य के सदृश उसका भी व्रत है। २९

मूल- न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ३०

अर्थ - विद्वान् कन्या का पिता किञ्चित् भी धन वर पक्ष से न ले य दि लोभ से ले तो सन्तान के बेचने वाला कहाता है ॥ ३०

मूल- स्त्री धनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ।
नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥ ३१

अर्थ - स्त्री के धन से जो उपजीविका करते हैं वा उसके वस्त्र, सवा री सेवन करते हैं सो पापी अधम गति को पाते हैं ॥ ३१ १

मूल- पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ३२

अर्थ - पिता, भ्राता, पति, आदि जो सुख की इच्छा करें तो वस्त्रा भूषण से स्त्रियों को प्रसन्न रक्खें ॥ ३२

मूल- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ३३

अर्थ - जिस कुल में स्त्रियों का यथावत सतकार होता है उस कुल में देवता रमण करते हैं अर्थात प्रसन्न होते हैं जहां नहीं होता वहां सब धर्मादि कार्य निष्फल होते हैं ॥ ३३

मूल- शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता बर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ३४

अर्थ - जिस कुल में स्त्रियों को क्लेश होता है वह कुल शीघ्र हीन २ हो जाता है अर्थात् निर्धन तथा आपत्तियों से पीड़ित होता है और जि स कुल में ये प्रसन्न रहती हैं वह धनादि सम्पत्तियों से नित्य बढ़ता है ॥ ३४

---

३१ यह वर्त्तमान में अज्ञानता से ही होता है किन्तु धन के दुःखी क न्या का धन सुख के लिये लेते हैं परन्तु वह धन दुःख ही देता है य दि धर्म शास्त्र को जानते तो ऐसे दुख दायक धन को क्यों लेते ॥

मूल- सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ ३५

अर्थ - स्त्री से पति और पति से स्त्री जिस कुल में परस्पर प्रीति करते हैं उस कुल में नित्य ही सर्व कल्याण निश्चल रहता है। ३५

मूल- कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ३६

अर्थ - निन्दित (आसुरादि) विवाहों से और गर्भाधानादि संस्कारों के लोप से, वेद के न पढ़ने से, ब्राह्मणों के अनादर से श्रेष्ठ कुल नीच हो जाता है ॥ ३६

मूल- पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥ ३७

अर्थ - चुल्ही, चक्की, बुहारी, ओखली, जलस्थान, ये पांच हिंसा के स्थान हैं अर्थात् इन से गृहस्थियों को नित्य पाप लगता है ॥ ३७

मूल- तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ३८

अर्थ - उन पांच पातकों को दूर करने के लिये गृहस्थियों को क्रम से पञ्च महायज्ञ करना मन्वादि महर्षियों ने कहा है ॥ ३८

मूल- अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ३९

अर्थ - वेद का पढ़ना पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ, अतिथिपूजन नृ (नर) यज्ञ, ये पांच यज्ञ हैं ॥ ३९

मूल- पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ४०

अर्थ - इन पञ्च महायज्ञों को जो नहीं त्यागता अर्थात शक्ति के अनुसार नित्य करता है सो घर में बसता हुआ भी पुरुष पहले कहे हुए पांच पातकों से मुक्त नहीं होता है ॥ ४०

मूल - स्वाध्याये नित्य युक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि।
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ४१

अर्थ - वेद का पठन पाठन और हवन इनको जो पुरुष नित्य करता है सो इस चराचर जगत् को धारण करता है ॥ ४१

मूल - अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्य मुप तिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिं वृष्टे रन्नं ततः प्रजाः ॥ ४२

अर्थ - अग्नि में जो (घृतादि की) आहुति पड़ती है सो सूर्य के निकट पहुंचती है सूर्य से जल बरसता है, जल से अन्न, अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ४२ ॥

४२ - समस्त जीवों का हित हवन से ही होता है अतएव ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, यथा शक्ति हवन नित्य करें यह मनुजी अपने धर्म शास्त्र में लिखते हैं और श्रीकृष्ण महाराज ने भी श्रीमद् भगवत् गीता में कहा है ॥

श्लोक

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥
एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥"

भावार्थ - ईश्वर से वेद, वेद से कर्म (यज्ञादि), कर्म से मेघ,

मूल- यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वआश्रमाः ॥ ४३

अर्थ- जैसे प्राणवायु के आश्रय में सब प्राणी जीवते हैं तैसे ही गृहस्थ के आश्रय सम्पूर्ण आश्रमी निर्वाह करते हैं ॥ ४३

मूल- यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ४४

अर्थ- तीनों आश्रम (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, सन्यास) को ज्ञान (वेदव्याख्यान) तथा अन्न करके गृहस्थ ही उपकार करता है अतएव गृहस्थ आश्रम ही सबसे बड़ा है ॥ ४४

मूल- स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ४५

अर्थ - जो बहुत कालतक स्वर्ग के तथा इस लोक के समस्त सुखों की इच्छा करता है सो गृहस्थ आश्रम का ही यत्न से सेवन करे, कैसा है गृहस्थ आश्रम जो दुर्बल इन्द्रिय वालों से धारण नहीं किया जाता है ॥ ४५

मूल- ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥ ४६

मेघ से अन्न, अन्न से प्राणी, उत्पन्न होते हैं फिर वेदोक्त कर्म करते हैं तब फिर मेघादि होते हैं, फिर करते हैं फिर होते हैं इस प्रकार का चक्र ईश्वर ने मनुष्यों के पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये रचा है हे अर्जुन जो मनुष्य इस (वेद प्रतिपाद्य यज्ञादि) चक्र में प्रवृत्त नहीं होता अर्थात् कर्म का अनुष्ठान नहीं करता सो पापी इस संसार में वृथा ही जीवता है किन्तु इन्द्रियों के वश हुआ आप नष्ट हो और को भी नष्ट करता है क्योंकि हवन न करना सबको नष्ट करना है ॥

अर्थ - ऋषि, पितृ, देव, भूत, अतिथि आदि सब गृहस्थियों से आशा करते हैं इससे विद्वान् पुरुष को चाहिये कि आगे कहे हुए विधानसे इन्हों का सत्कार करे ॥ ४६ ॥

मूल - स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन्श्राद्धैश्च नॄनन्नै र्भूतानि बलि कर्मणा ॥ ८७

अर्थ - वेद के पठन पाठन से ऋषियों का होम से देवोंका श्राद्ध से पितृयों का बलि वैश्व देव से भूतों का अन्न दान से अतिथियों का पूजन करें ॥ ४७

मूल - वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधि पूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होम मन्वहम् ॥ ४८

अर्थ - सर्वदेवों के अर्थ पक्व जो पदार्थ है उसका विधि पूर्वक अग्नि में आगे कहे हुए देवताओं के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य नित्य हवन करें ॥ ४८

मूल - अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एवच ॥ ४९
कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एवच ।
सहद्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥ ५०
एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्व दिक्षु प्रदक्षिणम् ।
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत ॥ ५१
मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्यः इत्यपि ।
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ५२

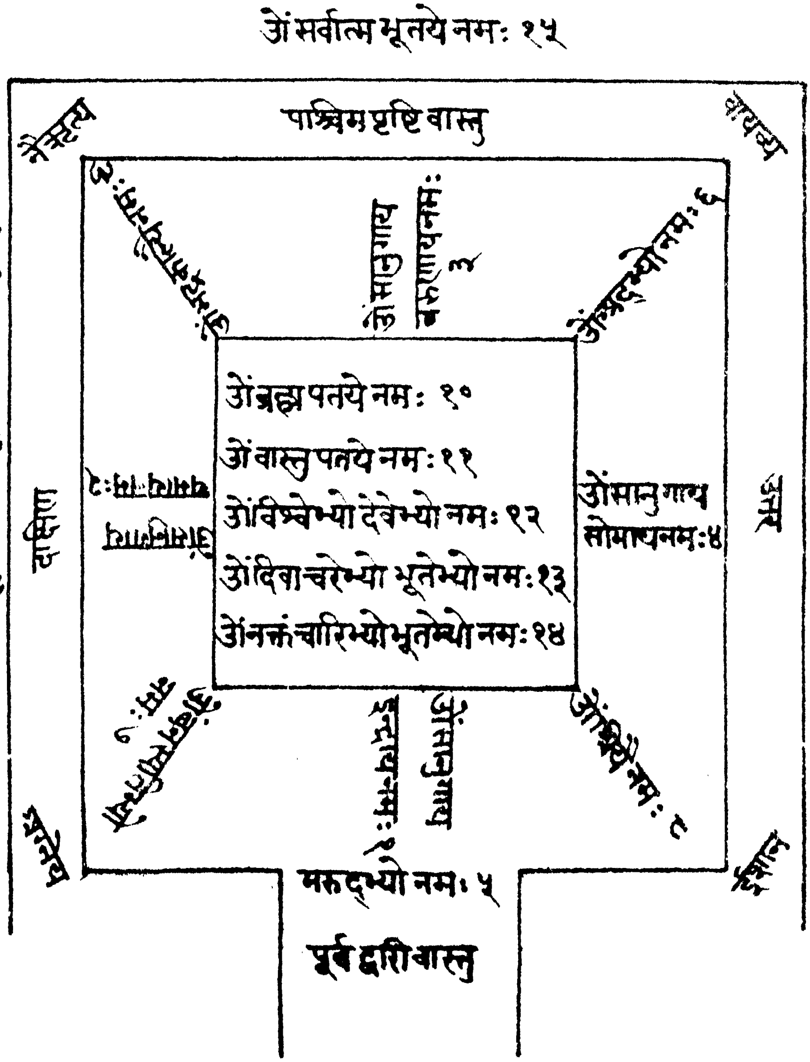
४९ से ५५ तक - इसकी विधि यह है, जो कुछ पाकशाला (रसोई) में भोजनार्थ सिद्ध भया हो उसमें से यथाशक्ति (नोनकी सामिग्री को छोड़) पृथक करले और उसी रसोई की अग्नि

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ५३
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाशउत्क्षिपेत् ।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥ ५४
पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ।
पितृभ्यो बलिशेषंतु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ५५

अर्थ-४९ से ५५ तकका - इन सात श्लोकों में बलिवैश्वदेव के मन्त्र हैं ये ओंकार सहित पृथक पृथक दश तो यहां लिखे जाते हैं शेष (१६) मन्त्र आगे यन्त्र में क्रमसे लिखे हैं ॥ मन्त्र ॥ ओं अग्नये स्वाहा १ ओं सोमाय स्वाहा २ ओं अग्नि सोमाभ्यां स्वाहा ३ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ४ ओं धन्वन्तरये स्वाहा ५ ओं कुह्वै स्वाहा ६ ओं अनुमत्यै स्वाहा ७ ओं प्रजापतये स्वाहा ८ ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ९ ओं स्विष्टकृते स्वाहा १० ॥ ये दशमन्त्र हैं और बलिवैश्वदेव की विधि इसके टीके में लिखी है ॥ ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ ॥ १

कोएक मृत्तिका की कुण्डी में भरले । प्रथम निम्न लिखित (ओं अग्नये ०) इत्यादि दश मन्त्रों से दश आहुति देकर अग्नि की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) दे । तिसके पीछे थाली में वा पत्ते पर अथवा पृथिवी में ही यन्त्र बना ले वा न बनावे तो अन्दाज़ से प्रथम (सानुगाय ०) इस मंत्र से पूर्व में किञ्चित भाग (ग्रास) धर दे दूसरे मन्त्र से दक्षिण में । तीसरे से पश्चिम में । चौथे से उत्तर में । पांचवें से द्वारी में । छठे से वायव्य कोण में । सातवें से आग्नेय कोण में । आठवें से ईशान्य कोण में । नवमें से नैऋत्य कोण में भाग दे । और दश से चौदहवें तक पांच मन्त्रों से मध्य में भाग धर

बलिवैश्वदेव का यन्त्र



दे ˏ पन्द्रहवें मन्त्र से पृष्टिमें ˏ सोलहवेंसे दक्षिण पृष्टि में दे फिर सब भागोंको एकत्र (इकट्ठा) कर उसी अग्नि में छोड़ दे ये सब मंत्र क्रमशः यन्त्र में लिखे हैं और यह समस्त क्रिया पांच ही मिनट में होती है अधिक देर में नहीं परन्तु मन्त्र सब (१६) कण्ठ होने चाहिये ॥

मूल- एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्य मर्चति ।
सगच्छति परं स्थानं तेजो मूर्त्ति पथर्जुना ॥ ५६

अर्थ- इस प्रकार जो द्विज सब प्राणी मात्र का नित्य सत्कार करता है सो उत्तम मार्ग से प्रकाश रूप परमपद को प्राप्त होता है ॥ ५६

मूल- कृत्वैतद्बलि कर्मैव मतिथिं पूर्व माशयेत ।
भिक्षांच भिक्षवे दद्या द्विधि वद्ब्रह्म चारिणे ॥ ५७

अर्थ- पूर्वोक्त बलि वैश्व देव करके पहले अतिथि को भोजन दे तदनन्तर विधि पूर्वक ब्रह्मचरि को तथा सन्यासी को भिक्षा दे ॥ ५७

मूल- यत्पुण्य फलमाप्नोति गां दत्वा विधि वद्गुरोः ।
तत्पुण्य फल माप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजो गृही ॥ ५८

अर्थ- जो पुण्य विधिवत गुरू को गोदान देने से होता है सो पुण्य गृहस्थी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अतिथि पूजा तथा ब्रह्म चारी को भिक्षा देने से होता है ॥ ५८ *

मूल- भिक्षा मप्युद पात्रं वा सत्कृत्य विधि पूर्वकम् ।
वेद तत्त्वार्थ विदुषे ब्राह्मणा योप पादयेत् ॥ ५९

अर्थ- वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाले ब्राह्मण को विधि वत् सत्कार करके विधि पूर्वक भिक्षा तथा जलपात्र दे ॥ ५९

मूल - नश्यन्ति हव्य कव्यानि नराणाम विजानताम् ।
भस्मी भूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥ ६०

५८ - यह भिक्षा ब्रह्मचरि (विद्या पढ़ने वालों) को तथा सन्यासियों को मिलती थी सो भिक्षा इनके विपरीत अशास्त्री चिन्हधारियों को तथा यमनादिकों को मिलती है इस (कुभिक्षा) के फल से सुख की सम्भावना कब हो सक्ती है ! कभी नहीं

अर्थ - दानपात्रको न जानकर भस्म के समान अर्थात् मूर्खब्राह्मण को मोह से दिया हुआ देवान्न और पितृ अन्न नाश को प्राप्त होता है अर्थात निष्फल होता है ॥ ६० ॥

मूल - विद्यातपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्विषात् ॥ ६१

अर्थ - जो पुरुष विद्या, तप करके सम्पन्न ब्राह्मणके मुखरूपी अग्नि में हवन करते हैं अर्थात भोजन कराते हैं सो इस संसार के क्लेशों से तथा महा पातकों से बचे रहते हैं ॥ ६१ ॥

मूल - संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ६२

अर्थ - जिससमय अतिथि अपने घर आवे तब यथा शक्ति सत्कार कर बिधि पूर्वक आसन, जल, अन्न, दे ॥ ६२

मूल - शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥ ६३

अर्थ - शिलोञ्छ करके जीवन करने वाले तथा नित्य पञ्चाग्नि में हवन करने वाले के घर में भी विना सत्कार पाये अतिथि रहे तो समस्त पुण्य को ले लेता है अतएव अतिथि की यथा शक्ति सेवा अवश्य करनी चाहिये ॥ ६३

---

६० - इसे देख कर तो विद्या में अवश्य प्रवेश कीजिये और ब्रह्मचारी का भाग (हक़) मूर्ख को न दीजिये नहीं तो अविद्या नर्क में ले जायगी यह मनु जी कहते हैं ॥

६१ जो दुःख से तथा पातकों से बच कर सुख की इच्छा करे सो ऐसे (विद्वान् स्वकर्म में स्थित) ब्राह्मण को भोजन करावे मूर्ख को कदापि नहीं यह मनु जी कहते हैं ॥

पति मरगया हो उसमें जो उत्पन्न होता है उसकी गोलकसंज्ञा है ॥ ७० ॥

इति तृतीयोऽध्यायः

७० — जो स्त्री पति से छल कर वा अन्य प्रकार परपुरुष से पुत्र उत्पन्न करती है वह पुत्र कुण्ड कहाता है पति मरने पर जार (पर पुरुष) से पुत्र होता है वह गोलक कहाता है ॥

इति तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

मूल- चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १

अर्थ - आयुष के चार भाग में से पहले भाग तक गुरुकुल में ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ें और दूसरे भाग में विवाह करके गृहस्थाश्रम में रहें। १

मूल- ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ २

अर्थ - ऋत, अमृत से अथवा मृत, प्रमृत से वा सत्यानृत से निर्वाह करें परन्तु श्ववृत्ति से कभी न करें ॥ २

मूल- ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ।
मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ३

अर्थ - खेतों में बिखरे हुए अन्न को बीन के निर्वाह करे उसे शिलोञ्छ वृत्ति तथा ऋत भी कहते हैं बिना मांगे जो मिले उसे अमृत और मांगे हुए को मृत कहते हैं खेती करने को प्रमृत कहते हैं ॥ ३

मूल- सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ।
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ४

अर्थ - सत्य मिथ्या को वाणिज्य कहते हैं उससे निर्वाह करे परंतु दूसरे की सेवा करना कुत्ते की वृत्ति के समान है उसका ब्राह्मण त्याग करे ॥ ४

मूल- वर्त्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ।
इष्टीः पार्वायणान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ ५

अर्थ - शिलोञ्छ वृत्ती को करता हुआ ब्राह्मण अग्निहोत्र अवश्य करे और पर्व अयन में इष्टी यज्ञ को करे ॥ ५

मूल- न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥ ६

अर्थ - लोकवृत्ति अर्थात् आजीविका के अर्थ अनेक प्रकार का कथन न करे किन्तु मिथ्यादि दोष रहित छल शून्य शुद्ध ब्राह्मण की जीविका से अपना निर्वाह करे ॥ ६

मूल- सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ ७

अर्थ - परम सन्तोष धारण करके सुख की इच्छावाला अधिक धनोपार्जन में तत्पर न रहे क्योंकि सुख का कारण सन्तोष है दुःख का कारण असन्तोष (तृष्णा) है ॥ ७

मूल- वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ८

अर्थ - आलस्य त्याग के वेदप्रतिपाद्य अपने कर्म को नित्य करे उसके यथाशक्ति करने से परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है। ८ १

मूल- नेहेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥ ९

अर्थ - गान, नृत्यादि (नाचनादि) से तथा शास्त्रविरुद्ध कर्म से और पतित से धन संग्रह कभी न करे, चाहे और धनोपार्जन को उपाय हो वा न हो ॥ ९ २

८- मोक्ष की इच्छा वाले समस्त आधुनिक (स्वार्थीय रचित) ग्रन्थों को त्याग वेदप्रतिपाद्य कर्म का ही अनुष्ठान करें नहीं तो मोक्ष की आशा निष्फल होगी यह मनुजी की आज्ञा है ॥

९- शास्त्र से विरुद्ध कर्म करके जो धन तथा अन्याय उपार्जित जो धन गाने, बजाने, नाचने से जो धन इनका त्याग करें अर्थात

मूल- सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः।
यथातथाध्यापयंस्तु सात्यस्य कृत कृत्यता॥ १०

अर्थ- वेदके पठन पाठन के बिरोधी सब कामों को त्याग दे किन्तु पठन पाठन के सहाय (अध्यापनादि वृत्ति) से निर्वाह करके भी स्वाध्याय (पढ़ना) करे वही कृतार्थ है ॥ १०

मूल- बुद्धि वृद्धि कराण्याशु धन्यानि च हितानि च।
नित्यं शास्त्राण्य वेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्॥ ११

अर्थ- बुद्धि की शीघ्र वृद्धि करने वाले (न्याय, व्याकरण, वेदान्तादि) धन की वृद्धि करने वाले (शिल्पादि) हित की वृद्धि करने वाले (वैद्यकादि) शास्त्रों का तथा वैदिक ग्रन्थों का नित्य बिचार करें ॥ ११

मूल- यथा यथाहि पुरुषः शास्त्रं समाधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥ १२

अर्थ- जिस जिस प्रकार मनुष्य शास्त्र का अभ्यास करता है उसी उसी प्रकार शास्त्र का ज्ञान होता है और अन्य शास्त्रों के ज्ञान की शक्ति होती है ॥ १२

मूल- ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञंच सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञंच यथाशक्ति न हापयेत्॥ १३

अर्थ- ऋषि, देव, भूत, अतिथि, पितृयज्ञ अर्थात् पञ्च महा यज्ञ को यथा शक्ति सर्वदा करें इनका त्याग कभी न करें ॥ १३

मूल- पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान्।
हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ १४

अर्थ- पाषंडियों (वेदबिरुद्ध वेष धारियों) का, निन्दित जीविका करने

ये आजीविका न करनी चाहिये यह शास्त्र की मर्यादा है ॥

नेवालों को , वेद में श्रद्धा रहितों को , वेद विरुद्ध तर्क करनेवालों को , वि लाव तथा बक वृत्ति (वगुला के से आचरण करने वालों) को वाणीमात्र से भी सत्कार (प्रणामादि) न करैं ॥ १४ ¶

मूल- वेदविद्याव्रतस्नाताञ् श्रोत्रियान्गृहमेधिनः ।
पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ॥ १५

अर्थ - वेद विद्या और व्रत (ब्रह्मचर्य) जिन्हों ने समाप्त किया है उन श्रोत्रिय गृहस्थियों का हव्य कव्य से पूजन करैं इन से विपरीतों को नहीं अर्थात जो ब्रह्मचर्य से वेद नहीं पढ़ा उसका वाणी से भी सत्कार न करैं पूर्व श्लोक में अन्वय है ॥ १५

मूल- क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ।
स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥१६

अर्थ - वाल , नख , मूछों को छेदन कराता रहै तपः क्लेश का सहन करे स्वेत (सपेद) वस्त्र धारण करे वाहर भीतर शुद्ध रहै वेद पठन में तथा आत्मा के हित में नित्य तत्पर रहै ॥ १६

मूल- रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥ १७

अर्थ - रजस्वला स्त्री से गमन करने वाले पुरुष की बुद्धि , तेज , बल , नेत्र , आयु (उमर) क्षीण होते हैं इससे रजस्वला में गमन न करैं ॥ १७

---

१४ - इन समस्त का वाणीमात्र से सत्कार अर्थात वाणी से प्रणामादि भी करने का मनु जी निषेध करते हैं , जो धनादि से सत्कार करते हैं वे इस लोक में (धन नाश से) दुःखित तथा परलोक में नर्क की वेदना से पीड़ित क्यों न होंगे ? अवश्य होंगे , यह मनु जी आगे कहेंगे ॥

मूल - नांविवर्जयनस्त्वस्य रजसा सम भिप्लुताम् ।
प्रज्ञातेजो बलंचक्षु रायुश्चैव प्रवर्धते ॥ १८

अर्थ - जो रजस्वला से गमन नहीं करता अर्थात् चारदिन त्याग के करता है उसके तेज, बल, बुद्धि, नेत्र, आयु (उमर) बढ़ते हैं ॥ १८

मूल - नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामी क्षेत चाश्नतीम् ।
क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथा सुखम् ॥ १९

अर्थ - स्त्री के साथ एक पात्र में भोजन न करे और स्त्री को भोजन करती छींकती, जमाही लेती हुई को तथा सुख पूर्वक बैठी हुई को भी न देखे ॥ १९

मूल - नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्ता मनावृताम् ।
न पश्येत्प्रसवन्तींच तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥ २०

अर्थ - तेज की इच्छा वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री को अपने नेत्र में अञ्जन लगाती को तथा तैल मर्दन करती को, वस्त्ररहित (नङ्गी) को, प्रसूता (बालक जनती) को न देखें ॥ २०

मूल - नान्न मद्यादेकवासा न नग्नः स्नान माचरेत् ।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥ २१

अर्थ - एक वस्त्र पहरे भोजन, तथा नग्न होकर स्नान न करें, मार्ग में, भस्म में, गौ के स्थान में, मल मूत्र का त्याग न करे ॥ २१

मूल - प्रत्यग्निं प्रति सूर्यंच प्रतिसोमोदक द्विजान् ।
प्रतिगां प्रति वातंच प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ २२

अर्थ - अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, गौ, ब्राह्मण, पवन, इनके सन्मुख मल मूत्र के त्यागने से बुद्धि का नाश होता है ॥ २२

मूल - नाग्निं मुखेनोप धमेन्नग्नां नेक्षेतच स्त्रियम् ।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ नच पादौ प्रतापयेत् ॥ २३

अर्थ - अग्नि को मुख से न फूंके, नग्न स्त्री को न देखें, और अग्नि में मल मूत्रादि न डालें, न पैरों को तपावें ॥ २३

मूल- नाश्नीयात्सन्धिवेलायां नगच्छेन्नापिसंविशेत ।
नचैवप्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥ २४

अर्थ- दोनों सन्ध्याओं में भोजन, मार्गगमन, शयन, न करें न पृथ्वी को खोदे और अपने हाथ से पहरी हुई माला को न उतारें ॥ २४

मूल- नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत ।
अमेध्य लिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणिवा ॥ २५

अर्थ- जल में मल, मूत्र, थूक, रुधिर, बिष, इनको न डालें ॥ २५

मूल- न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत ।
नास्फोटयेन्नच क्ष्वेडन्न च रक्तो विरावयेत ॥ २६

अर्थ- नाचना, गाना, बजाना, करताल ध्वनि, दांतों से शब्द न करें, तथा पशु आदि की बोली न बोलें ॥ २६

मूल- उपानहौच वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत ।
उपवीतमलंकारं स्त्रजं करकमेवच ॥ २७

अर्थ- पराये धारण किये हुए जूते, बस्त्र, जनेऊ, आभूषण (गहने) फूलमाला, कमण्डल, इनको धारण न करें ॥ २७

मूल- लोष्टमर्दीतृणच्छेदीनखखादीचयोनरः ।
सविनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेवच ॥ २८

अर्थ- मृत्तिका के गोले को मर्दन करने वाला, तृण तोड़ने वाला, बाल नखों को दांतों से तोड़ने वाला, चुगल, अपवित्र मनुष्य, ये सब शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २८

मूल- न विगर्ह्य कथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत ।
गवांच यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥ २९

अर्थ- निन्दित कथा, अर्द्धाङ्ग में माला, बैल की पीठ पर सवारी करना ये सब वर्जित हैं ॥ २९

मूल- नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत ।

शयनस्थोऽपि भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने ॥ ३०

अर्थ- चौसर (चौपड़ , सतरञ्ज) कभी न खेलें, अपनी उपानहा (जूते) हाथ में लेके न चलें , शय्या (खाट) पर बैठके हाथ पर अन्न रखके भोजन न करें तथा आसन पर भोजनपात्र को रख के कभी न करें ॥ ३० ॥

मूल- आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ३१

अर्थ- गीले पैर कर अर्थात् पैर धोके भोजन करे और गीले पैर कर सोवे नहीं पैर धोके भोजन करने वालों की उमर बढ़ती है ॥ ३१

मूल- दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥ ३२

अर्थ- दश हिंसकों के समान एक चक्री और दश चक्रियों के समान एक कलार (मद्य बेचने वाला) और दश कलारों के समान एक वेषधारी (शास्त्रविरुद्ध चिन्हधारी) और दश वेषधारियों के समान एक अन्याय कारी राजा ॥ ३२ ॥

३० - चौपड़ आदि निरर्थक क्रिया कदापि न करना चाहिये किन्तु इसलोक तथा परलोक का कुछ भी अर्थ सिद्ध हो उस क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिये क्योंकि यह मनुष्य देह स्वार्थ तथा परमार्थ के ही लिये ईश्वर ने रचा है इस (मनुष्य देह) से निरर्थक चेष्टा करना नर्क का सामान है यह शास्त्र का तात्पर्य है ॥

३२ - धर्मशास्त्र में वेषबनाने का निषेध है अर्थात् सहस्र (हज़ार) हिंसकों के समान एक वेषधारी है अतएव नवीन ग्रन्थों का आश्रय ले शास्त्रविरुद्ध वेष बनाकर आजीविका करने वालों को सचेत होना चाहिये नहीं तो सहस्र हिंसकों का दण्ड (नर्क) भोगना पड़ेगा यह मनुजी कहते हैं ॥

मूल - ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेद तत्त्वार्थ मेवच ॥ ३३

अर्थ - ब्राह्म मुहूर्त्त में उठके धर्म, अर्थ, का चिन्तन करे और धर्मार्थ का कारण भूत जो शरीर के क्लेश उन का तथा वेद के तत्वार्थ का विचार करे ॥ ३३ १

मूल - उत्थायावश्यकं कृत्वा कृत शौचः समाहितः ।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥ ३४

अर्थ - तदनन्तर उठ के आवश्यक कार्य कर के शौचादि क्रिया समाप्त कर प्रातः काल को सन्ध्या कर के बहुत देर तक जप करे ऐसे ही सायं काल के समय में भी सन्ध्या करके जप करे ॥ ३४

मूल - ऋषयो दीर्घ सन्ध्यात्वाद्दीर्घ मायुर वाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्त्तिं च ब्रह्म वर्चस मेवच ॥ ३५

अर्थ - ऋषि लोग दीर्घ सन्ध्या से अर्थात् सन्ध्योपासनोत्तर विशेष जप करने से बड़ी आयु (उमर) बुद्धि, यश, कीर्त्ति, ब्रह्म तेज को प्राप्ति होते हैं ॥ ३५

मूल - यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ।
ब्रह्म छन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥ ३६

अर्थ - विधि पूर्वक नित्य गायत्री आदि छन्दों करके युक्त वेद पढ़े वेद के पढ़ने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मणादि ग्रन्थों को भी (सावकाश में) पढ़ें ॥ ३६

३३ - अरुणोदय से दो घड़ी पहिले उठना चाहिये और दिन के कार्यों को विचार यथा क्रम प्रवृत्त होना चाहिये, न कि चार घड़ी दिन चढ़े उठ बिना स्नान, नित्य कर्म (सन्ध्योपासनादि) को त्याग आजीविका को भागना ॥

मूल- न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ ३७

अर्थ - भोजन करके स्नान न करे आतुर (परिश्रम वा रोग से पीड़ित) पुरुष भी स्नान न करे विशेष रात्री गयी हो तब भी न करे और बिना कारण समस्त वस्त्रों सहित स्नान न करे तथा बिना जाने हुए नदी जलाशयों में स्नान न करे ॥ ३७

मूल- वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः ।
अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ॥ ३८

अर्थ - शत्रु और उसका सहायक, पापी, चोर, तथा परस्त्री इन पांचों का सेवन न करे ॥ ३८

मूल- न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ३९

अर्थ - इस लोक में भी पुरुष की आयु का नाश करने वाला परस्त्रीगमन के समान और कोई कार्य नहीं है अतएव न करे ॥ ३९

मूल- क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् ।
नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥ ४०
एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ।
तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ ४१

अर्थ - क्षत्रिय, सर्प, बहुत पढ़ा ब्राह्मण, ये शरीर से कृश (असमर्थ) भी हों परन्तु इनका अपमान कदापि न करे, क्योंकि ये तीनों अपमान किये हुए क्रोध करके पुरुष के तन, धन, नाश कर देते हैं अतएव बुद्धिमान् इनका अपमान न करें ॥ ४० ॥ ४१ ॥ १

४०, ४१ - क्षत्रिय वीरता से सबल है, और सर्प विष से, बहुत पढ़ा ब्राह्मण विद्यादि गुणों से सबल है अतएव इनसे डरना चाहिये ॥

मूल - नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥ ४२

अर्थ - पहिले पुरुषार्थ करके भी धन न मिला हो तो अपने को मन्द न समझे किन्तु मरण पर्यन्त धन की इच्छा करके पुरुषार्थ करता रहे लक्ष्मी का होना दुर्लभ कभी न माने ॥ ४२ टि

मूल - सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ ४३

अर्थ - सत्य और प्रियः बचन कहें सत्य भी हो परन्तु अप्रियः हो तो न कहें और प्रियः हो परन्तु असत्य हो तो भी न कहें अर्थात् दूसरे से सत्य तथा प्रियः वचन बोलना यह सनातन धर्म है ॥ ४३ टि

मूल - मङ्गलाचारयुक्तः स्यात् प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ।
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥ ४४

अर्थ - पुरुष को चाहिये कि मङ्गल वस्तु और आचार से युक्त तथा आलस्य रहित बाहर भीतर पवित्र, जितेन्द्रिय हो के रहे और आलस्य रहित गायत्री का जाप तथा हवन करे ॥ ४४

मूल - मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रयतात्मनाम् ।
जपतां जुह्वताञ्चैव विनिपातो न विद्यते ॥ ४५

अर्थ - मङ्गल, आचार, पवित्रता, जप, होम, इन्हें करने वाले मनुष्य को कोई उपद्रव नहीं होता ॥ ४५ टि

४२ - पुरुषार्थ ही सर्वार्थसाधक है प्रारब्ध कुछ नहीं किन्तु पूर्वजन्मकृत पुरुषार्थ को ही प्रारब्ध तथा दैव कहते हैं अन्य कोई नहीं यथा "पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते" अतएव पुरुषार्थ का त्याग न करना चाहिये जैसा किसी कवि ने कहा है "उद्यमः साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमः । षडेते यत्र विद्यन्ते तस्मा दैवोपि शंकते"

मूल- वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
तंह्यस्याहुः परंधर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ ४६

अर्थ - वेद ही का नित्य यथावसर आलस्य त्याग के अभ्यास करें यह ही परम धर्म है और अन्य उपधर्म हैं अर्थात् वेद ही समस्त धर्म का मूल है।४६

मूल- वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥४७

अर्थ - नित्य वेदाभ्यास, पवित्रता, तप, सब प्राणियों से वैर का त्याग इनसे पूर्व जाति की स्मृति होती है, अर्थात् श्रेष्ठ क्रियाओं में प्रवृत्ति से पूर्व जन्म में श्रेष्ठ वर्ण होने का अनुमान होता है ॥ ४७ ९

मूल- पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ।
ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते ॥ ४८

अर्थ - पूर्व जाति का स्मरण करके बारम्बार वेदाभ्यास ही करता है और निरन्तर वेदाभ्यास से (अज, अनादि, परमात्मा को जान के) अनन्त सुख (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ४८

मूल- श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ ४९

अर्थ - श्रुति स्मृति से प्रतिपाद्य, स्वकर्म (वेदपठन सन्ध्योपासनादि)-

---

जिसमें उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, उत्साह, होता है उससे दैव भी डरता है पुरुषार्थियों के वचन हैं "कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयं" इत्यादि ॥

४३ - सत्य और कोमल मनोहर वाणी ही बोलें असत्य तथा कठोर शब्द भी मुख से न कहे यह धर्म शास्त्र की आज्ञा है इसपर नित्य ध्यान रहे ॥

४५ - जो उपद्रवों से बचने की इच्छा करे वे इनका सेवन प्रीति से करें ॥

४७ - श्रेष्ठता के चिन्ह ये हैं जिसमें ये चिन्ह हों उसे पूर्व जन्म का भी उत्तम-

से सम्बन्ध रखने वाला तथा धर्म का कारण जो सत्पुरुषों का आचरण उसे आलस्य रहित निरन्तर सेवन करें ॥ ४९

मूल- आचाराल्लभतेह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ५०

अर्थ - आचार से ही शास्त्रोक्त आयु (उमर) प्राप्त होती है आचार से ही उत्तम सन्तान, अक्षय धन भी होता है और आचार ही से अशुभ लक्षण नष्ट होते हैं ॥ ५०

मूल- दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ ५१

अर्थ - दुराचारी मनुष्य की लोक में निन्दा होती है अतएव दुःख का भागी सदा व्याधी से पीड़ित, अल्पायु वाला होता है ॥ ५१

मूल- सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ५२

अर्थ - जो पुरुष श्रद्धा से श्रेष्ठ आचरण करता है और किसी की निन्दा नहीं करता सो सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से रहित भी हो शत (१००) वर्ष जीता है ॥ ५२

मूल- यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ ५३
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ ५४

अर्थ - जो जो कार्य पराधीन हैं उनका यत्न से त्याग करें और जो जो अपने आधीन हैं उन का यत्न से सेवन करें क्योंकि पराधीन कार्य सब दुःख का करने वाला है और अपने आधीन कार्य सब सुख का करने वाला है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

जानना चाहिये ॥

मूल- परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत् ।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु तौ ॥ ५५

अर्थ - क्रोधित होके दूसरे को मारने के लिये दण्ड (लाठी आदि) न उठावे न दूसरे के मारे परन्तु शिष्य,पुत्र को शिक्षार्थ (बाणी आदि से) ताड़ना करे ॥ ५५

मूल- अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥ ५६

अर्थ - जो मनुष्य अधर्म के व्यवहार से तथा मिथ्या भाषणादि उपाय से धन सञ्चय (इकट्ठा) करे और हिंसा में प्रीति रक्खे सो इस संसार में कदापि सुख नहीं पाता है ॥ ५६ *

मूल- नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ ५७

अर्थ - पृथ्वी जैसे बीज बोने पर तत्काल फल नहीं देती किन्तु परिपाक समय पर देती है वैसे ही किया हुआ अधर्म तत्क्षण फल नहीं देता, धीरे धीरे परिपाक समय पर करने वाले का जड़ से नाश कर देता है ॥ ५७

मूल- अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ ५८

५३ - ५४ - इस पर ध्यान दे इस लोक तथा परलोक के अर्थ पुरुषार्थ करना ही उचित है न कि पराधीन हो इस लोक में दुःख तथा किसी (स्वार्थी वेद विरोधी) पर विश्वास ला आलसी हो स्वधर्म त्याग परलोक में मोक्ष के बदले नर्क भोगना ॥

५६ - सुख की इच्छा वाला अधर्म को त्याग न्याय से अर्थात् जिस में किसी को दुःख न हो (विश्वासघात, दगा फ़रेब, कपट, छल, मिथ्या को त्याग) शुद्ध व्यवहार से धनोपार्जन करे, नहीं तो दुख भोगना पड़ेगा,

अर्थ - पहिले अधर्म से बढ़ता है फिर कल्याण को प्राप्त होता है तदनन्तर शत्रुओं को जीतता है परन्तु अन्त में जड़ सहित नष्ट हो जाता है।५८

मूल- सत्य धर्मार्य वृत्तेषु शौचे चैवा रमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ ५९

अर्थ - सत्य धर्म, सदाचार, पवित्रता, इनमें सदा प्रीति रक्खें और स्त्री पुत्र, शिष्य, को यथोचित ताड़ना करें और वाणी, बाहु, उदर का संयम करें अर्थात् मिथ्याभाषण, परपीडन, उदर निमित्त असन्तोष न करें।५९

मूल- प्रतिग्रह समर्थो ऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ ६०

अर्थ - दान लेने में समर्थ (विद्या तपसम्पन्न) भी पुरुष दान लेने से बचे क्योंकि प्रतिग्रह से ब्रह्मतेज की शीघ्र हानि होती है ॥ ६०

मूल- हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम् ।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत ॥ ६१

अर्थ - अविद्वान् (मूर्ख ब्राह्मण) सुवर्ण, भूमि, घोड़ा, गौ, अन्न, वस्त्र, तिल, घृत, इनका दान लेने से भस्म होता है जैसा अग्निसंयोग से काष्ठ भस्म होता है ॥ ६१

यह मनु जी कहते हैं ॥ है

५८ - कोई यह न जाने कि पाप से तो अधिक उन्नति होती है जैसा कि अमुक कैसा अनर्थ करते हैं और सब (धन, धान्य, सन्तानादि) से सुखी हैं किन्तु एक दिन पापी का जड़ सहित नाश होगा यह मनु जी कहते हैं ॥

६१ - इसको देख दान पात्रों को विद्या पढ़ना चाहिये और दाता भी दानपात्रों को विद्वान् बनाने का यत्न करें क्योंकि उनके दान से मूर्ख ब्राह्मण भस्म हो गया तो ब्रह्म हत्या से महा पातकी होना पड़ेगा यह धर्म शास्त्र का तात्पर्य है ॥

मूल - हिरण्य मायुरन्नंच भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ।
अश्वश्चक्षु स्त्वचंवासो घृतंतेजस्तिला: प्रजा:। ६२

अर्थ - सुवर्ण तथा अन्न का प्रतिग्रह आयु (उमर) को भूमि और गौ का शरीर को घोड़ा का नेत्रों को वस्त्र का त्वचा को घृत का तेज को तिल्लों का सन्तान को भस्म करता है ॥ ६२

मूल - अतपास्त्वनधीयान: प्रतिग्रहरुचिर्द्विज: ।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सहतेनैव मज्जति ॥ ६३
तस्माद्विद्वान्विभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ।
स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिवसीदति ॥ ६४

अर्थ - तप, विद्या कर के हीन जो ब्राह्मण दान लेने में प्रीति करता है सो दाता सहित नर्क में जाता है जैसे पत्थर की नौका में बैठा हुआ पुरुष नौका सहित डूबता है अतएव मूर्ख ब्राह्मण प्रतिग्रह मात्र से डरता रहे क्योंकि थोड़े भी दान से वह अत्यन्त दु:ख पाता है जैसे कीच में फसी हुई गाय पाती है ॥ ६३ । ६४

मूल - नवार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे ।
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥ ६५

अर्थ - धर्मज्ञ पुरुषों को उचित है कि वैडाल व्रतिक, बक व्रतिक, तथा विद्या हीन (मूर्ख) ब्राह्मण का जल मात्र से भी सत्कार न करें ॥ ६५

मूल - त्रिष्वप्येतेषु दत्तंहि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेवच ॥ ६६

अर्थ - इन तीनों को धर्मोपार्जित धन का दान दाता दे तो परलोक में दोनों (दाता, प्रतिग्रहिता) को अनर्थ (दु:ख) कारक होता है ॥ ६६

मूल - यथाप्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।

तथानिमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ ६७

अर्थ - जैसे पत्थर की नाव में तरने वाला नाव सहित जल में डूबता है, वैसे ही दान देने वाला और लेने वाला दोनों नर्क में गिरते हैं इससे मूर्ख को दान न दे ॥ ६७ ॥

मूल- धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ ६८

अर्थ- जो पुरुष धर्म का चिन्ह मात्र धारण करे तथा सदा लुब्ध (पर धन की इच्छा वाला) छल से रहै, संसार को ठगे, सबकी निन्दा करे, तथा जीव मारने का स्वभाव है जिसका सो वैडाल व्रतिक जानना चाहिये ॥ ६८

मूल- अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ ६९

अर्थ - जो अपनी नम्रता ज़ाहिर करने के लिये नीचे को दृष्टि रक्खे, कठोरता युक्त स्वार्थी (अपने मतलब में तत्पर) कुटिल, कपट से निर्वाह करे सो बक व्रतिक जानना चाहिये ॥ ६९

मूल- येबकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ।
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥ ७०

अर्थ- जो ब्राह्मण बक व्रतिक हैं तथा वैडाल व्रतिक हैं वे अपने पाप से अन्धतामिस्र नामक नर्क में गिरते हैं ॥ ७०

---

६२ से ६७ तक के श्लोकों को देख सचेत होना चाहिये किन्तु दान देने की इच्छा करे तो विद्या दान दे जिस (विद्या) दान का पुण्य मनु जी सब दानों से विशेष आगे कहेंगे और (धनादि) दान मूर्ख को वर्जित है विद्या दान का तो मूर्ख ही अधिकारी है अतएव विद्यादान का देना विशेष पुण्य इतना ही नहीं किन्तु पाप से भी बचाता है ॥

मूल- अलिङ्गी लिङ्गि वेषेण यो वृत्ति मुपजीवति ।
सलिङ्गि नां हरत्येन स्तिर्यग्योनौ च जायते ॥ ७१

अर्थ- जो पुरुष ब्रह्मचारी वा सन्यासी तो है नहीं परन्तु उन का वेष बना के जीविका करे वह ब्रह्मचारी वा सन्यासी के पापों को प्राप्त होता है। ७१

मूल- भ्रूणघ्नावेक्षित ञ्चैव संस्पृष्ट ञ्चाप्युदक्यया ।
पतत्रिणा वलीढ ञ्च शुना संस्पृष्ट मेव च ॥ ७२

अर्थ- जो अन्न बाल हत्यादि दोष युक्त पुरुष को देखा हुआ, रजस्वला तथा कुत्ते से स्पर्श हुआ पक्षियों का खुतरा हुआ उसे भोजन न करे ॥ ७२

मूल- गवाचान्न मुपघ्रातं घुष्टान्न ञ्च विशेषतः ।
गणान्नं गणिकान्न ञ्च विदुषाञ्च जुगुप्सितम् ॥ ७३
स्तेन गायन योश्चान्नं तक्ष्णो वार्द्धुषि कस्य च ।
दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगड स्य च ॥ ७४
अभि शस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च ।
शुक्तं पर्युषित ञ्चैव शूद्रस्योच्छिष्ट मेव च ॥ ७५

अर्थ- जो अन्न गौ का सूंघा हुआ, और किस का है कौन खावेगा इस प्रकार कहा हुआ समूह से इकट्ठा किया हुआ, वेश्या का अन्न तथा विद्वानों कर के निन्दित चोर का, गाने वालों का, बढ़ई का, ब्याज लेने वाले का, यज्ञ में दीक्षित का, कृपण का, बध्य (कैदी) का, निन्दित का, नपुंसक का, व्यभिचारिणी स्त्री का, छल करने वाले का, शूद्र का, ये सब अन्न तथा बासी अन्न उच्छिष्ट, रस रहित किन्तु स्वाद जिसका बदल गया हो ये सब अन्न त्याज्य हैं ॥ ७३। ७४। ७५

मूल- पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्या स्त्वन्न मिन्द्रियम् ।
विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्र विक्रयिणो मलम् ॥ ७६
य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्त्तिताः ।
तेषां त्वगास्थिरो माणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ ७७

अर्थ - वैद्य का अन्न पीव के, व्यभिचारिणी का वीर्य के, व्याज लेनेवाले का विष्टा के, शस्त्र वेचने वाले का मल के समान है पूर्वोक्त तथा और जिन पुरुषों के अन्न का क्रम से निषेध कहा है उन पुरुषों के अन्न को उन्हीं के त्वचा, अस्थि (हड्डी) केशों के समान विद्वान् कहते हैं अर्थात् त्वचा अस्थि केशों के भोजन में जो दोष है वही दोष उन के अन्न भोजन में है ॥ ७६। ७७

मूल- भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम् ।
मत्या भुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेवच ॥ ७८

अर्थ - इन (त्याज्यों) में से किसी के अन्न को अज्ञान से भोजन करे तो तीन दिन उपवास करे और जान के करे तो कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करे और वीर्य, विष्टा, मूत्र के भोजन में भी कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करे। ७८

मूल- यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥ ७९

अर्थ - यान (हाथी घोड़ा रथादि) शय्या इनके देने वाला स्त्री को, अभय का देने वाला ऐश्वर्य्य को, अन्न का देने वाला अनन्त सुख को पाता है और विद्या का दान करने वाला ब्रह्म को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ७९

मूल- सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ ८०

अर्थ - समस्त अर्थात् जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल, सुवर्ण, घृतादि दान मात्रों में विद्या दान श्रेष्ठ है ॥ ८० ¶

८० विद्यादान का फल मोक्ष महर्षि मनु जी कहते हैं इससे समस्त दानों में विद्या दान उत्तम है युक्ति से भी सम्पूर्ण दानों से विद्या दान का फल विशेष है जो मनुष्य जिस पदार्थ को दान देता है दूसरे जन्म में-

मूल- येनयेनतु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥ ८१

अर्थ - जो पुरुष जिस (स्वर्गलोकादि) के निमित्त जिस वस्तु का दान करते हैं वे पुरुष (उसी स्वर्गलोकादि सहित) उसी वस्तु को सत्कार पूर्वक प्राप्त होते हैं ॥ ८१

मूल- धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ८२
नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा नज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ ८३

अर्थ- धीरे धीरे परलोक की सहायता के अर्थ जीव मात्र को क्लेश न देता हुआ धर्म का सञ्चय करें जैसे पिपीलिका (चेंटी) मृत्तिकाको एकत्र करती है क्योंकि परलोक की सहायता के लिये माता, पिता, पुत्र, स्त्री, जाति बान्धव कोई नहीं रहते केवल धर्म ही परलोक में सहायता करता है ॥ ८२ । ८३

मूल- एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ ८४

(सहस्र गुण तथा जैसे देश काल में किया हो तदनुसार) उसी पदार्थ को पाता है यह शास्त्र मर्यादा है अब देखिये अन्न, घृत, दधि, बस्त्र भूषणादि पदार्थ पशु (गौ, घोड़ा, कुत्तादि) भी खाय सक्ते हैं अर्थात् अन्नादि दान का फल पशु योनि में भी भोग सक्ते हैं परन्तु विद्या तो सिवाय मनुष्य के और कोई पढ़ ही नहीं सकता तब तो विद्या दान करने वालों को (उसका फल भोगने दूसरे जन्म में) मनुष्य योनि अवश्य मिलेगी अतएव विद्या दानसे मनुष्य योनि (जो सब सुखोंका मूल तथा साधन भूत है सो) मिलती है यही विशेष फल है ॥

मूल- मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ ८५
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ ८६

अर्थ - इकल्ला ही जीव उत्पन्न होता है और इकल्ला ही मरता है तथा इकल्ला ही पाप पुण्य को भोगता है कोई संग नहीं करता मृत (मरे) शरीर को काष्ट मृतिका के डेले के समान पृथिवी में छोड़ के समस्त बान्धव लौट आते हैं किन्तु एक धर्म ही संग जाता है अतएव परलोक की सहायतार्थ नित्य धीरे धीरे धर्म को एकत्रित करें क्योंकि धर्म ही की सहायता से दुःख रूपी संसार सागर से तरता है ॥ ८४ । ८५ । ८६ ॥

मूल- धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥ ८७

अर्थ - तप से दूर किये हैं पाप जिसने और धर्म में तत्पर अतएव प्रकाशमान पुरुष को धर्म ही शीघ्र स्वर्गादि लोक को पहुंचाता है इससे धर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ ८७

मूल - उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह ।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत ॥ ८८
उत्तमानुत्तमानाच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्जयन् ।
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ ८९

८६ - पुत्रादि के अर्थ भी अधर्म न करें और अधर्म से पुत्रादि का हित होता भी नहीं किन्तु पाप से दुखित ही होते हैं आप पापी हो नर्क भोगना पड़ता है अतएव वेद विरोधी भूतादि की सेवा छोड़ वेद प्रतिपाद्य सद्धर्म में ही प्रवृत्त हों । यही (एक) धर्म संग जायगा यह मनु जी की आज्ञा है ॥

अर्थ- यदि अपने कुल की उन्नति चाहे तो सदा विद्या, गुण, कर्म युक्त पुरुषों के साथ सम्बन्ध करे और हीन पुरुषों का त्याग करे क्योंकि उत्तम पुरुषों के साथ सम्बन्ध करने से और अधमों का साथ त्यागने से ब्राह्मण श्रेष्ठता को प्राप्त होता है और विपरीत से अर्थात् उत्तमों का संग त्यागने से अधमों का संग करने से शूद्र तुल्य होता है ॥ ८८। ८९ ※

मूल- दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दम दानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ ९०

अर्थ- आरम्भित कार्य का समाप्त करने वाला, कोमल चित्तवाला, कुसङ्ग रहित जीव मात्र की हिंसा से निवृत्त जितेन्द्रिय दानी पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ९०

मूल- योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मा पहारकः ॥ ९१

अर्थ- जो सज्जन पुरुषों में अपनी प्रकृति तथा कुल आदि को अन्य-

※ ८९- सतसंग की प्रशंसा जितनी लिखी जाय वह न्यून से न्यून है और अनेक विद्वानों ने लिखी भी है यथा।

"जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्तिम्
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्"

भावार्थ- बुद्धि की जड़ता को हरती है सत्यवाणी को सञ्चय करती है मान की उन्नति, चित्त की प्रसन्नता, पाप का नाश, चारों दिशा में कीर्ति का विस्तार करती है ऐसा कोई कार्य नहीं जो सत्संग से सिद्ध न हो अतएव कुसंग को त्याग सत्संग ही करना चाहिये ॥

बतलाता है वह मनुष्य अपनी आत्मा का चुराने वाला होने से महा पातकी है ॥ ९१

मूल- वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेय कृन्नरः ॥ ९२

अर्थ - समस्त पदार्थ बाणी में नियम से रहते हैं अर्थात् बाणी से सम्बन्ध रखते हैं तथा बाणी से ही उत्पन्न होते हैं और बाणी से ही समस्त व्यवहार किये जाते हैं अतएव बाणी का चुराने वाला (मिथ्या वादी) सब पदार्थों का चोर है ॥ ९२ ※

मूल- महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथा विधि ।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थ्य माश्रितः ॥ ९३

अर्थ- महर्षि, पित्र, देव, इन तीनों के ऋण से विधि पूर्वक निवृत्त हो पुत्रों पर सम्पूर्ण कुटुम्ब का भार रख के उदासीन वृत्ति से गृह में ही निवास करे ॥ ९३

मूल- अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेद शास्त्र वित् ।
व्यपेत कल्मषो नित्यं ब्रह्म लोके महीयते ॥ ९४

अर्थ - बेद शास्त्र का ज्ञाता ब्राह्मण इस प्रकार धर्माचरण से बर्ते तो सब पापों को त्याग के नित्य ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है ॥ ९४

इति चतुर्थो ऽध्यायः

---

९२ - मिथ्या भाषण के समान कोई पाप नहीं अर्थात् मिथ्या वादी सब पदार्थों का चोर है ऐसे निन्दनीय मिथ्याभाषण को अवश्य त्यागना चाहिये ॥

इति चतुर्थो ऽध्यायः ४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मूल- सतानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः।
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ १

अर्थ - महर्षियों के प्रति मनु के पुत्र धर्मात्मा भृगु जी बोले कि जिन दोषों से ब्राह्मणोंको मृत्यु मारना चाहती है तिन्हें सुनिये ॥ १

मूल- अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ २

अर्थ- आलस्य कर वेद के अनभ्यास से सदाचार के छोड़ने से दोषित अन्न के भोजन से मृत्यु ब्राह्मणों को मारना चाहती है ॥ २

मूल- लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च ॥ ३

अर्थ- लहशन, गाजर, प्याज, छत्राक, अपवित्र से उत्पन्न (चौलाई आदि) ये सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों, को वर्जित हैं ॥ ३

मूल- अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा।
आविकं सान्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥ ४

अर्थ - दश दिन तक की व्याई हुई गौ का, उष्ट्रिनी का, एक खुर वाले पशु का, भेड़ का, विषय चाहने वाली तथा बिन बत्सा की गौ का दूध वर्जित है ॥ ४

मूल- आरण्यानाञ्च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना।
स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥ ५

अर्थ- जंगली पशुओं में भैंस को छोड़ सब का दूध त्याज्य है अर्थात् हाथी आदि समस्त बन बासियों में भैंस का ही दूध पीने योग्य है और

स्त्री का दूध तथा सम्पूर्ण भुक्त (जो बस्तु स्वभावसे मधुर हो और काला न्तर में खट्टी हो जाय सो) भी बर्जित है ॥ ५

मूल - योबन्धनबधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ।
ससर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्त मश्नुते ॥ ६

अर्थ - जो मनुष्य प्राणियों को बध, बन्धन, क्लेश देने की इच्छा नहीं करता वह सब का हित चाहने वाला पुरुष अनन्त सुख भोगता है ॥ ६ ✽

मूल - यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिंबध्नाति यत्र च ।
तदवाप्नोत्य यत्नेन यो हिनस्ति न किंचन ॥ ७

अर्थ - जो मनुष्य जीव मात्र की हिंसा नहीं करता वह जिस का चिन्तन करता है जिस कर्म को करता है जिसमें ध्यान देता है उसे बिना परिश्रम प्राप्त होता है ॥ ७ ✽

मूल - नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
नच प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत ॥ ८

अर्थ - बिना जीव मारे मांस कभी उत्पन्न नहीं होता और जीव का मारना

६-७ - देखिये धर्म शास्त्र में देशभक्तों का महत्व कितना लिखा है अर्थात् सबका हित चाहने वालों को अनन्त सुख मिलते हैं जिन का अन्त नहीं असंख्य फिर कहिये कौनसा सुख न मिलेगा सभी मिलेंगे इतना ही नहीं किन्तु दृढ़ देशभक्त हो जिसका चिन्तन करेगा जिस का ध्यान देगा तथा जिस को किया चाहेगा सब कार्यों को बिना परिश्रम सिद्ध कर लेगा यह महर्षि मनु कहते हैं, अस्तु भारतबर्ष में बैर और फूट का कारण यही है कि ऐसे धर्मशास्त्र को प्रायः देखते ही नहीं जो भारत बासियों का सर्बस्व है यदि देखते तो अनेक विचित्र बुद्धियों से परस्पर बैर कर फूट से भारत को आर्तन बनाते -

स्वर्ग दायक नहीं किन्तु नर्क दायक है अतएव मांस भक्षण न करना चाहिये ॥ ८

मूल- समुत्पत्तिं च मांसस्य बधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्व मांसस्य भक्षणात ॥ ९

अर्थ - मांस की उत्पत्ति तथा जीवों के बध बन्धनादि रूपी क्लेश को देख मांस मात्र के भक्षण का त्याग करे ॥ ९

मूल- अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकः ॥ १०

अर्थ - अनुमति (सलाह) देने वाला, मांस के काटने वाला, मारने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, बनाने वाला, देने वाला, खाने वाला, ये आठ हिंसक हैं ॥ १०

मूल- बर्षे बर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ ११

अर्थ - जो मनुष्य बर्ष बर्ष में अश्वमेध यज्ञ शत (१००) बर्ष तक करे और जो मांस भक्षण न करें उन दोनों के पुण्य का फल समान है ॥ ११

मूल- फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ।
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांस परिवर्जनात् ॥ १२

अर्थ - कन्दमूल, फल, फूल, मुनि अन्नों के भोजन से जो फल नहीं प्राप्त होता जो मांस के न खाने वाले को होता है ॥ १२

मूल- मांस भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १३

अर्थ - यहां जिस का मांस मैं खाता हूं वह उस जन्म में मेरा मांस खायगा यह मांस शब्द का अर्थ विद्वान् पुरुष करते हैं — माम् स भक्षयिष्यतीति मांसम् ॥ १३ ९

मूल- सर्वेषां शाव माशौचं माता पित्रोस्तु सूतकम् ।

सूतकं मातुरेवस्यादुपस्पृश्य पिताशुचिः ॥ १४

अर्थ - मृतिक आशौच (सूतक) सब सपिण्डों को अर्थात् सात पीढ़ी तक के सम्बन्धियों को है और जन्म निमित्तक माता पिता को ही है सो भी पिता को स्नान पर्यन्त है ॥ १४

मूल - रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ १५

अर्थ - गर्भ गिरने से स्त्री का आशौच जै मास का गर्भ हो उतने दिवस का है और रज के निवृत्त होने पर स्नान कर रजस्वला शुद्ध होती है। १५

मूल - विगतन्तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचि भवेत् ॥ १६

अर्थ - विदेश में मृतक वा उत्पन्न सुने तो दश दिन के भीतर जै दिन शेष रहें उतने ही दिन का आशौच है ॥ १६

मूल - अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचि भवेत्।
सम्वत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति ॥ १७

अर्थ - दश दिन बीते सुने तो तीन दिन का आशौच है और वर्ष बीते सुने तो स्नान पर्यन्त ही आशौच है ॥ १७

मूल - शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ १८

अर्थ - ब्राह्मण दश, क्षत्रिय बारह, वैश्य पन्द्रह, शूद्र तीस दिन में शुद्ध होते हैं ॥ १८

१- मांस शब्द का अर्थ यही है कि जिस पशु का बध करके मैं खाऊंगा वह मेरा भी वध करेगा इस पर ध्यान दे मांस भोजियों को सचेत होना चाहिये किन्तु मांस भक्षण से बकरा आदि की योनियों में जन्म ले बधनादि क्लेश उठाना तथा नर्क भी भोगना मनुष्य का कार्य नहीं ॥

मूल- नवर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ।
नचतत्कर्मकुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १९

अर्थ- आशौच के दिनों को न बढ़ावे और अग्निहोत्रादि कर्मों का त्याग न करे क्योंकि अग्निहोत्र का करने वाला सपिण्ड भी अशुद्ध नहीं होता है ॥ १९

मूल- दिवाकीर्तिमुदक्यांच पतितं सूतिकां तथा ।
शवंतत्स्पृष्टिनं चैवस्पृष्ट्वास्नानेनशुध्यति ॥ २०

अर्थ- चाण्डाल, रजस्वला, ब्रह्महिंसादि दोषों से पतित, प्रसूता स्त्री, शव (मुर्दा) तथा उसका स्पर्श करने वाले, इन सब को स्पर्श करके वस्त्रों सहित स्नान मात्र से शुद्ध होता है ॥ २०

मूल- अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेवच ।
स्नात्वासचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥ २१

अर्थ- सजाती वा विजाती मुर्दे के संग जो जाय तो वस्त्रों सहित स्नान कर अग्नि का स्पर्श कर घृत प्राशन करने से शुद्ध होता है ॥ २१

मूल- न विप्रंस्वेषुतिष्ठत्सु मृतंशूद्रेण नाययेत् ।
अस्वर्ग्याह्याहुतिः सास्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥ २२

अर्थ- मृतक ब्राह्मण को अपनी सजातियों के होते शूद्रादि नीचों से स्पर्श न करावे किन्तु उत्तम जाति से करावे क्योंकि शूद्र के स्पर्श से दूषित शरीर का हवन प्रेत को स्वर्ग कारक नहीं होता ॥ २२ ॥

२२ - इससे स्पष्ट सिद्ध है कि अन्त्येष्टि शारीरिक संस्कार वैदिक है अर्थात् चिता में वेद मन्त्रों से घृतादि की आहुति दे भस्म करना मनुस्मृति से सिद्ध है, वेद से भी सिद्ध है यथा "भस्मान्तं शरीरम्" इत्यादि इस (मृतक संस्कार) का अब चिन्ह मात्र ही अवशेष रहा है किन्तु थोड़ा सा घृत अब भी चिता में डालते हैं ॥

मूल- ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपांजनम् ।
वायुः कर्मार्ककालौच शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥ २३

अर्थ - ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मृतिका, मन, जल, वायु, उपलेपन, कर्म, सूर्य, काल, ये सब देहधारियों के शुद्धि के हेतु हैं ॥ २३

मूल- सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारि शुचिः शुचिः ॥ २४

अर्थ - समस्त शौचों में अर्थ शौच (यथा न्याय सत्य व्यवहारादि से धनोपार्जन) अति श्रेष्ठ है क्योंकि जो अर्थ (धन) में शुद्ध है वह शुद्ध है और जो मृतिका जलमात्र से शुद्ध तथा अर्थ में अशुद्ध (अन्याय, छल, मिथ्या भाषणादि से धनोपार्जन) है वह अशुद्ध है ॥ २४

मूल- क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्न पापा जप्येन तपसा वेद वित्तमाः ॥ २५

अर्थ - विद्वान् पुरुष क्षमा से शुद्ध, तथा विरुद्ध कार्य करने वाले दान से गुप्त पातकी जन जप से वेद के जानने वाले तप से शुद्ध होते हैं ॥ २५ *

मूल- अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ २६

अर्थ - जल से शरीर की शुद्धी, सत्य बोलने से मन की, विद्या और

---

२५ - विद्वान् क्षमा से पवित्र होते हैं अतएव विद्वानों को सब प्रकार क्षमा करना चाहिये तभी कुछ उपदेश द्वारा देशोपकार कर सकेंगे अन्यथा नहीं अज्ञान से विरुद्ध कार्य बन गया हो तो दान से और बिना जाने पातक हो गया हो वह जप से छूट जाता है ज्ञान के ।

तप से जीवात्मा की, ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है ॥ २६ ॥

मूल- तैजसानांमणीनांच सर्वस्याश्म मयस्यच ।

भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धि रुक्ता मनीषिभः ॥ २७

अर्थ- तैजस (सुवर्णादि) के पात्र, मणि, पत्थरों के पात्र इन की शुद्धि ऋषियों ने भस्म, जल, मृतिका, से कही है ॥ २७ ॥

मूल- निर्लेपं काञ्चनं भाण्ड मद्भिरेव विशुध्यति ।

अब्ज मश्यम मयं चैव राजतं चानु पस्कृतम ॥ २८

अर्थ - अपवित्र घृतादि वस्तु के लेपन से रहित सुवर्ण के पात्र तथा जल में उत्पन्न शङ्ख, मुक्ता (मोती) आदि और पाषाण के पात्र रेखा रहित चांदी के पात्र ये जल मात्र से ही शुद्ध होते हैं ॥ २८

मूल- अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यंच निर्बभौ ।

तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णको गुण वत्तरः ॥ २९

अर्थ - अग्नि से सुवर्ण की उत्पत्ति है इस से अग्नि में सुवर्ण की उत्तम शुद्धि है इसी प्रकार जल से चांदी की उत्पत्ति होने से जल में उत्तम शुद्धि है ॥ २९ ॥

किये तो भोगने ही पड़ते हैं ॥

२६- जीवात्मा की शुद्धि विद्या और तप (अपना कर्म करना) से होती है जो मनुष्य जीवात्मा को पवित्र किया चाहे वह विद्या पढ़े और वह मनुष्य शरीर में ही हो सक्ता है नहीं तो जीवात्मा अपवित्र रहेगा यह मनु जी कहते हैं ॥

२७ - यह शुद्धि उच्छिष्टादि से युक्त तथा घृतादि से लिपित की है ॥

२९ - यह शुद्धि आमेधि (अपवित्र) वस्तु से लिपित हो तिसकी है ॥

मूल - ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्यच ।
शौचं यथार्हं कर्त्तव्यं क्षाराम्लोदक वारिभिः ॥ ३०

अर्थ - तांबा, लोहा, कांसा, पीतल, रांगा, सीसा, इनकी शुद्धि भस्म, खटाई, जल, इनसे यथायोग्य करनी चाहिये ॥ ३०

मूल - द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् ।
प्रोक्षणं संहतानाञ्च दारवाणाञ्चतक्षणम् ॥ ३१

अर्थ - द्रवण होने वाले सम्पूर्ण पदार्थ (पिलघने वाले घृतादि) कुश करके उछालने से शुद्ध होते हैं, शय्या छिड़कने से, काष्ट के पात्र छिलने से शुद्ध होते हैं ॥ ३१

मूल - मार्जनं यज्ञ पात्राणां पाणिना यज्ञ कर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालने नतु ॥ ३२

अर्थ - यज्ञ पात्र चमस, ग्रहादिकों को हाथ से मार्जन कर जल के धोने से यज्ञ में शुद्ध होते हैं ॥ ३२

मूल - चरूणां स्रुक स्रुवाणांच शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
स्फ्य शूर्प शकटा नांच मुसलोलूखलस्य च ॥ ३३

अर्थ - चरु, स्रुच, स्रुवा, सूप, गाड़ी, मूसल, ओखली, ये सब चिकना वस्तु से लिप्त हो तो गर्म जल से और नहीं हो तो जल मात्र से शुद्ध होते हैं ॥ ३३

मूल - अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् ।
प्रक्षालनेनत्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ ३४

अर्थ - धान्य तथा वस्त्र बहुत हो तो जल छिड़कने से और थोड़े हो तो धोने से शुद्ध होते हैं ॥ ३४

मूल - चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ।
शाकमूल फलानांच धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३५

अर्थ - स्पर्श करने योग्य पशु चर्म की तथा बांसादि की बनी हुई,

वस्तुओं की वस्त्र के समान और शाक, कन्दमूल, फलों की धान्य के समान शुद्धि जानों ॥ ३५

मूल - कौशेयाविकयो रूषैः कुतपानामरिष्टकैः ।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ ३६

अर्थ - रेशमी वस्त्र तथा रोमों के बने हुए (ऊनी) वस्त्र खारी मृतिका से, कुतफ रीठे से, पट्ट बेल के फलों से, क्षौम पीली सरसों से शुद्ध होते हैं ॥ ३६ *

मूल - क्षौमवच्छङ्खशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ।
शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥ ३७

अर्थ - शंख स्पर्श करने योग्य पशुओं के सींग अस्थी (हाड़) दन्त इनके पात्र पीली सरसों तथा गोमूत्र, जल से शुद्ध होते हैं ॥ ३७

मूल - प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलालं चैव शुद्ध्यति ।
मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ ३८

अर्थ - तृण, काष्ट, पलाल (भूसा) ये जल छिड़कने से शुद्ध होते हैं, घर बुहारने से तथा लिपने से शुद्ध होता है और फिर पकाने से मृतिका का पात्र शुद्ध होता है ॥ ३८ *

---

३६ - कुतफ, किसी विशेष देश की ऊन का वस्त्र है, पट्ट, शण का वस्त्र है। क्षौम, वृक्षों की छाल का वस्त्र जिसे वल्कल वस्त्र भी कहते हैं, देखिये ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों को खारी मृतिका से मल कर धोवे तब शुद्ध होते हैं और सूती वस्त्र केवल जल के धोने से पवित्र होते हैं अतएव ऊनी रेशमी वस्त्रों से सूती वस्त्र पवित्र है इसके विपरीत वर्तमान में ऊनी रेशमी वस्त्रों को इतना पवित्र मानते हैं कि अनेक बार अत्यन्त अपवित्र स्थान अर्थात् श्मशान में शव स्पर्शनादि (मुर्दनी में मुर्दे को छूने) से भी बिना धोए पवित्र

मूल- मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ।
संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ ३९

अर्थ- मद्य, मूत्र, विष्टा, श्लेष्म, पीव, रुधिर, इन करके स्पर्श हुआ मृत्तिका का पात्र फिर पकाने से भी शुद्ध नहीं होता ॥ ३९

मूल- सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ।
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः ॥ ४०

अर्थ - बुहारने से लीपने से छिड़कने से खोदने से गौ के निवास करने से पृथिवी शुद्ध होती है ॥ ४० ॥

मूल- यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः ।
तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ ४१

अर्थ- जो वस्तु अपवित्र (विष्टादि) से दूषित हो उसे जल मृत्तिका से तब तक धोवे जब तक उसकी दुर्गन्धि न जावे यह रीति सब द्रव्यों के शोधने में है ॥ ४१

मूल- नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥ ४२

अर्थ- शिल्पकारी का हाथ और दुकान पर बेचने को रक्खी हुई वस्तु ब्रह्मचारी की भिक्षा ये नित्य ही पवित्र हैं ॥ ४२

ही बना रहता है अपवित्र तो कभी होता ही नहीं किन्तु विना धोए पुश्त दर पुश्त तक पवित्र ही मानते हैं यह धर्म शास्त्र से कितना विरोध है ॥

३८ - काष्ट करके ईंधन का ग्रहण है पात्र का नहीं, काष्टकाष्ठ व छीलने से शुद्ध होता है ॥

४० - तृणादि से अपवित्र हो तो झाड़ने से रसोई बनी हो तथा भोजन करने से अपवित्र भूमि को लीपने से चरणों के स्पर्श से अप-

मूल- ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः ।
यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः ।४३

अर्थ- नाभि से ऊपर की इन्द्रिय (मुख नासिकादि) पवित्र हैं अर्था त् इन के स्पर्श करने में कोई दोष नहीं और नाभि से नीचे की इन्द्रिय अ पवित्र हैं तथा शरीर से भिन्न हुआ शारीरिक मल भी अपवित्र है ॥ ४३

मूल- माक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।
रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत ॥ ४४

अर्थ - माक्षिका, मुख से निकले हुए अल्प बिन्दु, छाया, गौ, घो ड़ा, सूर्य की किरण, रज, पृथ्वी, वायु, अग्नि, ये सब स्पर्श क रने में पवित्र हैं ॥ ४४

मूल- विण्मूत्रोत्सर्ग शुद्ध्यर्थं मृद्वार्या देयमर्थवत् ।
दैहिकानां मलानाञ्च शुद्धिषु द्वादशास्वपि ॥ ४५

अर्थ- विष्ठा मूत्र का त्याग करके तथा शारीरिक बारह मलों को स्प र्श करके शुद्धि के अर्थ आवश्यक (जितने में दुर्गन्धि निवृत्त हो) जल मृतिका ले ॥ ४५

मूल- वसा शुक्र मसृङ्मज्जा मूत्र विट घ्राण कर्णविट ।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ ४६

अर्थ- चर्बी, वीर्य, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, नासिका का मल, करण का मल आँसू, कीचर, श्लेस्म, पसीना, ये बारह मनुष्य के शारीरि क मल हैं ॥ ४६

मूल- एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धि मभीप्सता ॥ ४७

वित्र हो तो छिड़कने से और मल मूत्र से अपवित्र हो तो छील कर लीपने से पृथ्वी शुद्ध होती है ॥

अर्थ - शौच के अनन्तर एक बार मृतिका लिङ्ग में तीन बार गुदा में दश बार बाएं हाथ में फिर सात बार दोनों हाथ में लगा कर धोवे अथवा जब तक दुर्गन्धि निवृत्ति न हो तब तक अधिक धोवे ॥ ४७

मूल - कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् ।
वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा ॥ ४८

अर्थ - मल मूत्र का त्याग कर शुद्ध हो के आचमन करें और इन्द्रियों का स्पर्श करें वेद पढ़ने के समय तथा भोजन के समय भी आचमन और इन्द्रियों का स्पर्श करें ॥ ४८

मूल - त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
शारीरं शौचमिच्छन्हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत्सकृत ॥ ४९

अर्थ - शरीर शुद्धि की इच्छा कर के तीन बार आचमन कर दो बार मुख धोवें स्त्री शूद्र एक बार मुख धोवें तथा आचमन करें ॥ ४९

मूल - स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥ ५०

अर्थ - मुख से जल के बिन्दु आचमन कराने वाले के चरणों पर गिरने से चरण अपवित्र नहीं होते क्योंकि वह भूमि का स्पर्श किया जल चरणों पर गिरा भूमि जल के समान है ॥ ५०

मूल - उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन ।
अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ॥ ५१

अर्थ - किसी वस्तु को लिये हुए उच्छिष्ट मुख वाले से स्पर्श हो जाय तो आचमन मात्र से वस्तु सहित शुद्ध होता है ॥ ५१

मूल - वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत् ।
आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥ ५२

अर्थ - वमन, विरेचन के पीछे स्नान तथा घृत भोजन करने से शुद्ध होता है और भोजन कर के वमन हो तो आचमन से ही शुद्ध होता है,

मैथुन के पीछे स्नान से शुद्ध होना है ॥ ५२

मूल- बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि ॥ ५३

अर्थ - बाल, तरुण, वृद्ध, किसी अवस्था में वर्त्तमान स्त्री किसी गृह के कार्य को कभी स्वतंत्र होके न करे ॥ ५३

मूल- बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥ ५४

अर्थ - स्त्री बाल्यावस्था में पिता के तरुण अवस्था में पति के और पति के मर जाने पर पुत्रों के आधीन रहे परन्तु स्वतंत्र होके कभी न रहे ॥ ५४

मूल- पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः ।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले ॥ ५५

अर्थ - स्त्री इन (पिता, पति, पुत्र) से पृथक् रहने की इच्छा न करें क्योंकि इन से पृथक रह व्यभिचारिणी हो दोनों कुल को निन्दित करती है ॥ ५५

मूल- सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ५६

अर्थ - स्त्री सदा प्रसन्न चित्त रहे और गृह कार्य में तथा पात्रों के शोधने में चतुर रहे और खर्च करने में उदार न हो अर्थात् आमदनी से कम खर्च करे ॥ ५६ १

मूल- यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत ॥ ५७

अर्थ - जिसको पिता दे तथा पिता की आज्ञा से पुत्र दे उस पति का सेवन स्त्री जीवन भर करे उसे उल्लंघन कभी न करे ॥ ५७

५६- ये सम्पूर्ण क्रिया बिना विद्या के असम्भव है अतएव कन्याओं को-

मूल - अनृता वृतु कालेच मन्त्र संस्कार कृत्पतिः।
सुखस्यानित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥ ५८

अर्थ - मन्त्र संस्कार (विवाह) का करने वाला पति ऋतु काल में भिन्न काल में स्त्री को इस संसार में सदा सुख दाता है उसका सेवन करने से परलोक में भी सुख देने वाला है ॥ ५८

मूल - नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्यु पोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ ५९

अर्थ - स्त्रियों को यज्ञ, ब्रत, उपवास, भर्त्ता से पृथक् नहीं है अर्थात् स्त्री को पति की सेवा ही यज्ञ, ब्रत, उपबास है अतएव जो पति की सेवा करती है वही स्वर्ग में पूजित होती है ॥ ५९ ❀

मूल - पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचदप्रियम् ॥ ६०

अर्थ - स्वर्गलोक की चाहने वाली श्रेष्ट स्त्री पति को जीवते वा मरे किसी प्रकार अप्रसन्न न करें ॥ ६०

मूल - कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्प मूल फलैः शुभैः।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ ६१

अर्थ - पतिब्रता पति के मरण पीछे परपति का नाम मात्र न ले किन्तु सुन्दर कंदमूल फल फूल भोजन करके काम को शरीर में ही शान्ति करें ॥ ६१

विद्या अवश्य पढ़ानी चाहिये ॥

५९ - महर्षी मुन जी कहते हैं कि स्त्रियों को तो पति की सेवा ही से स्वर्ग मिलेगा अन्यथा नहीं फिर वर्त्तमान की स्त्रियां क्यों पति को क्लेश देती हैं अर्थात् उनकी आज्ञा उल्लंघन कर अनेक कठिन वृतादि तथा भूत पूजनादि में अपना (जन्म) वृथा नष्ट करती हैं यह स्त्रियों को मूर्ख रखने ही का फल है यदि पढ़ी होती तो कदापि ऐसा न करतीं किन्तु धर्म शास्त्र को देख पति की सेवा ही करतीं -

मूल- आसीता मरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥ ६२

अर्थ- जो स्त्री एकपति सेवनी (पतिव्रताओं) के उत्तम धर्म की इच्छा करे वह शान्ति पूर्वक नियम से ब्रह्मचारिणी रहे ॥ ६२

मूल- अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम् ।
दिवंगतानि विप्राणाम कृत्वा कुलसंततिम् ॥ ६३
मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ६४

अर्थ- अनेक बाल ब्रह्मचारी ब्राह्मण स्त्री रहित सन्तति बिना भी स्वर्ग को प्राप्त होते हैं तैसे ही पति के मरण से पति व्रता ब्रह्मचर्य में रहकर बिना सन्तति के भी स्वर्ग पाती है ॥ ६३ । ६४

मूल- अपत्य लोभाद्या तु स्त्री भर्त्तारमतिवर्त्तते ।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥ ६५

अर्थ- जो स्त्री पुत्र के लोभ से व्यभिचार (पर पुरुष से भोग) करती है सो इस लोक में निन्दा को प्राप्त होती है और मर कर दुर्गति पाती है ॥ ६५

मूल- नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते ॥ ६६

अर्थ- पति भिन्न पुरुष से उत्पन्न सन्तति अपनी नहीं होती और पत्नी भिन्न स्त्री में उत्पन्न सन्तति अपनी नहीं होती अतएव साध्वी (एक पति सेवा) स्त्री को दूसरा पति नहीं कहा है ॥ ६६

मूल- पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ॥ ६७

अर्थ- जो स्त्री अपने अपकृष्ट (अल्प गुणयुक्त) पति को छोड़ के उत्कृष्ट (अधिक गुणवान्) पुरुष का सेवन करती है सो संसार-

में निन्दा को प्राप्त होती है और मनुष्य उसे दो पति वाली कहते हैं। ६७

मूल - व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगाल योनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥ ६८

अर्थ - भर्त्ता के व्यभिचार से अर्थात् अन्य पुरुष से भोग करने वाली स्त्री इस लोक में निन्दित होती है और मरकर शृगाल योनि को पाती है तथा पापरोगों करके पीड़ित रहती है॥ ६८

मूल - पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देह संयता।
सा भर्तृ लोकमाप्नोति सद्भिः स्वाध्वीति चोच्यते॥ ६९

अर्थ - जो स्त्री मन, वाणी, शरीर, इन तीनों से पति के प्रतिकूल नहीं होती अर्थात तन, मन, वाणी से पति की सेवा ही में तत्पर रहती है सो स्वर्ग लोक को प्राप्त होती है और श्रेष्ठ जन उसे पति ब्रता कहते हैं॥ ६९

मूल - अनेन नारी वृत्तेन मनोवाग्देह संयता।
इहाग्र्यां कीर्त्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च॥ ७०

अर्थ - इस प्रकार जो स्त्री पतिब्रत कर के मन, वाणी, शरीर का संयम (विषयों से निवृत्त) करती है सो इस लोक में उत्तम कीर्त्ति तथा मर के पति लोक को प्राप्त होती है॥ ७०

मूल - एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम्।
दाहयेदग्नि होत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित॥ ७१

अर्थ - सवर्णा अपने वर्ण की पतिब्रता स्त्री मर जाय तो धर्म के जानने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यज्ञपात्रों करके अग्नि होत्र की अग्नि से दाह कर्म करें॥ ७१ १ इति पञ्चमोऽध्यायः

७१ - इस से स्पष्ट सिद्ध है कि अन्त्येष्टी (मरण समय का) संस्कार भी वेद मन्त्रों से पूर्व होता था॥

इति पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

मूल - एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
बने बसेत्तु नियतो यथावद्वि जितेन्द्रियः ॥ १

अर्थ - पूर्वोक्त प्रकार गृहस्थ में बस के शास्त्र के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जितेन्द्रिय हो बन में बास करे ॥ १

मूल - गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वली पलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २

अर्थ - जब गृहस्थ पुरुष अपनी वृद्धावस्था देखे और पौत्र (नाती) उत्पन्न हो जाय तब बन बास करे अर्थात् बानप्रस्थ आश्रम धारण करे ॥ २

मूल - संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य बनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३

अर्थ - गृहास्थियों के भोजन योग्य आहार (चांवलादि अन्न) को तथा पशु, शय्यादि गृहस्थ को साहित्य को त्याग स्त्री को (बन में जाने की इच्छा हो तो) साथ ले न हो तो पुत्रों को अर्पण कर बन को जाय ॥ ३

मूल - अग्निहोत्रं समाधाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४

अर्थ - अग्निहोत्र तथा यज्ञ की सब सामिग्री को संग ले घर से निकल जितेन्द्रिय हो के बन में बसे ॥ ४

मूल - मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतान्येव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५

अर्थ - मुनियों के अन्न (जो तृणों से उत्पन्न होते हैं उन्ह) से तथा अनेक प्रकार पवित्र शाक, मूल, फलों से विधिपूर्वक पञ्च महा-

यज्ञ करता रहे ॥ ५ ॥

मूल- यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः ।
अम्मूल फल भिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ ६

अर्थ - वानप्रस्थ जिस अन्न का भोजन करे उसी से बलिवैश्व देव करके यथा शक्ति भिक्षा दे और अपने आश्रम पर आवे उस का कन्द मूल फल से सत्कार करे ॥ ६

मूल- स्वाध्याये नित्य युक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्य मनादाता सर्व भूतानु कम्पकः ॥ ७

अर्थ - वेद के पढ़ने में सदा तत्पर रहे, शीत, उष्णतादि, द्वन्द्वों को सहन करे सब का उपकार करे मन को वश करे नित्य दान करे दान लेने का त्याग करे सब प्राणियों पर कृपा करे इस प्रकार वानप्रस्थ रहे ॥ ७ ॥

मूल- वैतानिकं च जुहुयादग्नि होत्रं यथा विधि ।
दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥ ८

अर्थ - दर्श पौर्णमास यज्ञों को समय पर न त्यागता हुआ वैतानिक अग्नि होत्र को शास्त्र रीति से करे ॥ ८

मूल- वासंत शारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधि वन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ९

५- त्यागियों को भी बिना बलिवैश्व देव के भोजन करना निषेध है फिर गृहस्थी इस को त्याग कब सुखी हो सक्ते हैं? कदापि नहीं ॥

७- सुख, दुख, शीत, उष्ण, मधुर, कटु, कोमल, कठोर, इत्यादि द्वन्द्व हैं इनका सहन करना दान देना किसी को दुख न देना, पर उपकार करना, एवं देशोपकारार्थ ही वानप्रस्थ आश्रम है ॥

अर्थ - बसन्त तथा शरद काल में हुए मुनि अन्नों को आप लाय क
र उस से पुरोडाश चरु देवताओं को पृथक् २ दे विधिवत् यज्ञ सिद्ध
करे ॥ ९

मूल- देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ।
शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयंकृतम ॥ १०

अर्थ- तिन (वन में उत्पन्न अति पवित्र मुनि अन्नों) से यज्ञ करे
देवताओं से शेष रहे को आप भोजन करे और अपने बनाये लवण
का भोजन करे ॥ १०

मूल - स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ।
मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥ ११

अर्थ- स्थल, जल, पवित्र वृक्ष, इन से उत्पन्न हुए जो शाक,
मूल, पुष्प, फल, उन्हें भोजन करे और फल से निकले हुए
तेल का भोजन करे ॥ ११

मूल- ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः ।
विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥ १२

अर्थ - शरीर की शुद्धि और तप, ज्ञान की वृद्धि के लिये उस वि
द्या का सेवन करे जिसका सन्यासी और गृहस्थ ब्राह्मणों ने कि-
या है ॥ १२

मूल - वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत ॥ १३

अर्थ- वानप्रस्थ आश्रम में आयुष के तीसरे भाग को बन में बि
ताय कर सर्व विषयों का त्याग करता हुआ आयुष के चतुर्थ भाग
में सन्यास ग्रहण करे ॥ १३ *

१३- धर्म शास्त्र के अनुसार चौथी अवस्था में सन्यास धारण-

मूल- आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ।
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ १४

अर्थ- जितेन्द्रिय पुरुष क्रम से आश्रम में जा अर्थात ब्रह्मचर्य से गृहस्थ, गृहस्थ से बानप्रस्थ आश्रम को प्राप्त होके पूर्व आश्रमों में किये हुए हवन, बलिवैश्व देव, भिक्षा, दानादि, से थका हुआ फिर सन्यास आश्रम धारण करके अत्यन्त समृद्धि को प्राप्त होता है अर्थात् शरीर को त्याग ब्रह्मरूप होता है ॥ १४

मूल- ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षंतु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ १५

अर्थ- तीनों ऋणों को निवृत्त कर के मोक्ष में मन लगावे अर्थात सन्यास आश्रम धारण करे जो बिना ऋणों को निवृत्त किये मोक्ष का सेवन करता है सो नरक में जाता है ॥ १५

मूल- अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत ॥ १६

अर्थ- विधि पूर्वक (व्याकरणादि षडङ्ग सहित) वेद पढ धर्म से पुत्र उत्पन्न कर यथाशक्ति यज्ञ करके मोक्ष में मन लगावें अर्थात सन्यास आश्रम धारण करें ॥ १६

मूल- अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ १७

अर्थ- जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वेद के बिना पढे पुत्रों के-

---

करना चाहिये इसके विरुद्ध (वर्तमान समय) बाल्यावस्था में ही मनुष्य जन्म को नष्ट किये सन्यासी ही दृष्टि पड़ते हैं ब्रह्मचर्य्य जो सब आश्रमों का मूल तथा बानप्रस्थ इन आश्रमों का तो अत्यन्ताभाव है किन्तु बानप्रस्थ आश्रमी तो दीखते भी नहीं ॥

बिना उत्पन्न किये तथा यज्ञ किये बिना मोक्ष की इच्छा करते हैं अर्थात स-
न्यास धारण करते हैं वे नरक को जाते हैं ॥ १७ ॥

मूल-प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ १८

अर्थ - प्रजापति अर्थात परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि (सर्वस्व द-
क्षिणा जिसकी ऐसी यज्ञ) करके उसमें यज्ञोपवीतादि चिन्हों को
त्याग के आहवनीयादि पञ्च अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान,
उदान, समान, इन पञ्च प्राणों में आरोपण कर ब्राह्मण (ब्रह्मवित्)
घर से निकल सन्यासी होय ॥ १८

मूल-यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ १९

अर्थ - जो सर्वभूत (प्राणिमात्र) को अभय दान दे घर से निकलकर
सन्यासी होता है उस ब्रह्मवादी अर्थात परमेश्वर प्रकाशित वेदोक्त ध
र्मादि विद्याओं के उपदेश करने वाले सन्यासी को तेजोमय लोक (मो
क्ष का आनन्द रूप) प्राप्त होता है ॥ १९

१७- देव, ऋषि, पितृ, ये तीन ऋण हैं इनकी निवृत्त वेद पढ़,
होम कर, पुत्र उत्पन्न करने से होती है अन्यथा नहीं और इन से नि
वृत्त हुए बिना सन्यास आश्रम धारण करने वाला नरक में जाता है
अतएव प्रथम ब्रह्मचर्य में विद्या पढ़, होम कर तथा गृहस्थ में पु
त्रोत्पन्न, हवनादि, माता पितादि की सेवा कर तदनन्तर वानप्रस्थ
तथा सन्यास आश्रम का विधान वेदादि धर्म शास्त्र में किया है इस
के विरुद्ध विद्या शून्य बाल्यावस्था में ही आलसी हो उद्यम त्या
ग पञ्चम आश्रमी (बाबाजी) बन गृहस्थियों का अन्न नष्ट कर अ
पना बहु मूल्य मनुष्य जन्म गारत कर आरत हो नरक का सामान क-

मूल- यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम् ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ २०

अर्थ- जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों से किसी प्राणी को किञ्चित भी भय नहीं होता उन्हें परलोक में किञ्चित भी भय किसी से नहीं होता है ॥ २०

मूल- आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ २१

अर्थ- घर से निकल कर पवित्र दण्ड कमण्डल आदि से युक्त मोनी, प्राप्त हुए पदार्थों को इच्छा रहित होकर सन्यासी ग्रहण करें ॥ २१

मूल- एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥ २२

अर्थ- सिद्धि (मोक्ष) के अर्थ सहायता रहित इकेला ही सर्वदा बिचरे किन्तु मोक्ष इकल्ले ही की होती है ऐसा देखता हुआ किसी के त्यागने से दुखित नहीं होता न जिनका त्याग करता है वे दुखित होते हैं ॥ २२

मूल- अनाग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत ।
उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ २३

अर्थ- अग्नि और स्थान से रहित, उपेक्षक रागद्वेष से रहित स्थिर बुद्धि, मनन शील, ब्रह्म के स्मर्ण में तत्पर अन्न के अर्थ ग्राम में जाय ॥ २३

मूल- कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ २४

अर्थ- कपाल (खप्पर) और जीर्ण बस्त्र को धारण करना वृक्ष के नीचे शयन करना सब प्राणियों में समबुद्धि रखना ये मुक्त पुरुष के लक्षण हैं ॥ २४

रते हैं यह शास्त्र का तात्पर्य्य न जानने का फल है ॥

मूल- नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ २५

अर्थ- जीवन तथा मरण दोनों की इच्छा न करे किन्तु काल की प्रतीक्षा (वाट) करता रहे जैसे स्वामी की आज्ञा को सेवक देखता है ॥ २५

मूल- दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ २६

अर्थ - नीचे पृथिवी पर दृष्टि रख कर चले वस्त्र से छान के जल पीवे सदा सत्य ही बोले सर्वदा मन से विचार के सत्य व्यवहार का ग्रहण असत्य का त्याग करे ॥ २६

मूल- क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णांच न वाच मनृतां वदेत् ॥ २७

अर्थ- उपदेश करते हुए सन्यासी पर कोई क्रोध करे तो उस पर आप क्रोध न करे निन्दा करने वाले से निन्दित बचन न बोले किन्तु शुभ उपदेश ही करे सप्त द्वार (नेत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्री, मन, बुद्धि) से विखरी हुई वाणी को मिथ्या कभी न बोले ॥ २७

मूल- अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ २८

अर्थ- और ब्रह्मानन्द में मग्न, योगासन में तत्पर, अपेक्षा रहित, विषय भोग की इच्छा से निवृत्त मांस त्यागी होकर मोक्ष सुख को चाहता हुआ एकाकी इस संसार में (सद्धर्म के उपदेशार्थ) विचरे ॥ २८

मूल- न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ २९

अर्थ- उत्पात (भूमि कम्पनादि) तथा नेत्र फरकनादि, नक्षत्र (अश्विनी आदिका) अङ्ग विद्या (हस्त रेखादि) इन का फल कथन कर तथा उपदेश कर, शास्त्रार्थ कर इन निमित्तों से कभी भि-

क्षा न करे ॥ २९

मूल- क्लृप्त केश नख श्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्व भूतान्य पीडयन् ॥ ३०

अर्थ- श्मश्रु (डाढ़ी मूछ) नख, केशों को कटा के भिक्षापात्र, दण्ड, कमण्डल, धारण कर प्राणी मात्र को क्लेश न देता हुआ सर्वदा विचरे ॥ ३०

मूल- अलाबुं दारु पात्रंच मृन्मयं वैदलंतथा ।
एतानियति पात्राणि मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ३१

अर्थ- तोमा, काष्ठ का पात्र, मृतिका का पात्र, बांस का पात्र ये चार सन्यासी के पात्र स्वयम्भू महर्षि मनु जी ने कहे हैं ॥ ३१

मूल- एक कालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ।
भैक्षे प्रसक्तो हि यति र्विषये ष्वपि सज्जति ॥ ३२

अर्थ- एक बार भिक्षा करे सो भी अधिक भिक्षा में प्रवृत्त न हो क्योंकि अधिक भोजन करने से सन्यासी की भी विषयों के भोगने में प्रवृत्ति होती है ॥ ३२

मूल- अलाभे न विषादीस्याल्लाभे चैव न हर्षयेत ।
प्राणयात्रिक मात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥ ३३

अर्थ- भिक्षा के मिलने न मिलने से हर्ष बिषाद न करे किन्तु प्राण धारण कर सके उतनी भिक्षा करे और किसी में आशक्त न हो अर्थात् अच्छे बुरे दण्ड कमण्डल आदि में भी ग्रहण त्याग की बुद्धि न करे ॥ ३३ *

---

३३ - सन्यासी की यह भी परीक्षा है कि वह भिक्षा के न मिलने से क्रोधित हो गाली प्रदान कदापि न करेगा जैसा कि वर्त्तमान के महात्मा करते हैं ॥

मूल - इन्द्रियाणां निरोधेन राग द्वेष क्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ३४

अर्थ - इन्द्रियों का निरोध तथा राग द्वेष का नाश कर सब जीवों में हिंसा रहित होने से मोक्ष के योग्य होता है ॥ ३४

मूल - अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्म दोष समुद्भवाः ।
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ ३५
विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथाप्रियैः ।
जरया चाभि भवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ३६
देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ।
योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ३७
अधर्म प्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थ प्रभवं चैव सुख संयोग मक्षयम् ॥ ३८

अर्थ - मनुष्यों के कर्म दोषों से उत्पन्न हुई गति को तथा नरक में गिरना, यमयातना, अर्थात् मरकर अनेक दुःख भोगना, प्रिय का वियोग, अप्रिय का मिलना, वृद्धावस्था में निरादरादि दुःख, व्याधियों से पीड़ित, शरीर से अन्तरात्म का निकलना, फिर गर्भ में बास कराना, निन्दित (हज़ारों करोड़ों) योनियों में भ्रमण करना, तथा जीवों के अधर्म से उत्पन्न हुए दुःख के योग को और धर्म से उत्पन्न अक्षय सुख के योग को, इन सब को सन्यासी देखे ॥ ३५ । ३६ । ३७ । ३८

मूल - सूक्ष्मतां चान्वबेक्षेत योगेन परमात्मनः ।
देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ३९

अर्थ - योगाभ्यास से परमात्म सूक्ष्मता को देखे तथा शुभाशुभ कर्मों के फल भोगने को उत्तम अधम योनियों में जीवों की उत्पत्ति का बिचार करे ॥ ३९

मूल- दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ४०

अर्थ - जिस किसी आश्रम में बसता हुआ विरुद्धाचरण से दूषित हो अर्थात आश्रम के चिन्हों से युक्त न हो तब भी सब प्राणियों में ब्रह्मज्ञान से समदृष्टि करता हुआ सन्यास आश्रम के धर्म पर आरूढ़ रहे क्योंकि दण्ड, कमण्डल आदि चिन्हों का धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है ॥ ४० ❀

मूल- फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ४१

अर्थ- जैसे कतक वृक्ष के फल (निर्मली) को जल में पीस के डालने से जल निर्मल होता है परन्तु (निर्मली के) नाम लेने मात्र से जल निर्मल नहीं होता तद्वत् सन्यासी सन्यास धर्म को यथावत आचरण करे तो मोक्ष पाता है केवल चिन्ह धारण करना सन्यास नहीं ॥ ४१

मूल- संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ।
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ४२

अर्थ- सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा के लिये रात्रि दिन पृथिवी को सदा देखता चले कि जिस से कोई जीव न मरे और कभी शरीर को भी पीड़ा न हो ॥ ४२

४० - महर्षि मनु जी कहते हैं कि धर्म का कारण चिन्ह नहीं है परन्तु इसके विरुद्ध सर्व गुण रहित मूढ़ भी रंगीन वस्त्र धारण कर ब्राह्मण तक का पूज्य बनता है यह सब अविद्या ही की दया है ॥

मूल - प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ ४३

अर्थ - ब्राह्मण को उचित है कि ओंकार पूर्वक सप्त व्याहृति सहित विधिवत् प्राणायाम (न्यून से न्यून) तीन नित्य करे क्योंकि यही ब्राह्मण का परम तप है ॥ ४३

मूल - दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ४४

अर्थ - जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष भस्मी भूत हो जाते हैं ॥ ४४

मूल - प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ४५

अर्थ - प्राणायाम करके राग द्वेषादि दोषों की निवृत्ति समाधि (ब्रह्माकार वृत्ति) से पापों का नाश प्रत्याहार करके विषयों से इन्द्रियों का निरोध ध्यान (सजातीय प्रवाह) से अनीश्वर भाव को दूर करता है ॥ ४५

मूल - उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ४६

अर्थ - इस संसार की अनेक ऊंच नीच योनियों में आवागमन (जिसे मलिन अन्तःकरण वाले नहीं जानते उस अज्ञान तथा निन्दित कर्म) को कारण सहित जान के परमेश्वर के ध्यान में तत्पर रहे ॥ ४६

मूल - सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ४७

अर्थ - तत्व दर्शी पुरुष कर्म रूपी बन्धनों से नहीं बंधते किन्तु तत्व दर्शन रहित अर्थात् यथार्थ परमात्मा को नहीं जानने वाले इस संसार-

में जन्म लेते हैं ॥ ४७

मूल- अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ ४८

अर्थ- सब भूतों से निर्वैर होकर रहना, इन्द्रियों के विषय का त्याग करना, वेदोक्त कर्म तथा अत्युग्र तप करना, इनसे इस संसार में मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं ॥ ४८

मूल- अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ४९
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥ ५०

अर्थ- अस्थि (हाड्डियों) के खंभ जिसमें नाड़ियों से बधा हुआ मांस तथा रुधिर से लिप्त (लिपा हुआ) चर्म से ढका हुआ विष्टा मूत्र से भरा, अतएव दुर्गन्धि युक्त जरा (वृद्धावस्था) शोक युक्त, रोग का घर क्षुधा, तृषादि से भीत (डरा हुआ) रजोगुण युक्त, अनित्य, जीवों का स्थान, ऐसे शरीर का त्याग करे अर्थात् पुनि शरीर न मिले सो उपाय करे ॥ ४९ । ५०

मूल- नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा ।
तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥ ५१

अर्थ- जैसे नदी के किनारे को वृक्ष और वृक्ष को पक्षी त्यागते हैं तिसी प्रकार इस शरीर को त्यागता हुआ सन्यासी संसार कष्ट रूपी ग्राह से छूटता है ॥ ५१

मूल- प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ।
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ ५२

अर्थ- अपने सुकृतों का फल प्रिय में अर्थात् निन्दा रहित परम सेवी उपदेश धारण करने वाले में और दुष्कृतों का फल अप्रिय में-

अर्थात् निन्दक , विरुद्धाचरण करने वाला , बिना कारण सब का द्वेषी , पापात्मा में अर्पण कर ध्यान योग से ब्रह्म में लीन होता है। ५२

मूल- यदा भावेन भवति सर्व भावेषु निःस्पृहः ।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ ५३

अर्थ- जब सन्यासी सब भावों में अर्थात् समस्त पदार्थों में निष्पृह (इच्छा रहित) होता है तब इस लोक में भी सुख पाता है तथा पर लोक में मोक्ष रूपी अक्षय सुख को प्राप्त होता है ॥ ५३

मूल- अनेन विधिना सर्वां स्त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः ।
सर्व द्वन्द्व विनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवाव तिष्ठते ॥ ५४

अर्थ- इस प्रकार धीरे धीरे सब संग दोष को त्याग के हर्ष शोकादि सब द्वन्दों से विमुक्त होकर सन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है। ५४

मूल- ध्यानिकं सर्व मेवैत द्य देतद भि शब्दितम् ।
न ह्यन ध्यात्म वित्कश्चित्क्रिया फलमुपाश्नुते ॥ ५५

अर्थ- जो पूर्व कहा पुत्रादि से ममत्व का त्याग तथा मानापमान का सहन , ब्रह्म में स्थित ये सब ध्यानिक अर्थात् ब्रह्माकार वृत्ति से सिद्ध होते हैं इसके विपरीत (आत्म ज्ञान शून्य) की समस्त क्रिया निष्फल तथा मोक्ष का अभाव होता है ॥ ५५

मूल- अधि यज्ञं ब्रह्म जपे दाधि दैविक मेव च ।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥ ५६

अर्थ- यज्ञादि प्रवृत्तिक तथा देवादि प्रवृत्तिक और अध्यात्मक , वेदान्त , इन सब वेद मंत्रों को जपे ॥ ५६

मूल- इदं शरण मज्ञाना मिद मेव विजानताम् ।
इदमन्विच्छतां स्वर्ग मिद मानन्त्य मिच्छताम् ॥ ५७

अर्थ- यह वेद रूपी शास्त्र अज्ञानियों को पाठ मात्र से सुखदायक है और वेदार्थ जानने वालों का तथा स्वर्ग , मोक्ष की इच्छा वालों-

कार(स्वर्ग, मोक्ष के उपाय का उपदेश रूप) यही शास्त्र रक्षक है ॥ ५७

मूल- अनेन क्रम योगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ५८

अर्थ- इस क्रम योग से जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सन्यास ग्रहण करते हैं वे इस लोक में सब पापों को त्याग के परब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥ ५८

मूल- ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थ प्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ५९

अर्थ- पूर्व में जो चार आश्रम पृथक् पृथक् कहे, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ, सन्यास, ये सब गृहस्थ से ही उत्पन्न होते हैं । ५९

मूल- सर्वेऽपि क्रम शस्त्वेते यथा शास्त्रं निषेविताः ।
यथोक्त कारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ६०

अर्थ- जो इन सब आश्रमों को क्रम से अर्थात् ब्रह्मचर्य से गृहस्थ फिर बानप्रस्थ तदनन्तर सन्यास को ग्रहण कर यथा शास्त्र वर्त्तता है सो परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६०

मूल- सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृति विधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः सत्रीनेतान्बिभर्तिहि ॥ ६१

अर्थ - ये जो ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम वेद और धर्म शास्त्र से विधान किये हैं इनमें गृहस्थ को श्रेष्ट (उत्तम) कहा है क्योंकि इन तीनों का गृहस्थ ही पालन करता है ॥ ६१

मूल- यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ ६२

अर्थ- जैसे सब नदी, नद, समुद्र में जाय के स्थित को प्राप्त होते हैं तैसे ही सब आश्रम गृहस्थ में ही स्थित होते हैं अर्थात् गृहस्थ से ही पालित होते हैं ॥ ६२ ॐ

मूल- चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ।
दश लक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ९३

अर्थ- पूर्वोक्त चार आश्रमों में से किसी में वर्त्तमान (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) हो आगे कहे हुए दश (१०) धर्म के लक्षणों का नित्य यत्न से सेवन करें ॥ ९३

मूल- धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९४

अर्थ- १ धैर्य (चलायमान न होना) २ क्षमा (सहन शक्ति) ३ दम (मन का रोकना) ४ अस्तेय (अन्याय से धन ग्रहण न करना) ५ शौच (भीतर बाहर पवित्र रहना) ६ इन्द्रियों का निरोध ७ धी (वेद शास्त्र का तत्व ज्ञान) ८ विद्या (आत्मक ज्ञान) ९ सत्य (यथार्थ कहना १० अक्रोध क्रोध का कारण होने पर भी क्रोध न करना ये दश धर्म के लक्षण हैं ॥ ९४ ॥

९२- देखिये धर्म शास्त्र में गृहस्थ आश्रम की कितनी प्रशंसा लिखी है इस से अत्यन्त विरुद्ध वर्त्तमान के अशास्त्रीय बाबा जी गृहस्थों को (जिन से अपना पालन करते हैं) पामर और क्षुद्र बताते हैं क्या यह उन का कहना यथार्थ है ? कदापि नहीं ॥

९४ - (सहन शील) निन्दा, स्तुति, मान, अपमान, हानि, लाभ सुख, दुखादि को सहन करना (मन को रोकना) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त अधर्म से निवृत्त करना अर्थात् अधर्म की कभी इच्छा भी न करना (अस्तेय) बिना आज्ञा किसी की वस्तु उठाना वा छल से कपट से विश्वास घात से वा किसी व्यवहार में छल से तथा वेद विरुद्ध उपदेश से द्रव्यादि का ग्रहण करना चोरी है इस का त्याग ही अस्तेय (चोरी का त्याग) है, असत्य पक्ष का तथा राग द्वेष का त्या-

मूल - दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ९५

अर्थ - जो ब्राह्मण (विप्राः बहु वचनान्त होने से क्षत्रियादि का भी ग्रहण है) इस दश लक्षण वाले धर्म को पढ़ते हैं तथा पढ़के इसके अनुसार वर्त्तते हैं वे परम गति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं ॥ ९५

मूल - दश लक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ।
वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ९६

अर्थ - पूर्वोक्त दश लक्षण वाले धर्म का यथावत् अनुष्ठान करता हुआ देव, ऋषि, पितरों, के ऋणों को निवृत्त कर, वेदान्त शास्त्र को विधि पूर्वक श्रवण (सुनि) कर सन्यास धारण करे ॥ ९६ ❀

मूल - संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् ।
नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥ ९७

अर्थ - सम्पूर्ण कर्मों का त्याग कर अज्ञात निषिद्ध कर्म जनित पातकों की प्राणायामादि से निवृत्त कर तथा जितेन्द्रिय हो वेदों का अभ्या-

---

ग भीतर की पवित्रता है जल मृत्तिका से बाहर शरीर पवित्र होना है (इन्द्रियों का निरोध) अधर्म से रोक धर्म ही में प्रवृत्त करना (धी अर्थात् बुद्धि) आलस्य प्रमाद को छोड़ सत्पुरुषों का संग करना तथा वेद शास्त्र के ज्ञान से बुद्धि को बढ़ाना (विद्या) जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही जानना तथा इस लोक परलोक के सुख को देने वाली विद्या इसके विपरीत को अविद्या जानना (सत्य) मन वाणी से सत्य का ही आचरण करना (अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़ शान्ति आदि गुणों को ग्रहण करना ॥

९६ - तीनों ऋणों से निवृत्त हो पूर्व कहे दश लक्षण युक्त धर्म के अनुसार सन्यास ग्रहण करने की धर्म शास्त्र में आज्ञा है न कि अपने-

म कर पुत्र के घर में अर्थात् पुत्र से भोजनादि वृत्ति सम्पादन कर सुख पूर्बक निवास करे ॥ ६७ ॥

मूल - एवंसंन्यस्यकर्माणिस्वकार्यपरमोऽस्पृहः ।
संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोतिपरमां गतिम् ॥ ६८

अर्थ - इस (पूर्वोक्त) प्रकार सब कर्मों को त्याग के ब्रह्म ज्ञान में तत्पर तथा स्वर्गादि लोक की इच्छा रहित सन्यास से पापों का नाश कर परमगति (मोक्ष) को पाता है ॥ ६८ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

क्रोध से गृहस्थियों के चित्त को भस्मीभूत करने से ही महात्मा बन जाना यह भी अविद्या ही की लीला है ॥

६७ - ६८ - सन्यासी को पुत्र से अपना निर्बाह करना भी धर्मशास्त्र में लिखा है पुत्र के असमर्थ तथा अभाव में भिक्षा से निर्बाह करे परन्तु देशोपकार अवश्य करे क्योंकि सन्यास आश्रम केवल परमार्थ (मोक्ष और परोपकार) के ही निमित्त है ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

मूल - ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथा विधि ।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परि रक्षण म् ॥ १

अर्थ - उपनयन रूप वैदिक संस्कार (जनेऊ) को प्राप्त हो क्षत्रिय यथान्याय सम्पूर्ण अपने देशस्थ प्रजाओं को तथा वेद की रक्षा करनी चाहिये ॥ १

मूल - तस्यार्थे सर्व भूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
ब्रह्मतेजो मयं दण्डमसृजत्पूर्व मीश्वरः ॥ २

अर्थ - तिस राजा के प्रयोजन के अर्थ समस्त प्राणियों का रक्षक धर्म स्वरूप पुत्र ब्रह्म तेज मय दण्ड ईश्वर ने पहले ही रचा है ॥ २

मूल - तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥ ३

अर्थ - तिस दण्ड के भय से सम्पूर्ण चराचर जीव भोगों के लिये समर्थ होते हैं और अपने २ धर्मों से चलाय मान नहीं होते ॥ ३ ※

मूल - स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ।
चतुर्णा माश्रमा णां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥ ४

अर्थ - दण्ड जो है सो ही पुरुष, राजा, शिक्षक, सब कार्यों का सम्पादन करने वाला है और वही (दण्ड) चारों आश्रमों के धर्माचरण का प्रतिभू (जामन) है अर्थात् दण्ड के भय से ही सब प्रजा अपने २ आश्रम धर्म में स्थित है ॥ ४

---

३ - बिना दण्ड भय के निडर हो दुर्बलों से सबल पुरुष धन, स्त्री आदि ले लेंगे और उन से भी अति बलवान ले लेंगे एवं कोई भी नहीं भोग सकेंगे और जड़ (वृक्षादिकों) को बिना दण्ड-

मूल - दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ ५

अर्थ - सम्पूर्ण प्रजा का शासन (आज्ञा) करने वाला तथा रक्षा करने वाला और सब प्रजा के सोने में आप जागने वाला दण्ड है अर्थात् दण्ड के भय से चोरादि निवृत्त होते हैं और दण्ड को धर्म भी विद्वज्जन कहते हैं ॥ ५

मूल - स्वेस्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ।
वर्णानामाश्रमाणांच राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥ ६

अर्थ - परमेश्वर ने अपने अपने वर्ण तथा आश्रमों के धर्मों में वर्त्तमान ब्राह्मणादि वर्णों की रक्षा के अर्थ राजा उत्पन्न किया है ॥ ६

मूल - ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ।
त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषांच शासने ॥ ७

अर्थ - प्रातःकाल उठके तीन (ऋग्, यजु, साम) वेद के जानने वाले ब्राह्मणों का सेवन करे और उनकी आज्ञा के अनुसार समस्त राज्य कार्य करे ॥ ७

मूल - वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन् ।
वृद्धसेवीहि सततं रक्षोभिरपिपूज्यते ॥ ८

अर्थ - वेदों के जानने वाले पवित्र (यज्ञ, तप, विद्या आदि में) वृद्ध ब्राह्मणों का राजा नित्य प्रति सेवन करे क्योंकि वृद्ध सेवी राजा का राक्षस (अति दुराचारी घातक) भी निरन्तर पूजन करते हैं अ-

---

भय के अच्छेद्य (नो काटने योग्य नहीं) को भी काट लेंगे तथा नित्य नैमित्तिक अपने अपने कर्मों को दण्ड (नरकादि यमयातनादि) की भय के बिना कोई भी न करेंगे अतएव सम्पूर्ण धर्म का दण्ड से ही निर्वाह है ॥

र्थात् भय भीत हुए आज्ञा पालन करते हैं ॥ ८

मूल - इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवा निशम् ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ ९

अर्थ - राजा नेत्र आदि इन्द्रियों को विषयों से निवृत्त करने के लिये दिन रात्रि यत्न करे क्योंकि इन्द्रियों के जीतने से समस्त प्रजा को वश में कर सक्ता है अर्थात् प्रजा शासन के योग्य होता है ॥ ९

मूल - दश काम समुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानिच ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत ॥ १०

अर्थ - दश काम से उत्पन्न और आठ क्रोध से उत्पन्न ये १८ व्यसनों को यत्न से त्याग करे क्योंकि ये व्यसन परिणाम में दुःख दायक हैं ॥ १०

मूल - कामजेषु प्रसक्तो हि व्यवसनेषु महीपतिः ।
वियुज्यतेऽर्थ धर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैवतु ॥ ११

अर्थ - कामोत्पन्न व्यसनों में आसक्त होने से राजा अर्थ, धर्म से हीन हो जाता है और क्रोधोत्पन्न व्यसनों में आसक्त होने से शरीर नाश को प्राप्त होता है ॥ ११

मूल - मृगयाक्षा दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्याच कामजो दशको गणः ॥ १२

अर्थ - १ मृगया शिकार खेलना २ - अक्ष चौसर आदि खेलना ३ - दिवास्वप्न दिन में सोना ४ - परिवाद दूसरे के दोष कहना ५ - स्त्रियों में आसक्त रहना ६ - मद्य पान करना ७ - नाचना ८ - गाना ९ - बजाना १० - वृथा घूमना, ये दश व्यसन काम से उत्पन्न हैं ॥ १२

मूल - पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्या सूयार्थ दूषणम् ।
वाग्दण्डजंच पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ १३

अर्थ- (१) पैशुन्य - चुगली खाना (२) साहस - अकरणीय कार्यों में प्रवृत्त होना (३) द्रोह - बिना कारण बैर करना (४) ईर्ष्या - दूसरे के गुण तथा कल्याण को न सहना (५) असूया - (निन्दा) परगुणों में दोषारोपण करना (६) अर्थ दूषण - अर्थों को चुराना अर्थात धनादि की चोरी करना अथवा निष्पक्ष हो यथार्थ न कहना (७) वाक्पारुष्य - कठोर वचन बोलना (८) दण्ड पारुष्य - बिना कारण ताड़नादि करना - ये आठ क्रोध से उत्पन्न हैं ॥ १३

मूल- द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेता वुभौ गणौ ॥ १४

अर्थ- मस्तकाविजन अठारह (१८) व्यसनों का कारण लोभ ही को जानते हैं क्योंकि पूर्वोक्त सम्पूर्ण व्यसन लोभ से उत्पन्न हैं अतएव लोभ को यत्न से जीते इसी के जीतने से ये सब व्यसन जीते जाते हैं ॥ १४

मूल- पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगयाञ्च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ १५

अर्थ- काम से उत्पन्न दश व्यसनों में मद्यपान - चौसर आदि खेलना - स्त्रियों में आसक्ति - शिकार खेलना - ये चार अत्यन्त दुख उत्पादक हैं ॥ १५

मूल- दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥ १६

अर्थ- क्रोध से उत्पन्न आठ व्यसनों में दण्ड (ताडन) करना - कठोर वचन - अर्थ का चुराना - ये तीन अति दुःख उत्पादक जानो ॥ १६

मूल- व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥ १७

अर्थ- यद्यपि व्यसन और मृत्यु ये दोनों दुःख दायक हैं तथापि व्य-

सन अति दुःख दायक हैं क्योंकि व्यसनी पुरुष नरक को जाता है
और व्यसन रहित मर कर स्वर्ग को जाता है ॥ १७ ॥

मूल - यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ।
तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्र मचिरे णैव सीदति ॥ १८

अर्थ - जिस राजा के देश में वेदादि विद्या का जानने वाला विद्वान् क्षुधा से पीड़ित (अन्न बिना दुखित) रहता है उसका राज्य दुर्भिक्षादि द्वारा (क्षुधा से) शीघ्र क्लेशित होता है अर्थात् दुःख को प्राप्त होता है ॥ १८

मूल - श्रुत वृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ।
संरक्षेत्सर्व तश्चैनं पिता पुत्र मिवौ रसम् ॥ १९

अर्थ - अतएव राजा वेद शास्त्र ज्ञान तथा सदाचार में युक्त विद्वान् ब्राह्मण की धर्मानुसार आजीविका कर दे और जैसे अपने पुत्र की पिता रक्षा करता है तैसे ही उस की समस्त चौरादि से रक्षा करे ॥ १९

मूल - संरक्ष्य माणो राज्ञायं कुरुते धर्म मन्व हम् ।
तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्र मेवच ॥ २०

---

१७ - ये अठारह (१८) व्यसन मृत्यु से भी विशेष कष्ट दायक हैं अर्थात् नरक को ले जाने वाले हैं इनको अवश्य त्याग करना चाहिये और इन (१८) में भी मद्यपान, चौसर आदि खेलना, विषयासक्त रहना, शिकार (जीव हिंसा करना), दण्ड (बिना अपराध प्राणि मात्र को क्लेश देना), कठोर (मर्म छेदी हृदय विदारक) वाक्य कहना, अर्थ का चुराना (धन की चोरी, निष्पक्ष होय यथार्थ न कहना इत्यादि अर्थ का चुराना है), ये सात (७) व्यसन कष्टतम (अत्यन्त दुःख दायक) हैं अतएव इन पर विशेष ध्यान दे सदा यत्नवान हो इन से बचा रहे किन्तु प्राणि मात्र के हित (देशोपकार) में तत्पर रहना ही मनुष्य में मनुष्यत्व धर्म है ॥

अर्थ - राजा से रक्षित वह ब्राह्मण नित्य प्रति जिस धर्म को करता है उस धर्म से राजा के आयु, धन, राज्य, बढ़ते हैं ॥ २०

मूल- क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्ट फल भोक्ताहि राजा धर्मेण युज्यते ॥ २१

अर्थ - क्षत्रियों का परम धर्म प्रजा का पालन ही है क्योंकि यथा विधि (प्रजा पालनादि) कर्म करने वाला तथा शास्त्रोक्त फलादिकों का भोगने वाला राजा धर्म से युक्त होता है ॥ २१

मूल- सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैव मानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥ २२

अर्थ - ये सम्पूर्ण कर्म दो प्रकार के हैं एक पूर्व जन्म कृत पाप पुण्य रूप दैव कहाता है और वर्त्तमान शरीर कृत पाप पुण्य रूप मानुष कहाता है इन दोनों के आधीन समस्त दुःख सुख हैं इनमें दैव कर्म अचिन्त्य है और मानुष विचारणीय है ॥ २२ १

२२- पूर्व जन्म में अपने किये पाप पुण्य को ही दैव कहते हैं इन के भोगने में अधैर्य न हो क्योंकि ये तो तर्क रहित (बिना हुज्जत) अवश्य मेव भोगने ही पड़ेंगे परन्तु भविष्य के अर्थ (आगामी दुःख रहित सुख के लिये) वर्त्तमान में निषेध (मद्यपान, परस्त्री परधन हरणादि तथा अशास्त्रीय आधुनिक) कर्मों का त्याग कर विचार पूर्वक शुभ (प्राणी मात्र पर दया, तथा वेद स्मृति प्रतिपाद्य सन्ध्योपासन, हवनादि) कर्मों का आलस्य रहित नित्य अनुष्ठान करे यही दुःख रहित सुखों का उपाय है ॥

मूल - आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ २३

अर्थ - आपदा के अर्थ (आपत्तियों को धन से निवारण करने के लिये) धन की रक्षा करे और धन से स्त्री की रक्षा करे, धन तथा स्त्री से आत्मा की रक्षा करे ॥ २३ ॥

२३ - स्त्री धनादि भी अपने सुख के लिये ही हैं अतएव इन को त्याग के भी आत्मा की रक्षा करनी धर्मशास्त्र की आज्ञा है क्योंकि शरीर के रहने से ये सब फिर भी हो सक्ते हैं और शरीर ही न रहा तो इनका रहना निष्फल है ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

मूल- धर्मोविद्धस्त्व धर्मेण सभां यत्रो पतिष्ठते ।
शल्यं चास्य न कृन्तान्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ १

अर्थ - जिस सभा में अधर्म से धर्म विद्ध अर्थात् असत्य रूपी अधर्म से के सत्य धर्म पीड़ित रहता है और सभासद् अधर्म से धर्म का उद्धार नहीं करते उस सभा के सभासद विद्ध हैं अर्थात् वह अधर्म सभासदों को ही दुःख कारक है ॥ १

मूल- सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥ २

अर्थ - अतएव उक्त विधि सभा में प्रथम तो जाना ही नहीं यदि जाय तो यथार्थ कहना चाहिये मिथ्या न बोले और चुप्प हो के भी न रहे क्योंकि मिथ्या बोलने से तथा चुप्प रहने से मनुष्य पातकी होता है। २

मूल- यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्ष माणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ ३

अर्थ- जिस सभा में सभासदों के देखते अधर्म कर के धर्म और असत्य कर के सत्य मारा जाता है अर्थात् नष्ट किया जाता है उस सभा के सभासद् ही हत हैं किन्तु असत्य तथा अधर्म का उन सभासदों पर ही आक्रमण होता है ॥ ३

२-३- सभा में वादी प्रतिवादी दोनों में से एक के सत्कारार्थ मिथ्या न बोले अथवा दोनों के सङ्कोच बस चुप्प भी न हो किन्तु निष्पक्ष हो सत्य ही बोले नहीं तो अधर्म के आक्रमण (चढ़ने) से आप ही नष्ट होना पड़ेगा ॥

मूल- धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत् ॥४

अर्थ - हत हुआ धर्म नाश करता है और रक्षा किया हुआ रक्षा करता है अर्थात् अतिक्रमण (त्याग) करने से धर्म नाश करता है और पालन (आचरण) करने से धर्म रक्षा करता है अतएव धर्म से रक्षित रहने की इच्छा वाले पुरुष धर्म का त्याग कदापि न करें ॥ ४ ॥

मूल- वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ ५

अर्थ - धर्म को वृष भगवान् कहते हैं जो धर्म का वारण (त्याग) करता है उसे देवता वृषल जानते हैं इससे धर्म का लोप कदापि न करना चाहिये ॥ ५ ॥

मूल - एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ ६

अर्थ - धर्म ही एक परम मित्र है जो मरने पर भी सङ्ग चलता है और सब (स्त्री पुत्रादि) शरीर के नाश होते ही नहीं दीखते अत एव-

४- महर्षि मनु जी कहते हैं कि धर्म की रक्षा करने से ही अपनी रक्षा होती है तब तो ऐसे रक्षक धर्म की अवश्य अधर्म से रक्षा करें किन्तु अधर्म रूपी सामाजिक नियमों का संशोधन करना वर्त्तमान में अत्यावश्यक है जैसे बाल्य (अज्ञान बालकों का) विवाह, अयोग्य (अति बालिका कन्या का वृद्ध से तथा तरुण कन्या का बालक से) विवाह, अतिव्यय (फ़िज़ूल खर्च) इत्यादि ॥

५- षट् भग (ऐश्वर्य, वीर्य, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य इन सब) की प्राप्ति धर्म से ही होती है अतएव धर्म को भगवान् कहा है ॥

स्त्री पुत्रादि के अर्थ भी धर्म का लोप कभी न करे ॥ ६ ॥

मूल - पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ ७

अर्थ - अधर्म का एक पाद (चतुर्थांश) अधर्म करने वाले को मिलता है एक पाद मिथ्या वादी शाक्षी (झूठी गवाही देने वाले) को मिलता है एक पाद सभासदों (जो यथार्थ न्याय से अधर्म का निवारण नहीं करते उन) को मिलता है और एक पाद राजा (जिसके भय बिना अधर्म में मनुष्य प्रवृत्त होते हैं उस) को मिलता है ॥ ७ ॥

मूल - राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥ ८

अर्थ - जिस सभा में निन्दा के योग्य को ही निन्दित करते हैं अर्थात् दण्ड योग्य को यथा वत दण्ड देते हैं उस सभा में राजा (सभाध्यक्ष) तथा सभासद् अधर्म से छूट जाते हैं किन्तु समस्त अधर्म करने वाले को ही मिलता है अतएव यथार्थ न्याय करना चाहिये ॥ ८ ॥

६- ऐसे परम हित कारी सदैव सङ्ग रहने वाले मित्र रूपी धर्म को क्षिण भङ्गु सुख में निमग्न हो, तथा अज्ञानता से मत मतान्तरों में फस कदापि न छोड़ना चाहिये किन्तु वेद स्मृति प्रति पाद्य धर्म का आचरण करे इसी से (स्त्री, पुत्र, धनादि) समस्त सुख मिलते हैं ॥

७-८- इन (श्लोकों) की स्मृति रख सभा में अन्याय को छोड़ यथार्थ न्याय ही करना चाहिये किन्तु दण्ड योग्य अपराधी को अवश्य यथा योग्य (सामाजिक, जाति वहिष कृतादि तथा राज्य द्वारा) दण्ड और निरपराधी को अभय देना चाहिये नहीं तो-

मूल - यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥ ९

अर्थ - जिस राज्य में शूद्र और नास्तिक (वेद, ईश्वर को न मानने वाले) अधिक होवें और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, नहीं हों वह समस्त देश दुर्भिक्ष (अकाल) और व्याधि (रोगादि) से पीडित होकर शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ९ *

मूल - समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्ध्यति ।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ १०

अर्थ - जिस को जो प्रत्यक्ष देखता तथा सुनता है तिस का सो शाक्षी (गवाही) सिद्ध होता है तिस (देखे सुने हुए) में जो सत्य ही शाक्षी देता है अर्थात् मिथ्या नहीं बोलता सो धन धर्म से रहित नहीं होता ॥ १०

मूल - साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ११

अर्थ - श्रेष्ट विद्वानों की सभा में देखे तथा सुने हुए से विपरीत (मिथ्या) जो बोलता है सो अधो मुख हो के नरक को जाता है तथा पूर्व पुण्य उपार्जित स्वर्ग से भी च्युत होता है अर्थात् उस को भी नहीं पाता ॥ ११

चौथाई अधर्म भोगना पड़ेगा ॥

९ - इसका कारण यह है कि द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) के अभाव से हवनादि (यज्ञ) नहीं होते बिना यज्ञ के वृष्टि कहां और वृष्टि के अभाव से अन्नादि का होना असम्भव है अतएव दुर्भिक्ष और रोग ही तो रहेगा ॥

मूल - यत्रा निबद्धो ऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन।
हृष्टस्तत्रापि नद्ब्रूयाद्यथा हृष्टं यथा श्रुतम् ॥ १२

अर्थ - यद्यपि साक्षी (गवाही) नियत नहीं किया हो तथापि जो देखा अथवा सुना हो उस को पूछने पर यथार्थ (सत्य) कह देना चाहिये ॥ १२

मूल - सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्म पूजिता ॥ १३
साक्ष्ये ऽनृतं वदन् पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम्।
विवशः शत माजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेद्दृतम् ॥ १४

अर्थ - साक्षी पुरुष साक्ष्य (गवाही) में सत्य बोलने से उत्तम लोकों को प्राप्त होता है और उसकी संसार में उत्तम कीर्त्ति होती है क्योंकि सत्य वाणी ब्रह्मा से भी पूजित है अर्थात् सत्कार की गयी है और मिथ्या बोलने से पर बश हो कर शत (१००) जन्म तक वरुण की पाश से अत्यन्त पीडित (शोषित) होता है अतः सत्य ही बोले ॥ १३। १४

मूल - सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्व वर्णेषु साक्षिभिः ॥ १५

अर्थ - सत्य करके साक्षी पवित्र होता है सत्य कर के धर्म भी बढ़ता है अतएव चारों वर्णों में साक्षी (गवाही) पुरुष सत्य ही बोले ॥ १५

मूल - आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिण मुत्तमम् ॥ १६

अर्थ - आत्मा की गति (शरण) और आत्मा की साक्षी आत्मा ही है इस आत्मा को उत्तम जान उसका अपमान न करे अर्थात् अन्तः करण से विपरीत (मिथ्या) न बोले ॥ १६

मूल - मन्यन्ते वै पाप कृतो न कश्चित्पश्यतीतिनः।

तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तर पूरुषः ॥ १७

अर्थ - पाप के कर्त्ता यह मानते हैं कि हम को पाप करते समय कोई नहीं देखता परन्तु उनको दिव्यमाण देवता तथा अन्तरात्मा देखते हैं ॥ १७

मूल - द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ।
रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ १८

अर्थ - मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों को आकाश, भूमि, जल, हृदयस्थित जीव, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, दोनों सन्ध्या, धर्म, ये सब जानते हैं ॥ १८ ॥

मूल - अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् ।
यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन् धर्मनिश्चये ॥ १९

अर्थ - जो धर्म का निश्चय करने के अर्थ पूछने वाले से असत्य बोलता है (अर्थात स्वार्थ वश हो शास्त्र से विरुद्ध आधुनिक कपोल कल्पित धर्म का निश्चय करता है) सो पापी अधोमुख होकर महान् अन्धकार युक्त नरक में जाता है ॥ १९ ॥

---

१८ - साक्षियों (गवाहों) के विषय में मनुस्मृति में बहुत श्लोक हैं यहां विस्तार के भय से नहीं लिखे गये, सब का सारांश यह है कि समस्त भूमण्डल का राज्य भी (कोई) देने कहे तब भी मिथ्या साक्ष्य (झूठी गवाही) न दे ॥

१९ - धर्म विषय में हस्ताक्षेप करने वालों को इस श्लोक पर अवश्य ध्यान देना चाहिये किन्तु धर्म के निर्णय में निष्पक्ष हो श्रुति स्मृति के अनुकूल यथार्थ धर्म ही को प्रचलित करें क्योंकि निष्पक्ष वादानुवाद से सुखपूर्वक धर्म का निर्णय होता है अन्यथा असत्य का पक्ष लेने से दुःख तथा अधर्म उत्पन्न होता है यह

मूल- गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान्।
प्रेष्यान्वा र्धुषिकांश्चैव विप्रान्शूद्रवदाचरेत॥२०
अर्थ- गोरक्षा से वाणिज्य वृत्ति से पाक (रसोई) आदि से शिल्प वृत्ति से शूद्र वृत्ति (सेवा) से ब्याज से शास्त्र निन्दित वृत्ति से आजीविका करने वाले ब्राह्मणों को शूद्र के समान वर्त्ते अर्थात शूद्र से जैसा व्यवहार करे वैसा ही इन्हों से करे ॥ २०

मूल- न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पे ऽप्यर्थे नरोबुधः।
वृथाहि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ २१
अर्थ- विद्वान पुरुष थोड़े कार्य के अर्थ व्यर्थ शपथ न करें क्योंकि मिथ्या शपथ से इस लोक तथा परलोक में नाश को प्राप्त होते हैं॥ २१ ❀

मूल- लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथ मुच्यते॥२२
अर्थ- लोभ से मोह से भय से मित्रता (स्नेह) से काम से क्रोध से अज्ञान (मूर्खता) से बालभाव (क्षुद्र बुद्धि) से साक्षी असत्य बोलता है ॥ २२

मूल- अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ २३
अर्थ- अदण्डी (दण्ड के योग्य जो नहीं है उस) को दण्ड देने वाला और दण्ड के योग्य को न देने वाला अर्थात् अपराध रहित को दण्ड और अपराधी को छोड़ देने वाला राजा महान् अपयश को प्राप्त होता है अन्त में नरक को जाता है ॥ २३ ❀

सज्जनों को अनुभव सिद्ध है ॥
२१- इस (श्लोक) पर उन्हें विशेष ध्यान देना चाहिये जिन की

मूल- अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ।
सशतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥ २४

अर्थ - जो मनुष्य कन्या को द्वेष (बैर) से अकन्या बिवाहिता (सम्भोग दूषिता) कहे और उसके दोष को सिद्ध न कर सके उस को राजा शत (१००) पण दण्ड दे ॥ २४ ❀

मूल- पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हिताः ॥ २५

अर्थ - बिवाह बिधि में जो वैदिक मन्त्र हैं वे कन्या ही के बिवाह निमित्त किये गये हैं अकन्या के अर्थ नहीं क्योंकि उस (अकन्या) की धर्म क्रिया लुप्त हो जाती है ॥ २५

मूल- पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ २६

प्रकृति बात बात पर शपथ (क़सम) खाने की है किन्तु इस (उभय लोक नाशक) प्रकृति को त्याग दे ॥

२३ - जो ईश्वर राजा प्रति अपराधी को दण्ड देने की ऐसी दृढ़ (सक) आज्ञा देता है सो ईश्वर यह आज्ञा देगा कि मुझ पर विश्वास लाने से ही (पापी के) सब पाप छूटते हैं ? कदापि नहीं, अतएव ऐसे स्वार्थ बद्ध पुरुषों पर तथा तिन के रचित ग्रन्थों पर विश्वास ला कर पाप में प्रवृत्त कदापि न हो किन्तु दण्ड (नरक) के भय से पाप कर्मों में मानसिक वृत्ति (इच्छा) को भी न करे नहीं तो दण्ड अवश्य भोगना पड़ेगा ॥

२४ - पण नाम एक पैसे का है और अढ़ाई सौ (२५०) पण को प्रथम सहस्र कहते हैं पञ्चशत (५००) पण को मध्यम सहस्र और सहस्र (१०००) पण को उत्तम सहस्र कहते हैं ॥

अर्थ- बिवाह के मन्त्रों से ही स्त्री को भार्यात्व निश्चय सिद्ध होता है परन्तु उन मन्त्रों से भार्यात्व की सिद्धि सप्तपदी की समाप्ति पर विद्वान कहते हैं ॥ २६

मूल- एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन्।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥ २७

अर्थ- जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पर दारुण वाणी (कठोर हृदय विदारक वाक्यों) से आक्षेप करता है सो रसना (जीभ) छेदन दण्ड को प्राप्त होता है क्योंकि उस की उत्पत्ति निकृष्ट से है ॥ २७

मूल- भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राताच सोदरः।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेनवा ॥ २८

अर्थ- स्त्री, पुत्र, दास, छोटा सोदर भ्रातादि से कोई अपराध बन जाय तो रस्सी वा वेणुदल (खपच्ची) से ताड़ना करे ॥ २८

मूल- येनयेन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ २९

अर्थ- जिस हस्त पादादि अङ्ग से पराये धन हरण (चोरी) की चेष्टा करे उस चोर के उसी अङ्ग का राजा छेदन करे ॥ २९

मूल- पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥ ३०

अर्थ- पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र, पुरोहित, ये सब अपने धर्म में स्थित न रहें तो राजा को अदण्डनीय नहीं हैं अर्थात् राजा इन को अवश्य दण्ड दे ॥ ३० १

---

३० - बिना दण्ड भय के धर्म का यथार्थ निर्वाह होना असम्भव है अतएव धर्म विषय में समस्त मनुष्यों को ईश्वर, राजा, समाज,

मूल- कार्षापणं भवेद्दण्डोयत्रान्यः प्राकृतोजनः।
तत्रराजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥ ३१

अर्थ - जिस अपराध में अन्य मनुष्य कार्षापण (एक पैसा) दण्ड के योग्य होता है उस अपराध में राजा सहस्र पण दण्डनीय (दण्ड के योग्य) होता है ॥ ३१

मूल- अष्टा पाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्यच ॥ ३२
ब्राह्मणस्यचतुःषष्टिः पूर्णांवापि शतं भवेत्।
द्विगुणावाचतुःषष्टिस्तद्दोष गुण विद्धि सः ॥ ३३

अर्थ- पदार्थ के गुण दोष बिना जाने चुराने वाले को जो दण्ड उचित है उसकी अपेक्षा गुण दोष जान चुराने वाले शूद्र को आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा, ब्राह्मण को चौंसठ (६४) गुणा वा शत (१००) गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस (१२८) गुणा दण्ड देना राजा को उचित है क्योंकि गुण दोष जान के चुराना अधिक पातक है ॥ ३२। ३३

मूल- योऽदत्ता दायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणोधनम।
याजनाध्यापनेनापि यथास्तेनस्तथैव सः ॥ ३४

अर्थ- जो ब्राह्मण चोर के हाथ से (यज्ञ करा तथा विद्या पढ़ा के भी) चोरी का धन जान के लेने की इच्छा करता है सो चोर के समान है अर्थात् चोर के सदृश दण्ड उसे भी देना चाहिये ॥ ३४

मूल- गुरुंवा बाल वृद्धौवा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिन मायान्तं हन्यादेवा विचारयन् ॥ ३५

अर्थ- गुरू, बालक, वृद्ध, विद्वान् ब्राह्मण ये भी आततायी

का भय अवश्य होना चाहिये ॥

(मारने को उद्यत) हो के आवें तो बिना विचारे (इन्हों का) बध करना चाहिये ॥ ३५

मूल- नाततायि बधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्यु मृच्छति ॥ ३६

अर्थ - एकान्त में वा मनुष्यों के प्रत्यक्ष आततायी का बध करने वाले को कोई दोष (प्रायश्चित्त) नहीं है क्योंकि क्रोधाभिमानी देवता (महेश्वर) आप ही आततायी के क्रोध को दूर करता है ॥ ३६ *

मूल- परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः ।
उद्वेजन करैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ३७
तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्ण संकरः ।
येन मूल हरोऽधर्मः सर्व नाशाय कल्पते ॥ ३८

अर्थ - परस्त्री के सम्भोग में प्रवृत्त मनुष्यों को राजा भयङ्कर दण्ड से चिन्हित कर (लिङ्ग नासिका कर्ण आदि को छेदन कर) उस को देश से निकाल दे क्योंकि परस्त्री गमन से वर्ण संकर उत्पन्न और वर्ण संकरों से जगत के मूल (कारण) का विनाशक अधर्म, अधर्म से जगत का नाश होता है अर्थात् वर्ण संकरों (यज्ञ के अनधिकारियों) से यज्ञ का अभाव और यज्ञ के अभाव से बर्षा का अभाव होकर जगत का नाश होता है ॥ ३७ । ३८

मूल- परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहण माप्नुयात् ॥ ३९

---

३६ - आततायियों के लक्षण "अग्नि दो गरद श्चैव शस्त्र पाणि र्धना पहः । क्षेत्र दारा पहर्ता च षडेते ह्यात तायिनः" आग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र (हथियार) लिये मारने को उद्यत, पराये धन, भूमि, स्त्री, के हरण करने वाले ये छः (६) आततायी हैं ॥

अर्थ - जो पुरुष परस्त्री से तीर्थ (पनघट के मार्ग में) आरण्ये (ग्राम से बाहर) वृक्ष, लतानि में, निर्जन देश में (जहां कोई मनुष्य न हो) बन (बगीचे) में, नदियों के संगम में सम्भाषण करता है सो सग्रहण (भोगाभिलाषिता) को पाता है ॥ ३९

मूल - उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम्।
सहखट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ४०
स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ४१

अर्थ - माला, गन्ध, अनुलेपन (अभिलाषित) स्त्री को धारण कराना अथवा भेजना, केलि (क्रीड़ा परस्पर हास्य) करना उस स्त्री के बस्त्राभूषण का स्पर्श (छूना) एक शय्या पर तथा आसन पर बैठना और स्त्री के अनुचित (कुच जंघादि) अङ्गों का स्पर्श करना तथा पुरुष के (वृषलादि) अङ्गों का स्पर्श करना परस्पर प्रसन्नता (आपस में राजी) से ये सब संग्रहण मनु आदि महर्षियों ने कहे हैं ॥ ४० । ४१

मूल - भर्त्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ ४२

अर्थ - जो स्त्री जाति (पितादि) को शौर्यादि गुणों से तथा मधुर, धन, बान्धवों से अभिमान युक्त हो पति का परित्याग कर पर पुरुष का सेवन करे उसे राजा बहुत मनुष्यों के मध्य में श्वानों (कुत्तों) से भक्षण करावे ॥ ४२

मूल - पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत ॥ ४३

अर्थ - उस स्त्री के जार पति को तप्त लोहे की शय्या पर शयन करा के चारों तरफ़ काष्ट (जब तक) रक्खे तब तक उस पापी का शरीर

अग्नि में दग्ध न हो ॥ ४३ ॥

मूल - सम्वत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ॥ ४४

अर्थ - परस्त्री गमन में अदण्ड रह कर एक वर्ष पीछे पुनः गमन करे तथा व्रात्या (असंस्कारी की स्त्री) और चाण्डाली से वर्ष पीछे पुनः गमन करे तो उस दुष्ट को दूना दण्ड दे ॥ ४४

मूल - शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ।
अगुप्तमङ्ग-सर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥ ४५

अर्थ - जो शूद्र पति आदि से अरक्षित द्विजाति की स्त्री से गमन करे तो उस शूद्र का लिङ्ग छेदन तथा सर्वस्व (सम्पूर्ण धन) का हरण करे और रक्षिता से गमन करे तो धन हरण तथा प्राण हरण करे ॥ ४५

मूल - वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ।
सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति ॥ ४६

अर्थ - यदि वैश्य ब्राह्मणी से गमन करे तो एक वर्ष का बन्धन (जेलखाना) दण्ड कर पश्चात् सर्वस्व हरण करे और इसी अपराध में क्षत्रिय को सहस्र पण तथा मूत्र से केश छेदन दण्ड है। ४६

---

४२ - ४३ - इत्यादि दण्ड जिस समय यथावत् प्रचलित (जारी) होंगे तब तो व्यभिचार शून्य भारत वर्ष पतिव्रताओं से पूरित होगा बर्त्तमान में व्यभिचार का कारण दण्ड का तथा स्त्री शिक्षा का अभाव है यावत् गोरक्षा , स्त्री शिक्षा , सामाजिक नियमों का संशोधन , वैदिक धर्म , इन चारों का यथावत् प्रचार न होगा तावत् फूट रूपी अग्नि से भारत का उद्धार होना असम्भव है ॥

मूल- ब्राह्मणींयद्यगुप्तांतु गच्छेतांवैश्यपार्थिवौ।
वैश्यंपञ्चशतंकुर्यात्क्षत्रियंतु सहस्त्रिणम्॥ ४७

अर्थ - और अरक्षित ब्राह्मणी मेंवैश्य गमन करे तो पञ्च शत (५००) पण दण्ड दे और इसी अपराध में क्षत्रिय हज़ार पण दण्ड दे॥ ४७

मूल - सहस्त्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रांबलाद्व्रजन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्या दिच्छन्त्या सह संगतः ४८

अर्थ - जो ब्राह्मण पति आदि से रक्षित ब्राह्मणी से बलात्कार (ज़बर्दस्ती) गमन करे तो हज़ार पण दण्ड दे और उस (ब्राह्मणी) की इच्छा से गमन करे तो पञ्च शत (५००) पण दण्ड दे॥ ४८

मूल - अगुप्ते क्षत्रिया वैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्त्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ४९

अर्थ - जो ब्राह्मण पति आदि से अरक्षित क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की स्त्री से गमन करे तो पञ्च शत (५००) पण दण्ड दे और अन्त्यज (चाण्डालादि) की स्त्री से गमन करे तो हज़ार पण दण्ड देना चाहिये॥ ४९

मूल - यस्यस्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिक दण्डघ्नौ स राजा शक्रलोक भाक्॥ ५०

अर्थ - जिस राजा के राज्य में चोर, परस्त्रीगामी, कटुवादी (कठोर बचन बोलने वाले), साहसी (ज़बर्दस्ती करने वाले), दण्डप्रहारी (दण्ड से मारने वाले) नहीं हैं वह राजा इन्द्र के लोक को प्राप्त होता है॥ ५० १

१५० - इत्यादि (अधर्मोत्पादक पापियों) के अभाव से धर्मात्मा सज्जन निर्विघ्न धर्म का पालन करते हैं तिस (सद्धर्म) के फल से राजा ही नहीं किन्तु प्रजा भी इन्द्र के समान सम्पूर्ण भोग भोगने के योग्य होती है॥ इति अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

मूल–अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम्।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥१

अर्थ– पति आदि को उचित है कि स्त्रियों को दिन रात्रि अपने आधीन रक्खे और रूप, रस, गन्धादि विषयों में आसक्त हो निस को भी अपने बश में करें ॥ १

मूल– पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ २

अर्थ– कौमार अवस्था में अर्थात् विवाह से पूर्व पिता, युवावस्था में पति, और वृद्ध अवस्था में पुत्र रक्षा करते हैं अतएव स्त्री किसी अवस्था में स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं ॥ २

मूल– कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः।
मृते भर्त्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ३

अर्थ– विवाह योग्य कन्या का दान (विवाह) न करने से पिता, और ऋतु समय में सम्भोग न करने से पति, तथा पति के मरने पर माता की रक्षा न करने से पुत्र, निन्दित होते हैं ॥ ३

मूल– सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ४

अर्थ– छोटे छोटे कुसङ्गों से भी स्त्रियों की विशेष रक्षा करनी चाहिये क्योंकि अरक्षित स्त्री पिता पति दोनों कुलों को शोक में निमग्न करती है ॥ ४ १

१– अरक्षिता स्त्री पर पुरुष को स्वीकार कर लेगी तो अवश्य दो-

मूल - इमंहि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् ।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्त्तारो दुर्बला अपि ॥ ५

अर्थ - यह (स्त्रियों की रक्षा) ब्राह्मणादि वर्णों का उत्तम धर्म जान के निर्बल भर्त्ता भी स्त्रियों की यत्न से रक्षा करे ॥ ५

मूल - स्वां प्रसूतिं चरित्रंच कुलमात्मानमेवच ।
स्वंच धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ ६

अर्थ - अपनी सन्तति , सद्वृतान्त , कुल , आत्मा , स्वधर्म , इन सब की रक्षा स्त्री की (यत्न पूर्वक) रक्षा करने से होती है ॥ ६

मूल - अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यांच पारिणाह्यस्य वेक्षणे ॥ ७

अर्थ - धन का संग्रह (इकट्ठा) करना , खर्च करना , पवित्रता , धर्म , अन्न पाक (रसोई) करना , गृह मालिन्य का अवेक्षण (घर की सामिग्री की सम्हाल रखना) इन कार्यों में स्त्रियों को तत्पर करें ॥ ७ ✻

मूल - पानं दुर्जन संसर्गः पत्याच विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्य गेहवासश्च नारी संदूषणानि षट् ॥ ८

अर्थ - मद्यपान , दुर्जन (व्यभिचारादि से दूषित स्त्री वा पुरुष) का सङ्ग , पति के समीप न रहना , घर से बाहर विचरना (मेला तमाशों में घूमना) , कुसमय शयन (सोना) , पराये गृह निवास करना , ये छः स्त्रियों को दोषोत्पादक हैं ॥ ८ ✻

तो (पिता , पति) कुल की निन्दा होगी अतएव स्त्री की यत्न से रक्षा करें ॥

७ - इत्यादि कार्यों में लगाये रखना यह भी स्त्री के रक्षण का उत्तम यत्न है परन्तु विद्या पढ़ी हो नहीं तो इन कार्यों को कर नहीं सकेगी

मूल - भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्याया गुरुपत्न्यनुजस्य सा ।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषाज्येष्ठस्य सास्मृता ॥ ९

अर्थ - बड़े भ्राता की स्त्री छोटे भ्राता की गुरपत्नी और छोटे भ्राता की स्त्री बड़े भ्राता की स्नुषा (पुत्रबधू) मुनियों ने कही है अर्थात् छोटा भाई बड़े की स्त्री को माता के समान और बड़ा भाई छोटे की स्त्री को पुत्री के समान वर्ते ॥ ९

मूल - काममा मरणात्तिष्ठे द्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ १०

अर्थ - ऋतुमती भी कन्या मरण पर्यन्त पितागृह में भले ही रहे परन्तु विद्यादि गुण हीन (बर) को कदापि (पितादि) न दें ॥ १० ॥

९ - इन दोषों से बचाने का यत्न विवाह पीछे स्त्री को पति के गृह (घर) में रक्खे इससे सब दोष निवृत्त होंगे और धर्म शास्त्र से भी स्त्री विवाह उत्तर पति के समीप रहे पति की सेवा करे नहीं तो पात्यव्रत नष्ट होता है परन्तु वर्त्तमान के दयारहित विचार शून्य कौतुकाभिलाषी (तमाशा देखने की इच्छा कर) धर्मशास्त्र को तिलाञ्जली दे अति बालकों का विवाह करते हैं क्या वे (विद्या पढन योग्य बालक बालिका) स्त्री की रक्षा तथा पात्यव्रत का साधन कर सकेंगे ? कदापि नहीं ॥

१० - मरण पर्यन्त कन्या घर में ही रहे परन्तु गुणहीन को न दे यह धर्म शास्त्र की आज्ञा है इसके विरुद्ध धन के लोभ से तथा भेड़ियाधसान से अति बालक (जिसके गुण दोष जान नहीं सक्ते क्या होंगे उस) को कन्या देने वाले पुरुष इस लोक में निन्दादि दुःख तथा परलोक में नरक को क्यों न जायेंगे ? अवश्य जायेंगे ॥

मूल - त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ११

अर्थ - कन्या ऋतुमती (रजस्वला) होकर पिता के द्वारा सुन्दर बर की तीन वर्ष तक प्रतीक्षा (आशा) करे तदनन्तर (तीन बर्ष पीछे) अपने समान पति को प्राप्त हो अर्थात् स्वयम्बर (अपने आप पति) करले ॥ ११

मूल - अदीयमाना भर्त्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ।
नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति ॥ १२

अर्थ - पूर्वोक्त काल (तीन वर्ष) तक पिता आदि (गुण युक्त सुन्दर बर न मिलने से) बिवाह न करने पर कन्या स्वयम्बर कर ले तो उस कन्या तथा उसके पति को कोई पातक नहीं है ॥ १२

मूल - अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः ।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १३

अर्थ - स्त्री पुरुष का मरण पर्यन्त वियोग न हो किन्तु सर्वदा एक साथ, एक सम्मति से यावन्मात्र कार्यों को करना यह संक्षेप से स्त्री पुरुषों का परम धर्म जानना चाहिये ॥ १३ फु

मूल - पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ १४

अर्थ - जैसे पिता पुत्रों का पालन करता है वैसे ही बड़ा भाई छोटे भाइयों का पालन करे और छोटे भाई भी बड़े भाई की (धर्म से) पिता के समान सेवा करें ॥ १४

---

१३ - इस (धर्म शास्त्र की आज्ञा) पर ध्यान दे स्त्री को पितादि के गृह (घर) में अधिक दिन न रक्खे किन्तु विदेश यात्रा में भी पति अपने साथ ही रक्खे ॥

मूल- ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥ १५

अर्थ- बड़ा ही कुल को बढ़ाता है और बड़ा ही कुल का नाश करता है तथा बड़ा ही लोक में पूज्यतम (अति पूजनीय) है और बड़ा ही सद्विद्वानों कर के अनिन्दित (सज्जनों में प्रशंसनीय) है ॥ १५

मूल- द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ।
राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ १६

अर्थ- द्यूत और समाह्वय इन (दोनों जूओं) को राजा राज्य से निवारण करे क्योंकि ये दोनों दोष राजाओं को नाश करने वाले हैं ॥ १६

मूल- प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ।
तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ १७

अर्थ- द्यूत और समाह्वय ये दोनों प्रत्यक्ष चोरी हैं अतएव राजा इन (दोनों जूओं) के नाश करने में नित्य यत्न करता रहे ॥ १७

मूल- अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ १८

अर्थ- प्राण रहित अक्ष (पांसे) आदि से पण (दाव) पूर्वक खेलना द्यूत कहाता है और प्राण सहित अर्थात मेष (मेंढा) भैंसा आदि के लड़ाने पण करना (शर्त्त लगाना) समाह्वय कहाता है ॥ १८

मूल- द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ १९

अर्थ- इन (दोनों जूओं) को जो करे तथा करावे उन को और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के (यज्ञोपवीतादि) चिन्ह धारण करने वाले शूद्रों को यथापराध (हस्त, पादादि छेदन, बधादि) दण्ड करे ॥ १९

मूल-कितवान्कुशीलवान् क्रूरान्पाषण्डस्थांश्च मानवान्।
विकर्मस्थाञ्शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात ॥ २०
एते राष्ट्रे वर्त्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः।
विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥ २१

अर्थ- द्यूतादि खेलने वाले, नाचने वाले, गानेवाले, वेदविरोधी (श्रुति स्मृति बाह्य कर्म करने वाले) अन्य के कर्म से जीविका करने वाले मद्यपान करने वाले इन सब को राजा अपने राज्य से शीघ्र (जल्दी) निकाल दे किन्तु ये (पूर्वोक्त) गुप्त चोर राजा के राज्य में बसते हुए धार्मिक प्रजा को छल से दुःख देते हैं ॥ २०। २१

मूल- यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे।
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥ २२

अर्थ- राजा को जो अधर्म निरपराधी के बध करने से शास्त्र ने कहा है सोही (अधर्म) अपराधी को छोड़ने में है किन्तु शास्त्रानुसार (यथापराध) दण्ड करना धर्म है अतएव राजा शास्त्रानुसार यथोचित दण्ड करे ॥ २२

मूल- नहि दण्डादृते शक्यः कर्त्तुं पापविनिग्रहः।
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥ २३

अर्थ - नम्र वेष से पृथिवी में बिचरने वाले चोर तथा पापबुद्धियों के पाप का (बिना दण्ड) के निग्रह करना असम्भव है अतएव राजा (इन्हें) अवश्य दण्ड दे ॥ २३

मूल- यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः।
दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥ २४

अर्थ - दूसरों को यज्ञादि (धर्म) करा के तथा दानादि से जीविका कराने वाला भी ब्राह्मण स्वधर्म मर्यादा से च्युत हो अर्थात अपने धर्म से भ्रष्ट (रहित) हो तो उसे भी दण्ड देना राजा को उचित है ॥ २४

मूल - चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः।
अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ २५

अर्थ - चिकित्सा करने वाले (वैद्य) जो बिना शास्त्र जाने गौ आदिकों की विपरीत चिकित्सा करें तो प्रथम सहस्र (२५० पण) दण्ड दे और मनुष्यों की करें तो मध्यम सहस्र (५०० पण) दण्ड देने उचित है ॥२५ॐ

मूल - आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥२६

अर्थ - कार्य का आरम्भ करने से श्रमित (थकित) होने पर भी बार बार कार्य करता रहे क्योंकि कार्य करने वाले (पुरुषार्थी) की लक्ष्मी सेवा करती है ॥ २६ ॐ

२५- इस पर राजा तथा समाज को अवश्य ध्यान देना चाहिये किन्तु वर्त्तमान में विद्या शून्य (मूर्ख) वैद्य अनेक मनुष्यों का नाश करते हैं ॥

२६- कर्म का बारम्बार आरम्भ करना लक्ष्मी स्वाधीन करना है यह महर्षि मनु जी ने अपने धर्म शास्त्र में आज्ञा दी है और भर्त्तृहरि (परम वैराग्य मान् परोपकारी) ने भी नीति शतक में कहा है "प्रारभ्यते नखलु विघ्न भयेन नीचैः, प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्याः। विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः, प्रारभ्य चोत्तम जनान परित्यजन्ति"

भावार्थ - नीच (क्षुद्र आलसी) मनुष्य विघ्न के भय से किसी कार्य का आरम्भ ही नहीं करते और मध्यम पुरुष कार्य का प्रारम्भ तो करते हैं परन्तु विघ्न आने पर शीघ्र त्याग देते हैं किन्तु विघ्न को सहन तथा दूर कर आरम्भित कार्यों को पूरा नहीं करते और उत्तम पुरुष (परम उद्योगी पुरुषार्थी) अनेक बार विघ्न होने पर-

मूल - कृतं त्रेता युगंचैव द्वापरं कलिरेवच ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजाहि युगमुच्यते ॥ २७

अर्थ - सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, ये चारों युग राजा ही के चेष्टित आचरण हैं अर्थात राजा ही के आचरणों से युग प्रवृत्त होते हैं अतएव राजा ही युग रूप है ॥ २७

मूल - कलिः प्रसुप्तो भवति सजाग्र द्वापरं युगम् ।
कर्मस्व भ्युद्यत स्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ २८

अर्थ - जब राजा अज्ञान आलस्य आदि से सोता है अर्थात निरुद्यम होता है तब कलियुग, और जिस समय जाग (ज्ञान) के न करे तब द्वापर, जब कर्म करने को उद्यत हो तब त्रेता, जिस काल में यथा शास्त्र कर्म करे तब सतयुग जानो ॥ २८ ॐ

मूल - वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दार परिग्रहम् ।
वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥ २९

अर्थ - वैश्य, यज्ञोपवीत तथा विवाह के होने पर आजीविका के अर्थ गो आदि पशु पालन तथा वाणिज्यादि में नित्य तत्पर रहे। २९

मूल - धर्मेणच द्रव्य वृद्धावा तिष्ठेद्यत्न मुत्तमम् ।
दद्याच्च सर्वभूताना मन्न मेव प्रयत्नतः ॥ ३०

भी आरम्भित कार्य को पूरा करते हैं तथा बार बार आरम्भ करते हैं वे ही लक्ष्मी पात्र इस लोक में सर्व सुख तथा परलोक में मोक्ष के अधिकारी हैं ॥

२८ - इस (कलियुग के कारण) पर उन्हें विशेष ध्यान देना चाहिये जो आलसी हो कलियुग का बहाना कर शुभ कर्मों का अनुष्ठान नहीं करते किन्तु वे ही (आलसी) कलि के कारण हैं यह महर्षि मनु कहते हैं ॥

अर्थ - धर्म से धन की वृद्धि करने में उत्तम प्रयत्न करे और सब प्राणियों को विशेषता अन्न दान दे ॥ ३०

मूल- विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः॥३१

अर्थ - गृहस्थ वेदादि शास्त्र के ज्ञाता यशस्वी ब्राह्मणों की सेवा ही शूद्र का परम कल्याण दायक धर्म है ॥ ३१

मूल- शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥३२

अर्थ - पवित्रता (बाह्य जल मृतिका से शरीर की शुद्धि आभ्यन्तर मन से राग द्वेष का त्याग) उत्कृष्ट (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) की सेवा करना, कोमल वाणी से बोलना, अहंकार को त्यागना, नित्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के आश्रित रहना, ये सब कर्म शूद्र करें तो उत्तम जाति को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ १

---

३२ - देखिये शूद्रों को भी धर्म शास्त्र में कैसा सरल कर्म बताया है जिसके द्वारा इस लोक में आजीविका से समस्त सुख तथा परलोक में उत्तमता को प्राप्त होते हैं ॥

इति नवमोऽध्यायः॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

मूल- ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ १

अर्थ- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीनों वर्ण द्विजाति कहाते हैं और चतुर्थ वर्ण शूद्र एक जाति कहाता है पञ्चम वर्ण कोई नहीं है ॥ १

मूल- ब्राह्मणाद्वैश्य कन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषादः शूद्र कन्यायां यः पारशव उच्यते ॥ २

अर्थ - ब्राह्मण से वैश्य कन्या में अम्बष्ठ नामक पुत्र उत्पन्न होता है अर्थात उसकी अम्बष्ठ जाति कहाती है शूद्र कन्या में उत्पन्न को निषाद तथा परशव कहते हैं ॥ २

मूल- विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयो द्वयोः ।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥ ३

अर्थ - ब्राह्मण से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णों की कन्याओं में और क्षत्रिय से वैश्य, शूद्र की कन्याओं में तथा वैश्य से शूद्र कन्या में जो उत्पन्न होते हैं वे अपसद (निकृष्ट) कहाते हैं ॥ ३

मूल- क्षत्रियाद्विप्र कन्यायां सूतो भवति जातितः ।
वैश्यान्मागध वैदेहौ राज विप्राङ्गनासुतौ ॥ ४

अर्थ- क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र को सूत कहते हैं और वैश्य से क्षत्रिय स्त्री में उत्पन्न को मागध तथा ब्राह्मणी में उत्पन्न को वैदेहक कहते हैं ॥ ४ ॥

मूल- शूद्रादायोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
वैश्यराजन्य विप्रासु जायन्ते वर्ण संकराः ॥ ५

अर्थ- शूद्र से वैश्य स्त्री में उत्पन्न आयोगव नामक, क्षत्रिय स्त्री-

में उत्पन्न क्षत्तृनामक · ब्राह्मणी में उत्पन्न चाण्डाल नामक मनुष्यों में अधम (नीच) वर्ण संकर होते हैं ॥ ५ ४

मूल- ब्राह्मणा दुग्रकन्यायामावृतो नामजायते ।
आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यांतुधिग्वणः ॥ ६

अर्थ- ब्राह्मण से उग्र (क्षत्रिय से शूद्रा में उत्पन्न) जाति की कन्या में उत्पन्न पुत्र आवृत नाम कहाते हैं और अम्बष्ट (ब्राह्मण से वैश्य स्त्री में उत्पन्न) जाति की कन्या में उत्पन्न आभीर नामक · तथा आयोगव (शूद्र से वैश्य स्त्री में उत्पन्न) जाति की कन्या में उत्पन्न धिग्वण नामक पुत्र होते हैं ॥ ६

मूल- जातोनिषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः ।
शूद्राज्जातो निषाद्यांतु सवै कुक्कुटकः स्मृतः ॥ ७

अर्थ- निषाद से शूद्र की कन्या में उत्पन्न पुक्कस होता है और शूद्र से निषाद की कन्या में कुक्कुटक नामक होता है ॥ ७

मूल- क्षत्तुर्जातस्तथोग्रा यां श्वपाक इति कीर्त्यते ।
वैदेह केन त्वम्ब ष्ठ्या मुत्पन्नो वेण उच्यते ॥ ८

अर्थ- उग्र की कन्या में क्षत्ता से उत्पन्न श्वपाक नामक होते हैं और अम्बष्ट की कन्या में वैदेह से उत्पन्न वेण नामक होते हैं ॥ ८

मूल- द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् ।
तान्सावित्री परिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दशेत ॥ ९

अर्थ- द्विजाति (ब्राह्मण · क्षत्रिय · वैश्य) सवर्ण (अपने २ वर्ण की स्त्रियों) में उत्पन्न किये पुत्रों को भी उपनयन (यज्ञोपवीत)-

---

४ - ५ - ये वर्ण संकर पूर्वोक्त (पहिले कहे) से भी नीच है क्योंकि पहिले अनुलोम (उच्च वीर्य से नीच क्षेत्र में उत्पन्न हुए) हैं और ये प्रतिलोम (नीच वीर्य से उच्च क्षेत्र में उत्पन्न हुए) हैं ॥

संस्कार से हीन रक्खे तो उन (गायत्री पतितों) को व्रात्य कहना चाहिये ॥ ९ ९

मूल- व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥ २०

अर्थ- व्रात्य (असंस्कारी) ब्राह्मण से अपने वर्ण की स्त्री में पापात्मा भूर्जकण्टक नामक उत्पन्न होता है उसको देश भेद से आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध, शैख भी कहते हैं ॥ २०

मूल- झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च ।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २१

अर्थ- व्रात्य (असंस्कारी) क्षत्रिय से अपने वर्ण की स्त्री में झल्ल, मल्ल, निच्छिव, नट, करण, खस, द्रविड़ नाम उत्पन्न होते हैं इन्हों की जाति एक ही है परन्तु देशभेद से नाम अनेक हैं ॥ २१

मूल- वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च ।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥ २२

अर्थ- व्रात्य (असंस्कारी) वैश्य से अपने वर्ण की स्त्री में सुधन्वाचार्य उत्पन्न होता है कारुष, विजन्मा, मैत्र, सात्वत, ये देशभेद से पूर्ववत जानो ॥ २२

मूल- मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते ।
नॄन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥ २३

अर्थ- वैदेह से आयोगव की कन्या में मैत्रेय नामक मीठा बो-

९- पूर्व (द्वितीयोऽध्याय में) संस्कार के अभाव से व्रात्य संज्ञा कही यहां वर्ण संकरों की उत्पत्ति दिखाने के अर्थ पुन व्रात्य संज्ञा कही अतएव पुनरोक्ति दोष नहीं ॥

लने वाला पुत्र उत्पन्न होता है जो सूर्योदय में घण्टा बजा के आजीवका के अर्थ राजा आदि की निरन्तर प्रशंसा करता है ॥ १३

मूल- निषादो मार्गवं सूते दासं नौ कर्म जीविनम् ।
केवर्त्त मितियं प्राहुरार्यावर्त्त निवासिनः ॥ १४

अर्थ - निषाद से आयोगव की स्त्री में नौका की जीविका करने वाला मार्गव नामक पुत्र उत्पन्न होता है जिस को आर्यावर्त्त निवासी कैवर्त्त (मल्लाह) कहते हैं ॥ १४

मूल- संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृ प्रदर्शिताः ।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥ १५

अर्थ - माता पिता के भेद से जो वर्णसंकर दिखाये हैं वे गुप्त हों अथवा प्रत्यक्ष अपने अपने कर्मों से जानने योग्य हैं ॥ १५ *

मूल- शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मण दर्शने न च ॥ १६

अर्थ - क्रिया के लोप से तथा ब्राह्मणों के अदर्शन (न देखकर पठनादि रहित होने) से क्षत्रिय धीरे धीरे शूद्र भाव को प्राप्त होता है ॥ १६ *

मूल- मुख बाहू रुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छ वाच आर्य वाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ १७

अर्थ - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन की क्रिया के लोपसे

१५- मनु जी कहते हैं वर्णसंकरों की असंख्य जाति हैं किन्तु दो जाति से उत्पन्न को वर्णसंकर कहते हैं उनसे अन्य इसी प्रकार अनेक जाति हो गयीं जिन (वर्ण संकरों) को उन के कर्मों से जान लो ॥

१६- क्रिया (सन्ध्योपासनादि) का लोप न करना और धर्म

उत्पन्न हुई जो वाह्य जाति अर्थात् वर्णसंकर वे आर्य भाषायुक्त हों अथवा म्लेच्छ भाषा युक्त हों सब दस्यु कहाते हैं ॥ १७ ॥

मूल- वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥ १८

अर्थ - चारों वर्णों से भिन्न पूर्वोक्त वर्ण संकरों में से कोई पुरुष अविज्ञात (छिपा हुआ) अनार्य (नीच) आर्य वत बन (यज्ञोपवीतादि धारण) कर के रहे तो उसकी परीक्षा उसके कर्मों से करनी चाहिये ॥ १८

मूल- अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ १९

अर्थ - अनार्यता (नीचता) कठोर वचन बोलना जीवों की हिंसा करना वेदोक्त कर्मों का न करना इन लक्षणों से वर्ण संकर पुरुष की परीक्षा होती है ॥ १९

मूल- पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ २०

अर्थ - पिता के वा माता के अथवा दोनों के स्वभाव से युक्त पुत्र होता है अतएव वर्णसंकर योनि से उत्पन्न पुरुष कभी वर्णसंकरता को नहीं छुपा सक्ता है ॥ २०

मूल- अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ २१

शास्त्र को देखते रहना नहीं तो शूद्र बनना पड़ेगा ॥

१७ - दस्यु, चोर, बधिक, डाकुओं को कहते हैं सो कदापि न बनना चाहिये किन्तु धर्मशास्त्र के अनुसार अपने अपने कर्मों को प्रीति पूर्वक पालन कर चारों वर्णों में ही रहना चाहिये ॥

अर्थ- अहिंसा (प्राणि मात्र पर दया), सत्य (सत्य बोलना सत्यका ही ग्रहण तथा पक्ष करना), अस्तेय (चोरी विश्वास घात आदि अन्याय से द्रव्योपार्जन का त्याग), शौच पवित्रता (भीतर राग द्वेषका त्याग बाहर जल मृत्तिका से शरीर की शुद्धि) और विषयों से इन्द्रियों का रोकना ये धर्म संक्षेप से चारों वर्णों को मनु जीने कहे हैं ॥ २१

मूल- सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेनच ।
त्र्यहेण शूद्री भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयात् ॥ २२

अर्थ- ब्राह्मण मांस, लाख, लवण बेचने से शीघ्र ही पतित होता है और दूध बेचने से तीन दिन में शूद्र होता है ॥ २२

मूल- इतरेषां तु पण्यानां विक्रया दिह कामतः ।
ब्राह्मणः सप्त रात्रेण वैश्य भावं नियच्छति ॥ २३

अर्थ- जो ब्राह्मण पूर्वोक्त (लवणादि) से भिन्न पदार्थों को इच्छा से बेचता है सो सात दिवस में वैश्यत्व (वैश्य भाव) को प्राप्त होता है ॥ २३

मूल- वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥ २४

अर्थ- गुण रहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है पर धर्म सम्पूर्ण गुण सम्पन्न भी श्रेयस्कर नहीं है क्योंकि परधर्म से जीविका करने वाला शीघ्र ही अपनी जाति से पतित होता है अतः स्वधर्म का ही अनुष्ठान करे ॥ २४

मूल- वैश्यो ऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्र वृत्यापि वर्तयेत् ।
अनाचरन्न कार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान् ॥ २५

अर्थ- वैश्य अपनी जीविका से निर्वाह न कर सके तो अकर्तव्य कार्यों को त्याग शूद्रवृत्ति से जीवन करे और आपत्ति काल के निवृत्त होने पर धीरे धीरे शूद्र वृत्ति को भी त्याग दे ॥ २५

मूल - अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्त्तुं द्विजन्मनाम् ।
पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुक कर्मभिः ॥ २६

अर्थ - यदि शूद्र द्विजातियों की सेवा से निर्बाह न कर सके तो सूप कारादिकों के कर्म्म से अर्थात् रसोई आदि बनाने से कुटुम्ब का पालन करे ॥ २६

मूल - यथा यथाहि सद्वृत्त मातिष्ठत्य नसूयकः ।
तथा तथेमं चामुंचलोकं प्राप्नोत्य निन्दितः ॥ २७

अर्थ - परगुणों में दोषारोपण न करने वाला शूद्र जैसे जैसे सज्जनों के आचार करता है तैसे तैसे इस लोक में प्रशंसा (बड़ाई) को प्राप्त होता है और परलोक में स्वर्ग को पाता है ॥ २७ ॥

इति दशमो ऽध्यायः

२७ - निन्दा रहित पवित्रता सहित शूद्र पर्यन्त को भी श्रेष्ठ आचरण सम्पादन करना धर्मशास्त्र में कहा है फिर क्या कारण है कि बर्त्तमान में चारों वर्ण वेदमत को आश्रय कर फूट का तिरस्कार कर एकता से स्वदेश को पूर्ववत सर्व का मुकटमणि नहीं बनाते किन्तु और भी विशेष दुर्दशा की आशा है जो देश हितैषियों की दुन्दुभी (नक्कारे की) घोर को भी कर्णगोचर नहीं होने देते ॥

इति दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशो ऽध्यायः

मूल- सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १
नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् ।
निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २

अर्थ- (१) ब्रह्मचर्य से वेदादि पढ़ कर विवाह की इच्छा वाला (२) ज्योति ष्टोमादि यज्ञ करने की इच्छा वाला (३) मार्ग चलने वाला (४) सर्वस्व दक्षिणा वाली विस्वजित नामक इष्टि (यज्ञ) करने वाला (५) वेदादि पढ़ गुरू को दक्षिणा देने वाला (६) मातापिता की सेवा करने की इच्छा वाला (७) अपने अध्ययन समय भोजन बस्त्रादि की इच्छा वाला (८) रोगी इननौ (९) ब्राह्मणों को धर्म से भिक्षा करने वाले स्नातक जानो इन निर्धन ब्राह्मणों को विद्या के अनुरूप (यथायोग्य) गो सुवर्णादि का दान दे ॥ १ । २ १

मूल- धनानितु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ३

अर्थ- जो दाता वेदावित् (वेद के जानने वाले) कुटुम्बी ब्राह्मण को यथाशक्ति (गौ, सुवर्ण, धनादि का) दान देता है सो दाता स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ३ १

मूल- शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
मध्वापातो विषास्वादः सधर्मप्रतिरूपकः ॥ ४

२-३- ये दान पात्र हैं इन को दान देने वाले इस लोक में अमित सुख और यश तथा परलोक में स्वर्ग (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं अतएव इन ही को देना उचित है इन के विरुद्ध को दान देना धन को नष्ट कर अपने लिये नर्क का मार्ग बनाना है ॥

अर्थ - जो मनुष्य समर्थ हो के स्वजन (माता पितादि) को दुःख (अन्न वस्त्रादि के संकुचित हो कष्ट) से निर्वाह कराने पर यश के लिये अन्य मनुष्यों को दान देता है उसका दान धर्म का प्रति रूप (आदि में किञ्चित यश परिणाम में उसका फल अनिष्ट दायक) है अर्थात् पाप रूप हो के नरक दायक है अतएव ऐसा न करे ॥ ४ ᳵ

मूल - भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥ ५

अर्थ - जो पुरुष स्त्री पुत्रादि को दुःख देकर धर्म बुद्धि से परलोक के लिये दान करता है उस (दाता) को जीवते तथा मरे उस दान का परिणाम (फल) दुःखोत्पादक होता है अर्थात वह दाता इस लोक में अपयश का पात्र हो मर कर नरक में जाता है ॥ ५

मूल - यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ ६

अर्थ - जिन मनुष्यों का यज्ञ करने का स्वभाव हो उन के धन को विद्वान् देवधन (दिव्य वेदादि विद्या युक्त पुरुषों का धन) कहते हैं क्योंकि यज्ञादि धर्म क्रिया में लगता है और यज्ञ न करने वालों के धन को आसुर (निन्दित) धन कहते हैं क्योंकि यज्ञादि में न लगने से निष्फल है ॥ ६

मूल - अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः ।
चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्या समं हि तत् ॥ ७

४ - इस (धर्म शास्त्र की आज्ञा) पर उन्हें विशेष ध्यान देना चाहिये जो विवाह आदि में अति व्यय (फ़िज़ूल खर्च) से धन रहित ऋणी हो दरिद्रता को ग्रहण कर भारत को आरत करने में दृढ़ कटि बद्ध हैं ॥

अर्थ - अग्नि होत्री ब्राह्मण सायं काल प्रातः काल यदि इच्छा से अग्नि होत्र न करे तो इस पाप के निवारणार्थ एक मास चान्द्रायण व्रत करे क्योंकि यह पाप (होम का त्याग) पुत्रहत्या के समान है ॥ ७ ७

मूल- ये शूद्राद् धि गम्यार्थ मग्निहोत्रमुपासते ।
ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥ ८

अर्थ- जो शूद्र से धन ले के अग्नि होत्र करते हैं वे शूद्रों के ऋत्विज (याजक) कहाते हैं अर्थात् उन को अग्निहोत्र का फल नहीं मिलता और वे वेद वेत्ताओं में निन्दित कहाते हैं ॥ ८

मूल- तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ।
पदा मस्तक माक्रम्य दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥ ९

अर्थ- शूद्र से द्रव्य ले अग्नि होत्र करने वाले मूर्खों के मस्तक पर चरण रख के दाता (शूद्र उस दान के प्रताप से) परलोक में दुर्गों (दुखों) को तरता है और उन अग्नि होत्रियों को कुछ फल नहीं होता ॥ ९

मूल - अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥ १०

अर्थ- विहित (सन्ध्योपासनादि) कर्मों के न करने से और निन्दित कर्मों के करने से तथा इन्द्रियों के विषयों में अति प्रसङ्ग से म-

७ - अग्नि होत्र के त्याग का पाप पुत्रहत्या के समान वेदज्ञ महर्षि मनु ने वेद के अनुकूल धर्म शास्त्र में कहा तथाच श्रुतिः "वीरहा वा एष देवानाम्भवति योऽग्नि मुद्वासयते" इत्यादि और अग्नि होत्र करने का फल तृतीय अध्याय (देखना हो तो श्लोक ४२) में प्रकाशित है किन्तु सम्पूर्ण जगत का रक्षण वृष्टि द्वारा हवन ही से होता है अतएव सर्वोपकारक हवन को त्याग के पुत्र हत्या-

नुष्य प्रायश्चित्त करने के योग्य होता है ॥ १०

मूल- अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति ।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥ ११

अर्थ - बिना इच्छा से किया पाप वेद के पाठ करने से छूट जाता है और मोह के बश हो इच्छा से किया पाप अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त करने से छूटता है ॥ ११

मूल- इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ १२
सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् ।
ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ १३
पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् ।
धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरैक्यं तु मिश्रकः ॥ १४
अन्नहर्ता मयावित्वं मौक्यं वागपहारकः ।
वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पङ्गुतामश्वहारकः ॥ १५
एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः ।
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ १६

अर्थ - दुष्टस्वभाव वाले कितने ही पुरुष तो इस (वर्त्तमान) जन्म में किये निन्दित आचरणों से और कितने पूर्वजन्म में किये निन्दित आचरणों से विपरीत (विकृत) रूप को प्राप्त होते हैं यथा सुवर्ण चुराने वाले के खोटे नख, मद्य पीने वाले के काले दांत, ब्रह्महत्या करने वाले के क्षयी रोग, गुरुपत्नी से गमन करने वाले का दुश्चर्म (कुष्टभेद), चुग़ल की नासिका में, मिथ्या दोष के कहने वाले के मुख में दुर्गन्धि, धान्य चुराने वाले के हीन अङ्ग, धान्य में मेल

का पातक कभी न लेना चाहिये ॥

करने वाले के अधिक अङ्ग होते हैं, अन्न चुराने वाला रोगी, वाणी चुराने वाला (मिथ्या वादी तथा छल से पढ़ने वाला) मूक (गूंगा) वस्त्र चुराने वाला कुष्ठी, अश्व (घोड़ा) चुराने वाला पङ्गु (लंगड़ा) होता है इस प्रकार पूर्व सञ्चित पातकों के भेद से विकृतस्वरूप तथा सज्जनों में निन्दित जड़ (मूर्ख) मूक, अन्ध, बधिर, उत्पन्न होते हैं ॥ १२। १३। १४। १५। १६ *

मूल - ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥ १७

अर्थ - ब्रह्म हत्या, मद्यपान, सुवर्ण का चुराना, गुरुपत्नी से गमन करना, ये चार महा पातक हैं इन (महापातकियों) का संसर्ग करना, पञ्चम महा पातक है ॥ १७

मूल - अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बंधः समानि ब्रह्महत्यया ॥ १८

अर्थ - अपनी उन्नति के अर्थ मिथ्या बोलना, राजा के समीप किसी की चुगली करना, गुरु (सत् उपदेशक) को मिथ्या दोष लगाना, ये सब ब्रह्म हत्या के समान हैं ॥ १८

मूल - ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापान समानि षट् ॥ १९

अर्थ - वेद को पढ़ के बिना अभ्यास के भूल जाना, असत् शास्त्रों (स्वार्थी कृत आधुनिक ग्रन्थों) के आश्रयण से वेद की निन्दा करना, मिथ्या साक्षी (झूंठी गवाही) देना, मित्र का बध करना,

---

*१२ से १६ तक - ये पूर्वजन्म कृत पातकों के लक्षण हैं किन्तु जो जिसमें लक्षण हों उसे वैसा ही पूर्वजन्म का पातकी जान कर वर्त्तमान में सब पापों से बचना चाहिये ॥

त्याज्य (लशुनादि) का तथा अमेध्य वस्तु का भोजन करना, ये छः (६) मद्यपान के समान हैं ॥ १९ ॥

मूल- निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्यच ।
भूमिवज्रमणीनांच रुक्मस्तेयसमंस्मृतम् ॥ २०

अर्थ- किसी के निक्षेप (जो विश्वास से अपना धन रख जाउस) का हरण, मनुष्य, घोड़ा, चान्दी, पृथिवी, हीरा, मणि, इन की चोरी सुवर्ण चोरी के समान है ॥ २०

मूल- रेतःसेकःस्वयोनीषुकुमारीष्वन्त्यजासुच ।
सख्युःपुत्रस्यचस्त्रीषु गुरुतल्पसमंविदुः ॥ २१

अर्थ - सहोदर भगिनी (बहिन), कन्या, चाण्डाली, मित्र की स्त्री, पुत्र की स्त्री, इन से गमन करना गुरुपत्नी गमन के समान है ॥ २१

मूल- गोवधोऽयाज्यसंयाज्य पारदार्यात्मविक्रयाः ।
गुरुमातृपितृत्यागःस्वाध्यायाग्न्योःसुतस्यच ।२२

१९- वेदनिन्दा - अमुक स्तोत्र के पाठ का इतना फल है कि वेद प्रतिपाद्य ज्योतिष्टोमादि यज्ञों का फल तो तिसके सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं होता यथा "अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानिच" इत्यादि हिन्दी में भी लीजिये "वेद पुराण की गम्य नहीं जहां कबीरा खेलत है" इत्यादि बहुत हैं कहां तक लिखूं वेदमतावलम्बियों में अग्रणीय होने के अभिमानी भी प्रायः वेद निन्दक ग्रन्थों के (परस्पर विरोधी तथा असम्भव) वाक्यों को वेद दरशाते हैं यह सब वेद निन्दा ही है जिसको मनुजी मद्यपान (महापातक) के समान कहते हैं जिस की निवृत्ति (प्रायश्चित्त) मर के ही है अक्षित तन (जीते जी) नहीं यह आगे कहेंगे ॥

व्रात्यता बान्धव त्यागो भृत्याध्यापनमेवच ।
भृताच्चा ध्ययनादान मपण्यानांच विक्रया ॥ २३

अनाहिताग्निता स्तेय मृणानामन पक्रिया ।
असच्छास्त्राधि गमनं कौशील्यव्यस्यचक्रिया ॥ २४

धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्री निषेवणाम् ।
स्त्रीशूद्र विट् क्षत्रवधो नास्तिक्यंचोपपातकम् ॥ २५

अर्थ- गौ की हिंसा, अनधिकारी को यज्ञ कराना, परस्त्री गमन, आत्मा का विक्रय (बेचना), गुरु, माता, पिता की सेवा, सदा ब्रह्म यज्ञ (वेदाभ्यास) अग्नि, पुत्र, इन सब का त्याग, समय पर यज्ञोपवीत संस्कार न करना, बान्धवों के अनुकूल न रहना, वेतन (नौकरी) ले के पढ़ाना तथा दे के पढ़ना, बेचने के अयोग्य वस्तुओं को बेचना, अधिकार होने पर हवन न करना, चोरी करना, देव, ऋषि, पितृ इन तीनों ऋणों की निवृत्ति न करना, वेद, धर्मशास्त्र से विरुद्ध विद्या (इस्क तथा मद्य मांस विधायिक) का पढ़ना, नाचना, गाना, बजाना, धान्य, पशु, तामा, लोहादि चुराना, मद्य पीने वाली स्त्री से गमन, स्त्री, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय का वध, नास्तिकता (परलोक तथा ईश्वर को न मानना) ये पूर्वोक्त एक एक उपपातक हैं ॥ २२। २३। २४। २५ ॥

मूल- ब्रह्महा द्वादशसमाः कुटीं कृत्वा वनेवसेत् ।
भैक्षाश्यात्म विशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥ २६

अर्थ— ब्रह्म हत्या की निवृत्ति के लिये उस मृतक ब्राह्मण के शिर-

२२ से २५ तक — माता, पिता, गुर्वादि की सेवा का त्याग, वेद न पढ़ना, इत्यादि उपपातक हैं किन्तु सुख की इच्छा वाले इन श्लोकों को देख इन पातकों से बचे रहें क्योंकि पातकों का फल दुःख ही है

(कपाल) को धारण कर भिक्षा भोजन से बारह वर्ष तक बन में कुटी बना के व्रत करे ॥ २६

मूल- ब्राह्मणार्थे गवार्थेवा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्यच ॥ २७

ग्रर्थ - ब्राह्मण, गौ, की रक्षा से तथा इन की रक्षार्थ प्राण त्यागने से भी ब्रह्महत्या से छूटता है ॥ २७

मूल- तेषां वेदविदोब्रूयुस्त्रयोऽप्येनः सुनिष्कृतिम् ।
सा तेषां पावनायस्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ॥ २८

ग्रर्थ - वेदवेत्ता (साङ्ग वेद के जानने वाले) तीन ब्राह्मण भी (किसी पाप के निवारणार्थ) जिस प्रायश्चित्त को कहें वही पाप से छुड़ा के पवित्र करता है क्योंकि विद्वानों की वाणी पवित्र है ॥ २८

मूल- उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा ।
ग्रपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥ २९

ग्रर्थ- मिथ्या साक्ष्य (गवाही) देने में, गुरू को मिथ्या दोष लगाने में, धरोहर को पचा जाने में, स्त्री, मित्र के वध में ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करे ॥ २९

मूल- सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्विषात्ततः ॥ ३०
गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ।
पयो घृतं वा मरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥ ३१

ग्रर्थ - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मोह के वश मद्य पान करे तो ग्रग्नि वर्ण (ग्रग्नि के सदृश उष्ण) मद्य को पीवे जिसके पीने से शरीर दग्ध हो कर तिस (मद्य पीने के) पाप से छूटता है ग्रथवा-

सुख नहीं ॥

गोमूत्र, जल, गौ का दूध, घृत, गोवर, का रस इन में से किसीएक को अग्नि के समान उष्ण (गरम) करके मरण पर्यन्त पीवे ॥ ३०।३१॥

मूल- सुरावै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ ३२

अर्थ- निश्चय मद्य अन्नों का मल है मल नाम पाप का है अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मद्य पान कदापि न करें ॥ ३२

मूल- गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ ३३

अर्थ- गौडी, पैष्टी, मध्वी, तीन प्रकार की मदिरा होती है जैसी, एक है वैसी (मादिक वस्तु) सब हैं इससे किसी प्रकार की मद्य ब्राह्मणादि वर्ण पान न करें ॥ ३३

मूल- अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत् ।
अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ ३४

अर्थ- मद्य पान से मतवाला हो ब्राह्मण अमेध्य (अपवित्र) स्थान में गिरेगा वा वेद मन्त्रों को उच्चारण करेगा अथवा अकर्तव्य (ब्रह्म हत्यादि) कर्मों को करेगा अतएव मद्य पान न करना चाहिये ॥ ३४

३० - ३१- इन श्लोकों को देख भारत वासियों को सचेत होना चाहिये किन्तु जिस मद्य पान के पाप से निवृत्त होने का प्रायश्चित्त प्राणान्त कष्ट दायक है जीवते छूटता ही नहीं और बिना प्रायश्चित्त किये नरक भोगना पड़ता है यह धर्म शास्त्र की आज्ञा है अतएव ऐसे निन्दनीय मद्य का पान (पाश्चिमीय विद्या का आश्रय ले) कदापि न करना चाहिये इतना ही नहीं छूने का भी निषेध है ॥

मूल- यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येना प्लाव्यते सकृत ।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ ३५

अर्थ- जिस ब्राह्मण के शरीर में स्थित वेद एक बार भी मद्य से डुबाया जा अर्थात् जो एक बार भी मद्य पान करता है उस का ब्राह्मणत्व नष्ट हो शूद्र भाव को प्राप्त होता है ॥ ३५

मूल- तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्म हणो व्रतम् ॥ ३६

अर्थ - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तप से सुवर्ण चोरी के पाप को दूर किया चाहें तो चीर (जीर्ण) वस्त्र धारण कर ब्रह्म हत्या का व्रत करें ॥ ३६

मूल- गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये ।
सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्ध्यति ॥ ३७

अर्थ- गुरुपत्नी से गमन करने वाला अपने पाप को विख्यात कर तप्त लोहे की शय्या पर सोवें और लोहे की प्रज्वलित (अग्निवर्ण) स्त्री का आलिङ्गन कर प्राण त्यागने से शुद्ध होता है ॥ ३७

मूल- उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ ३८

अर्थ - गौ के मारने वाला उपपातकी एक मास तक जव (जौ का दलिया) पीवे और शिखा, श्मश्रु (चुटिया, मूछ) सहित केशों को मुण्डन करा गोचर्म को धारण कर गोशाला में निवास करे ॥ ३८

मूल- तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥ ३९

अर्थ - क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन को धर्म विषे जानकर वध करने

में क्रम से ब्रह्म हत्या का चतुर्थांश (तीन बर्ष) अष्टमांश (डेढ़ बर्ष) षोडशांश (नौ मास) ब्रत करें ॥ ३९

मूल- अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ ४०

अर्थ- ब्राह्मण बिना इच्छा क्षत्रिय का बध करे तो एक वृषभ (बैल) तथा सहस्र (हजार) गौ अपनी शुद्धि के अर्थ दान करे ॥ ४०

मूल- एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥ ४१

अर्थ- अज्ञान से वैश्य के मारने वाला ब्राह्मण एक बर्ष तक ब्रह्म हत्या का ब्रत करे अथवा एक सौ एक (१०१) गोदान करे ॥ ४१

मूल- एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासाञ्छूद्रहा चरेत् ।
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥ ४२

अर्थ- अज्ञान से शूद्र का बध करने वाला ब्राह्मण छः मास तक ब्रह्महत्या के ब्रत को करे अथवा श्वेत वर्ण की दश गौ तथा एक वृषभ का दान करे ॥ ४२

मूल- फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ।
गुल्मवल्लीलतानाञ्च पुष्पितानाञ्च वीरुधाम् ॥ ४३

अर्थ- फल देने वाले वृक्ष, तथा गुल्म, वल्ली, लता, पुष्पित वीरुध् (विस्तृत लता) इनमें से किसी के छेदन में शत ऋचा (सौ बार गायत्री आदि किसी वैदिक मन्त्र) का जप करना चाहिये। ४३

मूल- अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानाञ्च सर्वशः ।
फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ ४४

अर्थ- अन्नादि से उत्पन्न, रसादि से उत्पन्न, फल पुष्पादि से उत्पन्न जीवों के बध में घृतप्राशन (पान) करने से शुद्ध होता है ॥ ४४

मूल- कृष्टजानामोषधीनां जातानांच स्वयं बने ।
वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥ ४५

अर्थ - कृषि (खेती) से उत्पन्न धान्य तथा स्वयं (अपने आप) बन में उत्पन्न को निष्प्रयोजन छेदन करे तो एक दिन दूध का आहार कर गो के पीछे गमन करे अर्थात गो की सेवा करे ॥ ४५

मूल- अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥ ४६

अर्थ - अज्ञान से (विना जाने) मद्य पान करे तो पुनः संस्कार करने से शुद्ध होता है और ज्ञान से करे तो (पूर्वोक्त तप्त मद्य दुग्धादि से) शरीर त्याग करने से शुद्ध होता है ॥ ४६

मूल- स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥ ४७

अर्थ - मद्य का स्पर्श कर, वा दान दे, अथवा विधि पूर्वक दान ले, शूद्र का उच्छिष्ट (झूठा) जल पीवे तो कुशा औटाय के तीन दिन पीने से शुद्ध होता है ॥ ४७

मूल- अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ४८

अर्थ - तीनों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अज्ञान से मल, मूत्र, मद्य से स्पर्श हुए पदार्थ का प्राशन (भोजन) करें तो पुनः संस्कार (यज्ञोपवीत) करने से शुद्ध होते हैं ॥ ४८

मूल- चण्डालान्त्यास्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥ ४९

अर्थ - जो ब्राह्मण अज्ञान से चाण्डाल तथा अन्त्यज की स्त्री से गमन करे वा उनका अन्न भोजन करे अथवा उन से प्रतिग्रह (दान) ले सो पतित होता है और ज्ञान के करे तो उन के सदृश-

ही हो जाता है ॥ ४९ ॥

मूल- विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्त्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि ।
यत्पुंसाः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥ ५०
साचेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयान्त्रिता ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ५१

अर्थ- भर्त्ता व्यभिचारिणी स्त्री को एक स्थान में रोक रक्खे और जो व्रत पुरुष को परस्त्री गमन में है सो ही व्रत उसे करावे वह (प्रायश्चित्त से शुद्ध हुई स्त्री) पुनः प्रार्थना करने वाले सजातीय पुरुष से गमन करे तो कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत कर शुद्ध होती है ॥ ५०।५१

मूल- यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः ।
तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ ५२

अर्थ- जो द्विज को एक रात्रि चाण्डाली गमन करने में पातक होता है सो भिक्षा के भोजन से तथा तीन बर्ष तक नित्य गायत्री जपने से निवृत्त होता है ॥ ५२ ॥

मूल- संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
याजनाध्यापनाद्यौनान्नतु यानासनाशनात् ॥ ५३

अर्थ- पतितों के साथ सवारी, भोजन, आसन, आदि का संसर्ग

४९- इसको देख ब्राह्मणत्व की रक्षा करना चाहिये किन्तु परस्त्री गमन तथा नीच का प्रतिग्रह (दान) इनका त्याग कर वेदाध्ययन में प्रीति करना चाहिये नहीं तो शूद्र होने में क्या संशय है यह मनु जी कहते हैं ॥

५२- एक रात्रि परस्त्री गमन में तीन बर्ष प्रायश्चित्त करना धर्मशास्त्र की आज्ञा है अतएव ऐसे पापोत्पादक कर्म से सचेत रहना मनुष्यों में मनुष्यत्व है नहीं तो पशु और मनुष्य में अन्तर-

करने से एक बर्ष में पतित हो जाता है और उन को यज्ञ विद्याध्ययन कराने से तथा उन के साथ विवाह सम्बन्ध करने से तत्काल ही पतित होता है ॥ ५३

मूल- योयेन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।
सतस्यैव व्रतंकुर्यात्तत्संसर्ग विशुद्धये ॥ ५४

अर्थ- जो पुरुष जिस पतित से संसर्ग (सम्बन्ध) करता है सो उसी पतित के प्रायश्चित्त को कर संसर्ग जन्य पातक से निवृत्त होता है ॥ ५४

मूल- एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किञ्चित्सहाचरेत् ।
कृतनिर्णेजनांश्चैव नजुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ ५५

अर्थ- बिना प्रायश्चित्त किये पातकियों से (दान प्रतिग्रहादि) कोई व्यवहार न करे और प्रायश्चित किये पीछे निन्दा भी न करे ॥ ५५

मूल- बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ।
शरणागत हन्तॄंश्च स्त्री हन्तॄंश्च नसंवसेत् ॥ ५६

अर्थ- बालक को, शरणागत आये हुए को, स्त्री को मारने वाले तथा कृतघ्न (उपकार को न मानने वाला) ये सब शास्त्र रीति से प्रायश्चित्त कर ले तो भी इनका संसर्ग न करे ॥ ५६ ॥

ही क्या ॥

५६- ये कैसे निन्दनीय कर्म हैं जिन का प्रायश्चित्त करने से भी श्रेष्ठों का संग करने योग्य मनुष्य नहीं होता अतएव इनसे अवश्य बचना चाहिये किन्तु किसी का ऋण उतारने का भी उपकार (एहसान) न भूलना चाहिये और सरणागत को अभय करना तथा स्त्री बालक की रक्षा करना चाहिये ॥

मूल - येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि ।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥ ५७

अर्थ - जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को यथा विधि सावित्री का उपदेश (शास्त्रोक्त समय पर यज्ञोपवीत) न हुआ हो उनको तीन कृच्छ्र (प्राजापत्य) व्रत करा के यज्ञोपवीत करावें ॥ ५७

मूल - प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ।
ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥ ५८

अर्थ - जो द्विज निन्दित (वेद, शास्त्र विरुद्ध) कर्म के करनेवाले वेदाध्ययन से रहित प्रायश्चित्त करना चाहें तो उन्हें भी तीन कृच्छ्र (प्राजापत्य व्रत) का उपदेश करे ॥ ५८ *

मूल - यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ।
तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥ ५९

अर्थ - जो ब्राह्मण निन्दित कर्म से धन सञ्चय (इकट्ठा) करते हैं वे उस धन के त्यागने से तथा जप, तप से शुद्ध होते हैं ॥ ५९

मूल - जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥ ६०

अर्थ - एकाग्र चित्त हो एक मास पर्यन्त दुग्ध पान कर गोशाला में निवास कर तीन सहस्र गायत्री का नित्य जप करे तब असत्प्रतिग्रह (निन्दित दान लेने) के पाप से ब्राह्मण छूटता है ॥ ६०

---

५८ - देखो वेद विरोधी नवीन मतों में फस कैसा कठिन व्रत (जिसकी विधि आगे कहेंगे) करना पड़ेगा नहीं तो नरक होगा यह मनु जी कहते हैं इसलिये वेद तथा वेदानुकूल धर्मशास्त्र के अनुसार कर्मों का अनुष्ठान करें वेद प्रतिकूल परस्पर विरोधी मतों से प्रायश्चित्तीय होता है उन को तिलाञ्जली दे भारत वर्ष में-

मूल- वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।
स्नातक व्रतलोपे च प्रायश्चित्त मभोजनम् ॥ ६१

अर्थ - वेद विहित नित्य कर्म (अग्निहोत्रादि) का तथा पूर्वोक्त स्नातक (ब्रह्मचर्य) व्रत का अतिक्रम (लोप) होजाय तो एक दिवस उपवास करे ॥ ६१

मूल- हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ।
स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेष मभिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ६२

अर्थ- ब्राह्मण को हूं ऐसा शब्द बड़ों (वय विद्यादि वृद्धों) को तू ऐसा शब्द कहे तो स्नान करके शेष दिवस उपवास कर अभिवादनादि सेवा से उन्हें प्रसन्न करे तब शुद्ध होता है ॥ ६२ ❀

मूल- त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यह मद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥ ६३

अर्थ- तीन दिन प्रातः काल में तीन दिन सायं काल में तीन दिन अयाचित अन्न का भोजन करना तीन दिन उपवास करना यह बारह दिन की विधि कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत की कही है ॥ ६३

मूल- गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ ६४

अर्थ- गोमूत्र, गोमय (गोबर) दुग्ध, दधि, घृत, कुशा का जल, ये क्रम से छः दिन पीवे सातवें दिन उपवास यह कृच्छ्र सान्तपन व्रत की विधि है ॥ ६४

एकता का प्रचार करना भारत वासियों का मुख्य धर्म है ॥

६२- बड़ों को तू कहने से प्रायश्चित्तनीय होता है इससे बड़ों को आप कह कर बोलना चाहिये छोटों से तुम कह कर बोले किन्तु तू ऐसा किसी से न कहे यह एक प्रकार की गाली है ॥

मूल- एकैकं ग्रास मश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहंचोप वसेदन्त्य मति कृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥ ६५

अर्थ- तीन दिन एक एक ग्रास प्रातःकाल तीन दिन सायंकाल तीन दिन बिन मांगे एक एक ग्रास भोजन करे और तीन दिन उपवास करे यह अति कृच्छ्र व्रत की बिधि है ॥ ६५

मूल- तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीर घृतानिलान् ।
प्रति त्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ ६६

अर्थ- एकाग्र चित्त हो स्नान कर तीन दिन गर्म जल, तीन दिन गर्म दूध, तीन दिन गर्म घृत, तीन दिन गर्म वायु का आहार करे यह तप्त कृच्छ्र व्रत की बिधि है ॥ ६६

मूल- यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाह मभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्व पापापनोदनः ॥ ६७

अर्थ- प्रमाद को त्याग के इन्द्रियों को जीत बारह दिन तक भोजन न करे यह पराक नामा कृच्छ्र व्रत है इसके करने से समस्त पापों का नाश होता है ॥ ६७

मूल- एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च बर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ६८

अर्थ- सायं, प्रातः, मध्यान्ह, इन तीनों काल में स्नान कर पौर्णमासी को पञ्चदश (१५) ग्रास भोजन कर कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन एक एक घटावे अमावास्या को उपवास कर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से एक एक क्रम से बढ़ावे एवम्पौर्णमासी को पञ्चदश (१५) ग्रास हो जाते हैं यह पिपीलिका मध्य चान्द्रायण ब्रत है ॥ ६८

मूल- एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ।
शुक्लपक्षादि नियतश्चरंश्चान्द्रायणं ब्रतम् ॥ ६९

अर्थ- इसी प्रकार यवमध्य चान्द्रायण है किन्तु अमावास्या से प्रारम्भ कर शुक्लपक्ष में घटावे पौर्णमासी को उपवास कर कृष्ण पक्ष में बढ़ावे एवं अमावास्या को पुनः पञ्चदश (१५) ग्रास होते हैं यह यव मध्य चान्द्रायण व्रत है ॥ ६९

मूल- अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यं दिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥७०

अर्थ- यति चान्द्रायण व्रत में जितेन्द्रिय हो एक मास तक हविष्य अन्न के आठ आठ ग्रास का मध्यान्ह काल में भोजन करे ॥ ७०

मूल- चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥७१

अर्थ- एकाग्र चित्त हो चार ग्रास प्रातः काल चार ग्रास सायं काल एक मास तक भोजन करे यह शिशु (बाल) चान्द्रायण व्रत है ॥ ७१

मूल- यथा कथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः।
मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥७२

अर्थ- जो यथा कथञ्चित् एक मास में हविष्य अन्न के २४० ग्रास का भोजन करता है सो चन्द्रलोक को प्राप्त होता है ॥७२*

७२- पञ्च चान्द्रायण व्रतों में (जो एक मास में समाप्त होते हैं) २४० ग्रास एक मास में भोजन किये जाते हैं किन्तु पिपीलिका तथा यव चान्द्रायण में एक पक्षि में एक एक ग्रास घटाना दूसरे पक्षि में बढ़ाने से एक मास में २४० ही होते हैं और आठ ग्रास रोज़ से तथा चार चार दोनों समय वाले में भी एक मास में २४० ही होते हैं। और चार व्रत बारह बारह दिन-

मूल- महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्तव्यः स्वयमन्वहम् ।
अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवंच समाचरेत् ॥ ७३

अर्थ- महाव्याहृतियों से नित्य हवन करे और मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रोध, कुटिलता कभी न करे ॥ ७३

मूल- सावित्रींच जपेन्नित्यं पवित्राणिच शक्तितः ।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ॥ ७४

अर्थ- सब व्रतों में प्रायश्चित्तार्थ नित्य गायत्री तथा अन्य पवित्र (अघमर्षणादि) मन्त्रों का यथाशक्ति (यत्नमान् हो) जप करे ॥ ७४

मूल- एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः ।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ ७५

अर्थ- प्रकाशित पातकी द्विजातियों को पूर्वोक्त व्रतों से शुद्ध करना चाहिये और अप्रकाश (गुप्त पातकियों) को मन्त्र तथा हवन से शुद्ध करे ॥ ७५

मूल- ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेनच ।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥ ७६

अर्थ- पाप करने वाले अपने पाप को प्रकाश करने से, पश्चात्ताप से, तप से, वेद पढ़ने से, तथा गायत्री के जप से, आपत्ति काल में दान देने से पाप से छूट जाते हैं ॥ ७६

मूल- अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ।
तस्माद्विमुक्तिमान्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत् ॥ ७७

में पूरे होते हैं एक सात दिन में एवं दश व्रत धर्मशास्त्र में कहे हैं ये ही यथासक्ति मनुष्यों को करतव्य हैं अन्य (आधुनिक सहस्रों व्रत) वेद विरुद्ध होने से निष्फल हैं ॥

अर्थ- अज्ञान से वा ज्ञान से जो निन्दित कर्म बन जा उससे छूट ने की इच्छा करने वाला पुरुष पुनः उस कर्म को न करे ॥ ७७

मूल- तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम् ।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥ ७८

अर्थ- मनुष्य तथा देवताओं को जो कुछ सुख है उस का कारण तप ही है और तप ही से सुख का मध्य (स्थिति) तथा अन्त वेद वेत्ता विद्वानों ने कहा है अर्थात् तप है तो सुख है तप के अभाव से सुख का भी अभाव है ॥ ७८

मूल- ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ ७९

अर्थ- ज्ञान (वेद धर्मशास्त्र से लौकिक, पारमार्थिक तत्व को जानना) ब्राह्मण का तप है प्रजा की रक्षा करना क्षत्रिय का तप, कृषि (खेती) वाणिज्य आदि वैश्य का तप, द्विजों की सेवा करना शूद्र का तप है ॥ ७९ *

मूल- ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ८०

अर्थ- महर्षि पुरुष मन, वाणी, शरीर को वश कर, कन्दमूल, फल, वायु का भोजन कर, इस चराचर त्रैलोक्य को तप से ही देखते हैं ॥ ८०

मूल- औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितः ।
तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥ ८१

७९- देखिये धर्म शास्त्र के अनुसार चलना कैसा सुगम है कि अपने कर्म से आजीविका (रोजगार) करना भी तप है जिस (तप) करके सब पापों का नाश तथा सब सुख की प्रा-

अर्थ- औषधि, आरोग्य, वेद विद्या, नाना प्रकार की स्वर्गादि में स्थिति ये सब तप से ही सिद्ध (प्राप्त) होते हैं किन्तु इनकी प्राप्ति का कारण तप ही है ॥ ८१

मूल- यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ८२

अर्थ- जो दुस्तर (दुःख से तरने योग्य) दुर्लभ (दुःख से प्राप्त) दुर्गम, दुष्कर (दुःख से करने योग्य) सो तप से सिद्ध हो सक्ता है क्योंकि तप की शक्ति अलङ्घनीय है ॥ ८२

मूल- महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्विषात्ततः ॥ ८३

अर्थ - ब्रह्महत्यादि महा पातक तथा अन्य अकर्त्तव्य उपपातकों के करने वाले तप करके ही उन पापों से छूटते हैं ॥ ८३

मूल- वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ८४

अर्थ- वेद का नित्य प्रति यथाशक्ति पढ़ना, पञ्चमहा यज्ञ करना, क्षमा करना ये महापातक जनित पापों का भी शीघ्र नाश करते हैं ॥ ८४ ॥

ति महर्षि मनु ने आगे कही है ॥

८४ - वेद पढ़ना, हवन करना, गुरु माता पिता की सेवा, नलिवैश्व देव, अतिथि सत्कार, मनुष्य मात्र के हित का चिन्तन, इनके नित्य करने से महा पातक की निवृत्ति भी धर्मशास्त्र में कही है फिर किस कारण वर्त्तमान में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऐसे (अल्प क्रिया महा फलदायक) कर्मों से रुष्ट हो रहे हैं, क्या भारत की और भी दुर्दशा होनी है !

मूल- यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥ ८५

अर्थ- जैसे प्रज्वलित अग्नि समीपवर्त्ति काष्ठ को एक क्षण में भस्म करता है तैसे ही वेद के जानने वाला ज्ञान अग्नि से सब पापों को भस्म करता है ॥ ८५

मूल- यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति ।
तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥ ८६

अर्थ- जैसे अगाध जल सहित सरोवर में निक्षिप्त लोष्ट (गेरू मट्टी का ढेला) शीघ्र ही नष्ट होता है तैसे ही त्रिवृत वेद में (साङ्ग वेद जान्ने वाले के) समस्त पातक नष्ट होते हैं ॥ ८६

मूल- ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च ।
एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥ ८७

अर्थ- ऋग्मन्त्र, यजुमन्त्र, अनेक प्रकार के वृहत् रथन्तरादि साम मन्त्र इनको त्रिवृत वेद कहते हैं जो इस (त्रिवृत वेद) को जान्ता है सो ही वेदज्ञ है ॥ ८७

मूल- आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता ।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ८८

इति एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ- सब वेदों का आदि तथा सार भूत तीनों वेद स्थित हैं

८८- इस ओङ्कार की प्रशंसा तथा टीका समस्त वेदशास्त्र हैं अतएव इसको सब कार्यों में प्रथमारम्भ करना चाहिये यह समस्त वेद मन्त्रों में श्रेष्ठ मन्त्र परमेश्वर का नाम है अकार से विराट् अग्नि विश्वादि, उकार से हिरण्य गर्भ-

जिसमें और निवृत्त वेद गुप्त ऐसे तीन (अकार · उकार · मकार) अक्षर वाले प्रणव (ओंकार) को जो अर्थ सहित जानता है सो वेदज्ञ है ॥ ८८ ॥

वायु · तैजसादि · मकार से ईश्वर · आदित्य · प्राज्ञादि का वाचक और ग्राहक है इत्यादि अर्थ धारण कर जप करने से मोक्ष का हेतु है ॥

इतिएकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

मूल- चातुर्वर्णस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ।
कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तत्त्वतः पराम्॥ १

अर्थ- हे पाप रहित (निष्पक्ष) भृगु आपने ब्राह्मणादि चारों वर्णों के समस्त धर्म कहे अब जन्मान्तर में होनेवाली कर्मों की शुभाशुभ प्राप्ति को हमारे प्रति कहिये ॥ १

मूल- सतानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः।
अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम्॥ २

अर्थ- धर्मात्मा मनु के पुत्र भृगु उन महर्षियों प्रति बोले कि इस समस्त कर्मयोग के निर्णय (शुभाशुभ फलों के निश्चय) को सुनिये ॥ २

मूल- परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥ ३
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥ ४
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥ ५

अर्थ- मन से परधन ग्रहण का ध्यान, तथा अनिष्ट चिन्तन (पराये अशुभ की इच्छा) नास्तिकता (ईश्वर, पुनर्जन्म न मानना) ये तीन प्रकार के मानसिक कर्म हैं, कठोर बचन १ (मर्म भेदक वाक्य) बोलना, मिथ्या भाषण, परोक्ष में किसी के असत्य दोष प्रकाश करना, असम्बद्ध प्रलाप (निष्प्रयोजन बोलना) ये चार प्रकार के कर्म वाणी से होते हैं अन्याय-

से पराया धन लेना, अदण्डनीय को दण्ड तथा बध, परस्त्री का सेवन करना ये तीन शारीरक कर्म हैं एवं दश प्रकार के अशुभ फल दायक मन, वाणी, कायक कर्म हैं इन से विपरीत दश प्रकार के शुभ फल दायक हैं ॥ ३। ४। ५ ॥

मूल- वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैवच ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ ६
त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ।
कामक्रोधौतु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ७

अर्थ- वाणी, मन, काय (शरीर) इनका दण्ड जिसकी बुद्धि में स्थित हैं किन्तु असत्य भाषण, अनिष्ट चिन्तन, निन्दित व्यवहारों में जिनकी बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती सो त्रिदण्डी कहाते हैं इन तीन दण्डों को सब प्राणियोंमें (उपदेश द्वारा) स्थापित करने वाला मनुष्य काम क्रोध को जीतने से सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ६। ७

मूल - यद्याचरित धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः ।
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥ ८

अर्थ- जो जीव मनुष्य शरीर को प्राप्त हो धर्माचरण विशेष करे और अधर्म को अल्प करे अर्थात अज्ञान से अधर्म भी कोई हो जाय तो पञ्चभूतों से युक्त स्थूल शरीर से स्वर्ग सुख को भोगता है ॥ ८

५- शुभ फल दायक मन से शुभ कर्मों में प्रीति, मनुष्य मात्र का शुभ चिन्तन (देश भक्ति) ईश्वर का स्मरण, वाणी से मधुर कोमल प्रिय शब्द बोलना, सत्यभाषण, ईश्वर तथा विद्वानों की प्रशंसा, सार्थक वाक्यों (सदुपदेश तथा स्व प्रयोजनीय) का कथन, शरीर से इस लोक परलोक में शुभ फल दायक कर्मों का अनुष्ठान, पर रक्षा, अपनी स्त्री धनादि का भोग ये दश-

मूल- यदि तु प्रायशो ऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥ ९

अर्थ- यदि अधर्म को अधिक धर्म को अल्प करे तो मर के सो मनुष्य यमयातना के दुःख को भोगता है ॥ ९

मूल- वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकं गुणलक्षणम् ॥ १०

अर्थ- वेद पढ़ना - तप (स्वकर्म तथा प्राजापत्यादि व्रतों का) करना - ज्ञान (जो पदार्थ जैसा है वैसा ही जानना तथा ईश्वर को सर्वव्यापी जानना) - पवित्रता - इन्द्रियों का विषयों में रोकना धर्म (श्रुति स्मृति प्रतिपादित का) करना आत्म चिन्तन ये सत्व गुण के लक्षण हैं ॥ १०

मूल- आरम्भरुचिताधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ११

अर्थ- फल के अर्थ कर्मों के अनुष्ठान में प्रीति - अधैर्य (चञ्चलता) निन्दित कार्यों का ग्रहण - विषयों का निरन्तर सेवन ये रजोगुण के लक्षण हैं ॥ ११

मूल- लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ १२

अर्थ- लोभ - निद्रा - अधृति (व्याकुलता) क्रूरता - नास्तिकता भिन्न वृत्ति (निन्दित जीविका) याचना - प्रमाद ये तमोगुण के लक्षण हैं ॥ १२

मूल- तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ १३

शुभ फल दायक हैं ॥

अर्थ- काम में तत्पर रहना तमोगुण का , अर्थ (धन) में तत्पर रहना रजोगुण का , धर्म में तत्पर रहना सतोगुण का लक्षण है इनमें उत्तर उत्तर (तमोगुण से रजोगुण , रजोगुण से सत्वगुण) श्रेष्ठ है ॥ १३

मूल- देवत्वं सात्विकायान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्य मित्येषा त्रिविधा गतिः ॥ १४

अर्थ- सत्वगुणवृत्तिक देव भाव को , रजोगुण मनुष्य तथा तमोगुण वृत्तिक नित्य तिर्यग (सर्पादि) भाव को प्राप्त होते हैं ये तीन प्रकार की गति हैं ॥ १४

मूल- इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्या सेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारान विद्वांसो नराधमाः ॥ १५

अर्थ- विद्या शून्य (मूर्ख) मनुष्यों में नीच पुरुष विषयों में इन्द्रियों के अति प्रसङ्ग से तथा धर्म के त्यागने से निन्दित योनियों को प्राप्त होते हैं ॥ १५

मूल- बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ।
संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनास्त्विमान् ॥ १६

अर्थ- ब्रह्महत्यादि महापातकों के करने वाले बहुत वर्ष पर्यन्त घोर नरकों को भोग के इन (वक्ष्यमाण) योनियों को प्राप्त होते हैं ॥ १६

मूल- श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ।
चण्डालपुक्कसानांच ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥ १७

अर्थ- श्वान (कुत्ता) शूकर , गर्दभ , ऊंट , बैल , बकरा , भेड़ा , मृग , पक्षी , चाण्डाल , पुक्कश (निषाद से शूद्र स्त्री में उत्पन्न) इन योनियों को ब्रह्महत्या करने वाला प्राप्त होता है ॥ १७

मूल- कृमि कीट पतङ्गानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम्।
हिंस्राणां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत ॥ १८

अर्थ- कृमि, कीट, पतङ्ग, विष्टा भक्षण करने वाले पक्षी तथा हिंसक जीव की योनियों को मद्य पीने वाले प्राप्त होते हैं ॥ १८

मूल- लूताहि सरटानांच तिरश्चां चाम्बुचारिणाम्।
हिंस्राणांच पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ १९

अर्थ- मकड़ी, सर्प, करकैंटा, जल में रहने वाले तिर्यञ्च मकरादि, हिंसा करने वाले पिशाच, इन योनियों को सहस्रों बार सुवर्ण चुराने वाला ब्राह्मण प्राप्त होता है ॥ १९

मूल- तृणगुल्मलतानांच क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि।
क्रूर कर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ २०

अर्थ- तृण, गुल्म, लता, मांस भक्षण करने वाले गृद्ध सिंह आदि क्रूरकर्म (हिंसादि) करने वाले पशुओं की योनियों को गुरुपत्नी गमन करने वाला सैकड़ों बार प्राप्त होता है ॥ २०

मूल- मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ २१

अर्थ - मणि, मोती, मूंगा, नाना प्रकार के रत्न (हीरादि) को लोभ से चुराने वाला पुरुष स्वर्णकार (सुनार) की जाति में उत्पन्न होता है ॥ २१

मूल- धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥ २२

अर्थ- धान्य चुराने वाला आखू (मूसा) कांसा चुराने वाला हंस, जल चुराने वाला काक, रस चुराने वाला श्वान (कुत्ता) घृत चुराने वाला नकुल (नौला) होता है ॥ २२

मूल- यद्वा तद्वा परद्रव्य मपहृत्य बलान्नरः।
अवश्यंयाति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतंहविः॥२३

अर्थ- किसी पराई वस्तु को बलात्कार (ज़बर्दस्ती) हरण करने वाला तथा हवन बिना किये हविः (हवन योग्य पदार्थ) को भोजन करने वाला पुरुष निश्चय सर्पादि योनि को प्राप्त होता है॥२३

मूल- स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोष मवाप्नुयुः।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्व मुप यान्ति ताः॥२४

अर्थ- स्त्री जन भी इसी प्रकार इच्छा से पराये द्रव्य को चोर कर पाप को प्राप्त हो उस (पाप) के प्रभाव से पूर्वोक्त जीवों की स्त्री बनती है॥२४

मूल- स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्य श्च्युता वर्णा ह्यनापदि।
पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु॥२५

अर्थ- बिना आपत्ति के अपने अपने कर्म (पञ्च महा यज्ञादि तथा पठन पाठनादि) का त्याग करने वाले ब्राह्मणादि चारों वर्ण निन्दित योनियों को प्राप्त हो के जन्मान्तर में शत्रुओं के दास बनते हैं॥२५

मूल- वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः।
अमेध्यकुणपाशीच क्षत्रियः कटपूतनः॥२६

अर्थ- स्वधर्म (पठन पाठनादि) का त्याग करने वाला ब्राह्मण मर के वमन भोजन करने वाली ज्वालामुख नाम योनि में उत्पन्न होता है और क्षत्रिय विष्टा तथा शव (मुर्दा) का भोजन करने वाली कटपूतन नाम योनि में उत्पन्न होता है॥२६

२६-२७- इत्यादि श्लोकों को देख चारों वर्ण सचेत हो अपने अपने कर्म को प्रीति पूर्वक करें नहीं तो कैसे कष्ट भोगने पड़ेंगे

मूल- मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ।
चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥२७

अर्थ - स्वधर्म (वेद पठनादि तथा गोरक्षादि) से भ्रष्ट हुआ वैश्य पूय (पीव) का भोजन करने वाली मैत्राक्ष ज्योतिक नाम योनि में उत्पन्न होता है और शूद्र सेवा को त्याग के वस्त्र की यूक (जूंआं) का भोजन करने वाली योनि में उत्पन्न होता है।२७

मूल- तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः ।
संप्राप्नुवंति दुःखानि तासुतास्विह योनिषु ॥ २८

अर्थ- मन्दबुद्धि निन्दित कर्मों के अभ्यास से (तिन कर्मों के अनुसार उन उन) निन्दित योनियों में दुःखों को भोगते हैं।२८

मूल- संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः ।
शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानिच ॥ २९
असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्मच दारुणम् ।
बन्धनानिच कष्टानि परप्रेष्यत्वमेवच ॥ ३०
बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ।
द्रव्यार्जनंच नाशंच मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥३१
जरांचैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् ।
क्लेशांश्च विविधांस्तांतान्मृत्युमेवच दुर्जयम् ॥३२

अर्थ- अधिक दुःख दायक सर्पादि तिर्यग्योनियों में नित्यजन्म शीत, आतप, आहार, अनेक प्रकार के भय, बारम्बार गर्भ में निवास तथा जन्म से दारुण कष्ट, बन्धन क्लेश, शत्रुओं का दास होना, बान्धव तथा मित्रों का वियोग, दुष्टों के साथ सहवास, द्रव्य सञ्चय तथा नाश से क्लेश, कठिनता से मित्र-

लाभ, शत्रुओं का प्रादुर्भाव, नहीं है चिकित्सा जिस की ऐसी (असाध्य व्याधि का पात्र) वृद्धावस्था, रोगों करके पीड़ा, क्षुधा तृषादि नाना प्रकार के क्लेश, दुर्जय मृत्यु, इनको प्राप्त होते हैं॥ २९।३०।३१।३२

मूल- वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणाञ्च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवाच्च निःश्रेयसकरं परम्॥ ३३
सर्वेषामपि चैतेष शुभानामिह कर्मणाम्।
किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति॥ ३४
सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः॥ ३५

अर्थ- वेद का अभ्यास, तप, आत्मज्ञान, इन्द्रियों का जीतना प्राणिमात्र में दया, गुर्वादि की सेवा करना, ये छः कर्म मोक्ष के परम साधन (मुख्य कारण) हैं, इन सब वेदाभ्यासादि शुभ कर्मों के मध्य में किञ्चित् (कोई) कर्म पुरुष के प्रति अति श्रेय (अतिशय करके मोक्ष का साधन) है किन्तु पूर्वोक्त मोक्ष के साधनों में आत्मज्ञान सर्व विद्याओं में प्रधान होने से मुख्य (साक्षात् मोक्ष का कारण) कहा है तिस (आत्मज्ञान) से ही अमृत (जन्म, मृत्यु का अभाव रूप मोक्ष) प्राप्त होता है॥ ३३।३४।३५

३५- मोक्ष के अभिलाषी इन छः कर्मों का सेवन करें अन्यथा मोक्ष होना दुर्लभ है किन्तु आधुनिक मतो में फस वा किसी पर विश्वास ला अनेक नारकीय योनियों के जन्म मरण रूपी चक्र में दुःख ही भोगने पड़ेंगे॥

मूल - सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिक मेवच ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ३६

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ।
निष्कामं ज्ञान पूर्वं तु निवृत्त मुप दिश्यते ॥ ३७

अर्थ - वैदिक कर्म दो प्रकार का है स्वर्गादि सुखों का उपयोगी सार में प्रवृत्ति का कारण होने से प्रवर्त्तक कहाता है और मोक्ष का उपयोगी, संसार से निवृत्ति का कारण होने से निवृत्तक कहाता है किन्तु इस लोक या परलोक के फल की इच्छा से जो कर्म किया जाय वह प्रवृत्त और फल इच्छा रहित ज्ञान पूर्वक जो किया जाय वह निवृत्त कर्म कहाता है ॥ ३६ । ३७

मूल - प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवाना मेति साम्यताम् ।
निवृत्त सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥ ३८

अर्थ - प्रवृत्ति कर्म के सेवन (अनुष्ठान) से देवताओं के सदृश (दिव्य गुण युक्त सर्व सुख सम्पन्न) होता है निवृत्ति कर्म सेवन से पञ्च भौतिक संसार में पुनर्जन्म को अति क्रमण (उल्लङ्घन) कर मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ३८

मूल - सर्व भूतेषु चात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि ।
सम पश्यन्नात्म याजी स्वाराज्य मधिगच्छति ॥ ३९

अर्थ - जो समस्त स्थावर जङ्गम भूत (प्राणियों) में आत्मा को और आत्मा में सम्पूर्ण भूतों को समान देखता है वो आत्मा में ही यजन करता हुआ ब्रह्मत्व (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ३९*

---

३९ - इस श्लोक में आत्म शब्द से सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का ग्रहण है इसी ज्ञान (जो इस श्लोक में कहा है) से मोह, शोकादि, दुःख तथा परनिन्दादि निन्दित कर्मों को

मूल- एतद्विजन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
प्राप्यैतत्कृतकृत्योहि द्विजो भवति नान्यथा ॥ ४०

अर्थ- वेदाभ्यास, आत्मज्ञानादि का करना ही द्विजातियों के जन्म विशेष कर ब्राह्मणों के जन्म की सफलता है क्योंकि आत्मज्ञानादि को प्राप्त होके द्विजाति कृत कृत्य होते हैं अन्यथा नहीं ॥ ४० ॥

मूल- पितृदेव मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्र मिति स्थितिः ॥ ४१

अर्थ - पितृ, देव, मनुष्यों को हव्यादि पदार्थों के दान में वेद ही सनातन नेत्र है और अशक्य (निर्माण करने में मनुष्य की शक्ति से वहिर्भूत) है अतएव अपौरुषेय (ईश्वर रचित) तथा अप्रमेय (तर्क से अवाधित या प्रमाण शून्य) वेद ही है ॥ ४१

आग मोक्ष सुख का अनुभव करता है तथाच श्रुतिः

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते" अन्यच्च
"यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः"

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ॥ ६ । ७ ॥

४०- आत्मज्ञान से सम्पूर्ण दुःखों का नाश कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कृतकृत्य (आप मोक्ष रूप हो अन्य के पवित्र करने को सम-

मूल- या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥४२

अर्थ- जो वेद से विरुद्ध स्मृति है तथ वेद विरुद्ध जो कोई दृष्टार्थ वाक्यादि हैं वे सब परलोक में निष्फल हैं क्योंकि मन्वादि महर्षि यों ने उन (वेद विरुद्ध ग्रन्थों) को नरक फल दायक कहा है ॥ ४२ ॥

र्थ ' होते हैं यथा अध्यात्मकादि तापो (ज्वर। शीताघ्यादि) का तत्तदुपायों (औषधि आदि) से तिरोभाव हो कालान्तर में पुन प्रादुर्भाव (कुछ दिन को दूर हो फिर प्रघट) हो आता है किन्तु अत्यन्ताभाव (नाश) तो सब व्याधियों का आत्म ज्ञान से ही होता है वेद में भी लिखा है " तरति शोक मात्म वित " इत्यादि और ज्ञान वेदादि पठन से ही होता है अतएव महर्षि मनु ने वेद पठना अपने धर्म शास्त्र में अनेक वार लिखा है ॥

४२- महर्षि मनु कहते हैं वेद विरोधी ग्रन्थों के मानने वाले नरक में जायंगे क्योंकि उन ग्रन्थों का विषय वेद विरुद्ध (धर्म नाशक अधर्मोत्पादक) है किन्तु अमुक यात्रा · अमुक दर्शन · अमुक उच्छिष्ट भोजन से · अमुक तीर्थ कारों के सेवन तथा · सिद्ध शिला पर तप करने से · अमुक यमनवाक्य (कल्मा) स्वीकार करने से · अमुक पर विश्वास लाने से समस्त पाप नाश होते हैं इत्यादि ॥

४४- पूर्व जन्म कृत पाप पुण्य के फल से नीच · ऊंच · धनी · दरिद्री के जन्म तथा रूप कुरूप को पाता है भविष्य में नरक · स्वर्ग · वर्त्तमान में अनेक शिल्पादि कर्मों से तथा पदार्थविद्या से धनोपार्जन द्वारा सुख · मूर्खता से दुःख एव तीनों काल का

मूल- उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ४३
अर्थ- जो शास्त्र वेद मूलक नहीं है सो उत्पन्न होते हैं और शीघ्र नष्ट होते हैं किन्तु आधुनिक होने से निष्फल तथा मिथ्या हैं ॥ ४३

मूल- चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वार आश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥ ४४
अर्थ चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, और भूत भविष्यन, वर्तमान तीनों काल जो कुछ हैं सो सम्पूर्ण वेद से ही प्रसिद्ध (प्रकाशित) है ॥ ४४ ❀

मूल- सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ४५
अर्थ- सेनापति का अधिकार, राज्य, दण्ड करतृत्व (दण्ड देने का अधिकार) सर्व भूमण्डल का स्वामित्व इन सब को वेद शास्त्र जानने वाला ही धारन करने योग्य है ॥ ४५

मूल- यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान्।
तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥ ४६
अर्थ- जैसे प्रज्वलित अग्नि गीले वृक्षों को भी भस्म करती है तैसे ही वेद का यथार्थ जानने वाला निन्दित कर्म जनित अपने पापों को भस्म करता है ॥ ४६ ❀

ज्ञान वर्ण आश्रम जो कुछ है सब वेद से ही है यथा "ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीति" इत्यादि श्रुतेः ॥
४६- देखिये विद्वानों की प्रशंसा प्रथम तो उनसे निषेध कर्म होगा ही नहीं यदि बन भी जाय तो प्रायश्चित करते शुद्ध होते हैं मूर्ख अपमानादि से क्लेश तथा पाप से नरक भोगते हैं ॥

मूल- वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५७

अर्थ- वेद, शास्त्र के अर्थ को यथार्थ जानने वाला जिस किसि आश्रम में वसता हुआ इस लोक में ही ब्रह्म रूप (जीवन्मुक्त) होजाता है ॥ ५७ ॥

मूल- तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ५८

अर्थ- तप (स्वधर्म वृत्ति तथा धर्मानुष्ठान) विद्या (आत्मज्ञान) ये दोनों ब्राह्मण को मोक्ष के परम साधन हैं तप से पापों को दूर करता है और विद्या से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

मूल- प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥ ५९

अर्थ- धर्म का तत्व जानने की इच्छा वालों को प्रत्यक्ष, अनुमान, अनेक प्रकार के वेद मूलक स्मृति आदि धर्मशास्त्र ये तीनों प्रमाण अच्छे प्रकार जानने चाहिये ॥ ५९ ॥

५७-५८- मोक्ष का कारण ज्ञान कहा आश्रम नहीं जो मूर्ख घर को त्याग वस्त्र रङ्ग गृहस्थियों को दुःख दे ईश्वर सृष्टि (पुत्रोत्पत्ति) की हानि करैं तो क्या (विना ज्ञान) मोक्ष होती है? कदापि नहीं नरक ही होगा तथाच श्रुतिः "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" अन्यच्च "विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते"॥ यजु० अ० ४० मन्त्र १४

भावार्थ- विना ज्ञान के मोक्ष नहीं होती जो विद्या अविद्या को

मूल- आर्षं धर्मोपदेशंच वेदशास्त्राऽविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ ५०

अर्थ- वेद तथा धर्मशास्त्र को जो पुरुष वेद शास्त्र अनुकूल तर्क (न्याय) से अनुसन्धान (विचार) करता है सो ही धर्म को जानता है अन्य कोई (वेद विरोधी तथा वद को विपरीत तर्क से विचारने वाला) नहीं जानता ॥ ५०

मूल- धर्मेणाधिगतो येस्तु वेदः सपरिवृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ ५१

अर्थ- ब्रह्मचर्यादि धर्म के अनुसार षडङ्ग, मीमांसा, धर्मशास्त्रादि सहित वेद जिन्हों ने जाना है वेही पदार्थ के प्रकाश करने वाले ब्राह्मण श्रेष्ट (उत्तम) जानने चाहिये ॥ ५१

मूल- एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ५२

अर्थ- वेद, वेदाङ्ग, धर्म शास्त्रादि को जानने वाला एक भी ब्राह्मण जिस धर्म का निश्चय करे वही परमधर्म जानना-

यथार्थ जानता है सो अविद्या (कर्मोपासना) से जन्म मृत्यु को तरता है विद्या ज्ञान (अद्वितीय सर्वव्यापी शुद्ध परमात्मा को जानने) से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

४८- प्रत्यक्ष देखने में प्राणीमात्र को क्लेश रहित सब का हित कारी अपनी शक्ति के साध्य प्राणियों को ऊंच नीच धनी दरिद्री सुखी दुःखी देख पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों का अनुमान कर वेद और वेदानुकूल स्मृति तथा विद्वान् (आगे कहे लक्षण वाले) इन करके निर्णीत जो इस लोक परलोक में सुखदायक कर्म वह धर्म है ॥

चाहिये और मूर्ख दश सहस्र (१००००) भी जिस को कहें उसे धर्म न जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

मूल- यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृननुगच्छति ॥ ५३

अर्थ- तमोगुण प्रधान मूर्ख (धर्म प्रमाण वेदार्थ शून्य होने से) धर्म को न जानने वाले जिस पुरुष को (प्रायश्चित्तादि धर्म) उपदेश करते हैं उस (प्रायश्चित्तीय) का पाप (उन मूर्ख) उपदेशकों को शत गुण (१०० गुणा) हो के प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

मूल- एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ ५४

अर्थ- इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा को आत्मा से जो देखता है सो सब में समानता को प्राप्त होके ब्रह्म रूप परम पद (जन्मादि रहित मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

५२- धर्म निर्णय विद्वान ही कर सक्ता है मूर्ख चाहे जितने मिल कर कपोल कल्पित धर्म गढ़ लें क्या वह धर्म है कदापि नहीं किन्तु विद्या शून्य जड़ बुद्धि मनुष्यों करके रचा हुआ नरक का हेतु होने से अधर्म है ॥

५३ - प्रायश्चित्त तथा धर्म विषयक उपदेश के अभिमानी इस श्लोक को देख वेद, वेदाङ्ग, धर्म शास्त्र पढ़े बिना उपदेशक (गुरू) होने की इच्छा भी न करें यदि उपदेशक बन गये तो पातकी से शत (१००) गुण नरक की वेदना भोगनी पड़ेगी यह धर्म शास्त्र की घोषणा है ॥

५४-५५- समस्त प्राणियों में आत्मा को आत्मवत जानने से

ओ३म्

अथ संस्कारविधिः ॥

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्त्येष्टिपर्य्यन्तैः षोडशसंस्कारैः समन्वितः

आर्य्यभाषया प्रकटीकृतः

श्री मत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वती

स्वामिना निर्मितः

पण्डितज्वालादत्तभीमसेनयज्ञदत्तशर्मभिः संशोधितः

सर्वथा राजनियमे नियोजितः

पण्डितज्वालादत्तशर्मणः प्रबन्धेन

(प्रयाग)

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः

श्रीमद्दयानन्दाब्द ७

संवत् १९४७

पौष शुक्र

तृतीयवार
१०००

मूल्य १॥)
डाकव्यय ।)

ओ३म्

अथ संस्कारविधिः ॥

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्त्येष्टिपर्य्यन्तैः षोडशसंस्कारैः समन्वितः

आर्य्यभाषया प्रकटीकृतः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः

पण्डितज्वालादत्तभीमसेनयज्ञदत्तशर्मभिः संशोधितः

सर्वथा राजनियमे नियोजितः

पंडितज्वालादत्तशर्मणः प्रबन्धेन

(प्रयाग)

वैदिकयन्त्रालये

मुद्रितः

संवत् १९४७

संस्कारविधेर्विषयसूचीपत्रम् ॥

इति

ओ३म्

भूमिका

—०*०—

सब सज्जन लोगों को विदित होवे कि मैंने बहुत सज्जनों के अनुरोध करने से श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९३२ कार्त्तिक कृष्णपक्ष३० शनिवार के दिन संस्कारविधि का प्रथमारम्भ किया था उस में संस्कृतपाठ एकत्र और भाषापाठ एकत्र लिखा था। इस कारण संस्कार करने वाले मनुष्यों को संस्कृत और भाषा दूर २ होने से कठिनता पड़ती थी। और जो १००० एक हजार पुस्तक छपे थे उन में से अब एक भी नहीं रहा; इस लिये श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९४० आषाढ वदि १३ रविवार के दिन पुनः संशोधन करके छपवाने के लिये विचार किया अब की वार जिस २ संस्कार का उपदेशार्थ प्रमाण वचन और प्रयोजन है वह २ संस्कार के पूर्व लिखा जायगा तत्पश्चात् जो २ संस्कार में कर्त्तव्य विधि है उस २ को क्रम से लिख कर पुनः उस संस्कार का शेष विषय जो कि दूसरे संस्कार तक करना चाहिये वह लिखा है और जो विषय प्रथम अधिक लिखा था उस में से अत्यन्त उपयोगी न जान कर छोड़ भी दिया है और अब की बार जो २ अत्यन्त उपयोगी विषय है वह २ अधिक भी लिखा है इस में यह न समझा जावे कि प्रथम विषय युक्त न था और युक्त छूट गया था उस का संशोधन किया है किन्तु उन विषयों का यथावत् क्रमबद्ध संस्कृत के सूत्रों में प्रथम लेख किया था उसमें सबलोगों की बुद्धि कृतकारी नहीं होती थी इस लिये अब सुगम कर दिया है क्योंकि संस्कृतस्थ विषय विद्वान् लोग समझ सकते थे साधारण नहीं। इस में सामान्य विषय जो कि सब संस्कारों के आदि और उचित समय तथा स्थान में अवश्य करना चाहिये वह प्रथम सामान्य प्रकरण में लिख दिया है और जो मंत्र वा क्रिया सामान्यप्रकरण की संस्कारों में अपेक्षित है उस के पृष्ठ पंक्ति की प्रतीक उन कर्त्तव्य संस्कारों में लिखी है कि जिस को देख के सामान्य विधि की क्रिया

वहां सुगमता से कर सकें और सामान्यप्रकरण का विधि भी सामान्यप्रकरण में लिख दिया है अर्थात् वहां का विधि करके संस्कार का कर्त्तव्य कर्म करे और जो सामान्यप्रकरण का विधि लिखा है वह एकस्थान से अनेकस्थलों में अनेक वार करना होगा जैसे अग्न्याधान प्रत्येक संस्कार में कर्त्तव्य है वैसे वह सामान्यप्रकरण में एकत्र लिखने से सब संस्कारों में बारंवार न लिखना पड़ेगा इस में प्रथम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, पुनः स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ तदनन्तर सामान्यप्रकरण पश्चात् गर्भाधानादि अन्त्येष्टिपर्यन्त सोलह संस्कार क्रमशः लिखे हैं और यहां सब मंत्रों का अर्थ नहीं लिखा है क्योंकि इस में कर्मकाण्ड का विधान है इसलिये विशेष कर क्रिया विधान लिखा है और जहां२ अर्थ करना आवश्यक है वहां २ अर्थ भी कर दिया है और मंत्रों के यथार्थ अर्थ मेरे किये वेदभाष्य में लिखे ही हैं जो देखना चाहैं वहां से देख लेवें यहां तो केवल क्रिया करनी ही मुख्य है जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं इस लिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है ॥

इति भूमिका ॥

स्वामी दयानन्दसरस्वती ।

ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय ॥

अथ संस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

—:०:*:०:—

ओं सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ तैत्तिरीय आरण्यके । अष्टमप्रपाठके । प्रथमानुवाके ॥

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद्विभुः ।
भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः ॥ १ ॥
गर्भाद्या मृत्युपर्य्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि ।
वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परेश्वरम् ॥ २ ॥
वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात् ।
आर्य्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये ॥ ३ ॥
संस्कारैस्संस्कृतंयद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते ।
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते ॥ ४ ॥
अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः ।
शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥
कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः ।
वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः ॥ ६ ॥
प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः ।
जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः ॥ ७ ॥

बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ्मानवप्रियकारकैः ।
प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजितः ॥ ८ ॥
दयाया आनन्दो विलसति परो ब्रह्मविदितः,
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा हीशशरणाऽ
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः ॥ ९ ॥
चक्षूरामाङ्कचन्द्रेब्दे कार्तिकस्यासिते दले ।
अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ १० ॥
बिन्दुवेदाङ्कचन्द्रेब्दे शुचौ मासेऽसिते दले ।
त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम् ॥ ११ ॥

सब संस्कारों की आदि में निम्नलिखित मंत्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त हो कर परमात्मा में ध्यान लगा के करे और सब लोग उस में ध्यान लगा कर सुनें और विचारें ॥

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥यजुः० अ० ३० मं० ३ ॥

अर्थः—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता समग्र ऐश्वर्य्ययुक्त (देव) शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा कर के (नः) हमारे (विश्वानि) संपूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को (परा, सुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ है (तत्) वह सब हम को (आ, सुव) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्॥
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥
यजुः० अ० १३ । मं० ४ ॥

अर्थः—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाश स्वरूप और जिस ने प्रकाश कर ने हारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए संपूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्त्तमान था (सः) सो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्य्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥
य० अ० २५ । मं० १३ ।

अर्थः—(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर आत्मा और समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिस की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिस का (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिस का न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥
य० अ० २३ । मं० ३ ॥

अर्थः—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक, इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौआदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य्य के देने हारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥ ४ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥
य० अ० ३२ । मं० ६ ॥

अर्थः—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्णस्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेषमानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥ ५ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥
ऋ० मं० १० सू० १२१ मं० १० ॥

अर्थः—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ना) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादि कों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आप का (जुहुमः) आश्रय लेवें और वांछा करें (तत्) उस २ की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ ७॥ य० अ० ३२। मं० १०॥

अर्थः—हे मनुष्यो (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) संपूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम स्थान जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिल के सदा उस की भक्ति किया करें ॥ ७ ॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम॥ ८ ॥ य० अ० ४०। मं० १६ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर आप जिस से (विद्वान्) संपूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा कर के (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य

की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्म्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) संपूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये इस कारण हम लोग (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नमउक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

अथ स्वस्तिवाचनम् ॥

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् । होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ १ ॥ स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व । सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥ २ ॥ ऋ० मं० १ । सू० १ । मं० १ । ९ ॥

स्व॒स्ति नो॑ मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑ । स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृथि॒वी सु॑चे॒तुना॑ ॥ ३ ॥ स्व॒स्तये॑ वा॒युमुप॑ ब्रवामहै॒ सोमं॑ स्व॒स्ति भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॑ । बृह॒स्पतिं॒ सर्व॑गणं स्व॒स्तये॑ स्व॒स्तय॑ आदि॒त्यासो॑ भवन्तु नः ॥ ४ ॥ विश्वे॑ दे॒वा नो॑ अ॒द्या स्व॒स्तये॑ वैश्वान॒रो वसु॑र॒ग्निः स्व॒स्तये॑ । दे॒वा अ॑वन्त्वृ॒भवः॑ स्व॒स्तये॑ स्व॒स्ति नो॑ रु॒द्रः पा॒त्वंह॑सः ॥ ५ ॥ स्व॒स्ति मि॑त्रावरुणा स्व॒स्ति प॑थ्ये रेवति । स्व॒स्ति न॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ स्व॒स्ति नो॑ अदिते कृधि ॥ ६ ॥ स्व॒स्ति पन्था॒मनु॑ चरेम सूर्याचन्द्र॒मसा॑विव । पुन॒र्दद॒ताघ्न॑ता जान॒ता सं ग॑मेमहि ॥ ७ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ५१ ॥ ये दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः । ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ८ ॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥ ९ ॥ नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः । ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥ १० ॥ सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् । ताँआ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥ ११ ॥ को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन । को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ १२ ॥ येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः । त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ १३ ॥ य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥ भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥ विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥ अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥१९॥ यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये॥२०॥ स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥२१॥स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ २२ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ६३ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥ यजु० अ० १ । मं० १ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथासदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ २४ ॥ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांᳬ रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानांᳬ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः

स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥ यजुः अ० २५ । मं० १४ १५ । १८ । १९ । २१ ॥

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥ त्वमग्ने यज्ञानाꣳ होता विश्वेषाꣳ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥ सा० छन्द आ० प्रपा० १ । मं० १।२॥

ये त्रिषप्ताः परि यन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥ अथर्व० कां० १ । सू० १ । वर्ग १ । अनु० १ । प्रपा० १ । मं० १ ।

इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिप्रकरणम् ॥

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥ शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥ शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥ शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको

अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥ ४ ॥ शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥ शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥ शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः । शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥ १० ॥ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शन्नो अप्याः ॥ ११ ॥ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः । शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥ शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपांनपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥ऋ० । मं० ७ । सू० ३५ । मं० १–१३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति शंनोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥१४॥ शं नो वातः पवताᳬं शं नस्तपतु सूर्य्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ॥१५॥ अहानि शं भवन्तु नः शᳬं रात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥ १६ ॥ शं नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳬं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वᳬं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १९ ॥ यजुः० अ० ३६ । मं० ८ । १० । ११ । १२ । १७ । २४ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥ यस्मिन्नृचः साम

यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥ य० अ० ३४ । मं० १६ ॥

स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते । शꣳराजन्नोषधीभ्यः ॥ २० ॥ साम० उत्तरार्च्चिके० प्रपा० १ मं० ३ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २४ ॥ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २५ ॥ अथर्व० कां० १९ सू० १५ । मं० ५ । ६ इति शान्तिकरणम् * ॥

अथ सामान्यप्रकरणम् ॥

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये । परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना कर दी जायगी कि यहां पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना और इतना अधिक करना स्थान २ में जना दिया जाय गा ॥

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल वायु शुद्ध हो किसी प्रकार का उपद्रव न हो ॥

यज्ञशाला—इसी को यज्ञमण्डप भी कहते हैं यह अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ सम चौरस चौकोण और न्यून से न्यून ८ आठ हाथ की हो यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथिवी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी

* इस स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण को सर्वत्र जहां २ प्रतीक धरें वहां २ करना होगा ।

दो २ हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उस में शुद्ध मट्टी भरें । यदि १६ सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारों ओर २० बीस खम्भे और जो ८ अठ हाथ की हो तो १२ बारह खम्भे लगा कर उन पर छाया करें वह छाया की छत्त वेदी की मेखला से १० दश हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा पताका पल्लव आदि बांधें नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम हलदी मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें । मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञद्वारा ईश्वरोपासना करें इसी लिये निम्न लिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें ॥

यज्ञकुण्ड का परिमाण ॥

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार २ हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में १ एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहिरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो २ हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और सम चौरस कुण्ड बनाना और जो पचास हजार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा चौड़ा सम चौरस और पौनहाथ नीचे तथा पच्चीस हजार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आधहाथ नीचे दश हजार आहुति तक इतना हीं अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आधहाथ नीचे रखना, पांच हजार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है यदि इस में २५०० ढाई हजार आहुति मोहनभोग खीर और २५०० ढाई हजार घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खे, चाहे घृत की हजार आहुति देनी हों तथापि सवाहाथ से न्यून चौड़ा गहिरा सम चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ पंद्रह अंगुल की मेखला अर्थात् पांच २ अंगुल

की ऊंची ३ तीन बनावे । और ये तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें ॥

यज्ञसमिधा ॥

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें । परन्तु ये समिधा, कीड़ा लगीं मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर कर बीच में चुनें ॥

होम के द्रव्य चारप्रकार ॥

(प्रथम—सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, आदि (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेंहू, उड़द, आदि (तीसरे—मिष्ट) शक्कर, सहत, छुहारे, दाख आदि, (चौथे—रोग नाशक) सोमलता, अर्थात् गिलोय आदि ओषधियां ॥

स्थालीपाक ॥

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग, आदि सब उत्तम पदार्थ बनावे इस का प्रमाण ॥

ओ३म् । देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥

इस मंत्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध कर लेना अवश्य चाहिये अर्थात् सब को यथावत् शोध छान देख भाल सुधार कर करें इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्तीभर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेरभर मीठा सब डाल कर, मोहन भोग बनाना इसी प्रकार अन्य—मीठा भात, खीर, खीचड़ी, मोदक, आदि होम के लिये बनावें । चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने का विधि (ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि) अर्थात् जितनी

आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार २ मूठी चावल आदि लेके (ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के पश्चात् सुरक्षित रक्खें। और उस पर घृत सेचन करें ॥

यज्ञपात्र ॥

विशेष कर चांदी अथवा काष्ठ के पात्र होने चाहिये निम्नलिखित प्रमाणे,

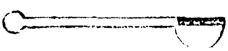
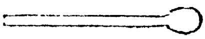
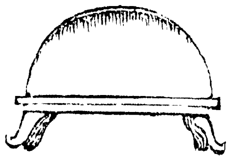
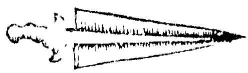
अथ पात्रलक्षणान्युच्यन्ते ॥

बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः । षडङ्गुलखातास्त्वग्बिला-हंसमुखप्रसेकाः । मूलदण्डाश्चतस्रः स्रुचो भवन्ति । तत्र पालाशी जुहूः । आश्वत्थ्युपभृत् । वैकङ्कती ध्रुवा । अग्निहोत्रहवणी च । अरत्निमात्रः खादिरः स्रुवः । अङ्गुष्ठपर्वमात्रपुष्करः । तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः । वारणं बाहुमात्रं मकराकारमग्निहोत्रहवणीनिधानार्थं कूर्चम् । अरत्निमात्रं खादिरं खड्गाकृति वज्रम् । वारणान्यहोमसंयुक्तानि । तत्रोलूखलं नाभिमात्रम् । मुसलं शिरोमात्रम् । अथवा मुसलोलूखले वार्क्षे सारदारुमये शुभे इच्छाप्रमाणे भवतः । तथा—खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः । यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ । शूर्पं वैणवमेव वा । ऐषीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम् । प्रादेशमात्री वारणी शम्या । कृष्णाजिनमखण्डम् । दृषदुपले अश्ममये । वारणीं २४ हस्तमात्रीं २२ अरत्निमात्रीं

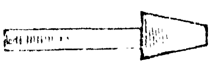
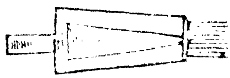
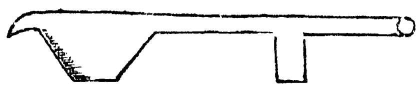
वा खातमध्यां मध्यसंगृहीतामिडापात्रीम् । अरत्निमात्राणि ब्रह्मयजमानहोतृपत्न्यासनानि । मुञ्जमयं त्रिवृतं व्याममात्रं योक्त्रम् प्रादेशदीर्घे अष्टाङ्गुलायते षडङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ । प्रादेशमात्रं द्व्यङ्गुलपरीणाहन्तीक्ष्णाग्रं श्रितावदानम् । आदर्शाकारे चतुरस्रे वा प्राशित्रहरणे । तयोरेकमीषत्खातमध्यम् । षडङ्गुलकङ्कतिकाकारमुभयतःखातं षडवदात्तम् । द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्सेधमन्तर्द्धानकटम् । उपवेशोऽरत्निमात्रः । मुञ्जमयी रज्जुः । खादिरान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गुलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शङ्कून् । यजमानपूर्णपात्रं पत्नीपूर्णपात्रं च द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलखातम् । तथा प्रणीतापात्रञ्च । आज्यस्थाली द्वादशाङ्गुलविस्तृता प्रादेशोच्चा । तथैव चरुस्थाली । अन्वाहार्यपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तं समिदिध्मार्थं पलाशशाखामयं कौशं बर्हिः । ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि । पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम् । अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपञ्चाशद् गावः । द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः । षट्पक्षे त्रयोदश । सर्वेषु पक्षेषु आदित्येऽष्टौ धेनवः । वरार्थं चतस्रो गावः ॥

समिध पलाश की १८ हस्त ३ इध्म परिधि ३ पलाश की बाहुमात्र सामिधेनी समिन् प्रादेशमात्र सपवित्रण लेर ५ शाठी १ दृषदुपल १ दीर्घ अङ्गुल १२ पृ० १५ उपल अं० ६ नेतु व्यास हाथ ४ त्रिवृत्तृण वा गोवाल का ॥

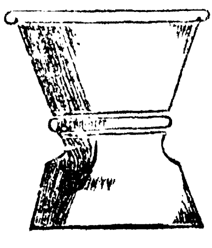
स्रुवः ४ अंगुल २४ शम्या प्रादेश १। अन्तर्धान १ अं० १२। खाँडा अंगुल २४

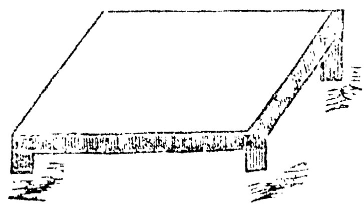





शृतावदानप्रादेश मात्र कूर्च बाहुमात्र १ स्रुच् सर्व ४ बाहुमात्र ।

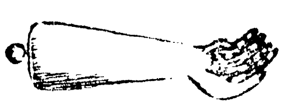
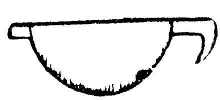
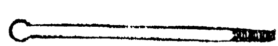




उलूखलनाभिमात्र मुसल पाटला ४ लम्बा २४ अं०

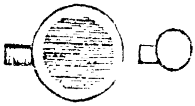
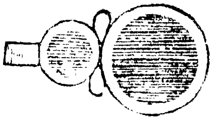


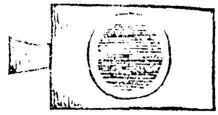


उपवेश १ अं० २४ पूर्णपात्र अं० १२ चौड़ा अङ्गुल ६ अभ्रि० १ अं० २४।

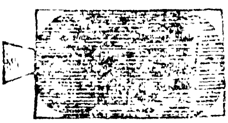




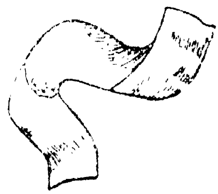
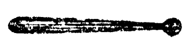
प्राशित्रहरणे दर्पणाकार　पिष्टपात्री　षड्वत अङ्गुल १२　पुरोडाश पात्री

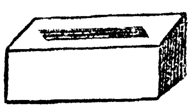
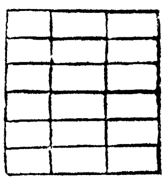


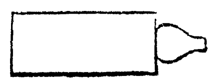
प्रणीता अं० १२। प्रोक्षणी अं० १२। अंगोछा २४ अङ्गुल लंबा　अरणी ४।



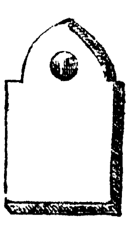



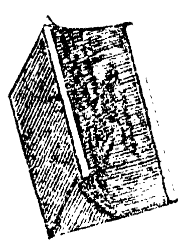
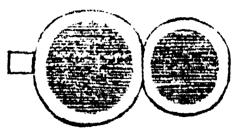
अङ्गुल ६ पोली अङ्गुल ४ ऊंची अधरारणी　उत्तरारणी टुकड़ा १८　ओवली अं० १२　चात्र अं० १२



मूलेखात दृषद्　उपल　शूर्प　इडा अं० १२



अथ ऋत्विग्वरणम् ॥

यजमानोक्तिः (ओमावसोः सदने सीद) इस मन्त्र का उच्चारण कर के ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे (ऋत्विगुक्तिः) ओं सीदामि । ऐसा कह के जो इस के लिये आसन बिछाया हो उस पर बैठे(यजमानोक्तिः) अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे (ऋत्विगुक्तिः) वृतोऽस्मि । ऋत्विजों का लक्षण । अच्छे विद्वान् धार्मिक जितेन्द्रिय कर्म करने में कुशल निर्लोभ परोपकारी दुर्व्यसनों से रहित कुलीन सुशील वैदिक मत वाले वेदवित् एक दो तीन अथवा चार का वर्ण करें जो एक हो तो उस का पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक् पुरोहित और ३ तीन हों तो ऋत्विक् पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, इन का आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख, और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहै और इन ऋत्विजों को सत्कार पूर्वक आसन पर बैठाना, और वे प्रसन्नता पूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के विना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें और अपने २ जलपात्र से सब जने जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे इन मन्त्रों से तीन २ आचमन करें अर्थात् एक २ से एक २ वार आचमन करें वे मन्त्र ये हैं:—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥

इस से एक

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥

इस से दूसरा

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

इस से तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से जल करके अंगों का स्पर्श करे

ओं वाङ्म ऽ आस्येऽस्तु ॥

इस मन्त्र से मुख

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥

इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥

इस मन्त्र से दोनों आंखें

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥

इस मन्त्र से दोनों कान

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥

इस मन्त्र से दोनों बाहु

ओं ऊर्वोर्म ऽ ओजोऽस्तु ॥

इस मन्त्र से दोनों जंघा और

ओं अरिष्टानि मे अङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना, पूर्वोक्त समिधा-चयन वेदी में करें पुनः —

ओं भूर्भुवः स्वः ॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उस से कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उस में छोटी २ लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा यदि गर्म होतो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे वह मन्त्र यह है ॥

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ १ ॥ य० अ० ३ । मं० ५ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे २ काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे ॥

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थेऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु० अ० १५ । मं० ५४ ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में डुबा उन में से एक २ नीचे लिखे एक २ मंत्र से एक २ समिधा को अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं:—

ओं अयं त इध्मऽ आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

इस मन्त्र से एक ।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥ २ ॥

इस से और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ ३ ॥

इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम ॥ ४ ॥

य० अ० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे ।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ पात्र में वेदी

के पास सुगन्धित धरें पश्चात् उपरि लिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिला कर पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो) में से कम से कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे यही आहुति का प्रमाण है । उस घृत में से चमसा कि जिस में छः मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो भर के नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुति देनी ॥

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि ओर अञ्जलि म जल ले के चारों ओर छिड़कावें उस के ये मन्त्र हैं:—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥

इस मन्त्र से पूर्व

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥

इस से पश्चिम

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥

इस से उत्तर ओर

ओं देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य। दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥ यजु॰ अ॰ ३० । मं॰ १ ॥

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती हैं उन में से यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है उस का नाम (आघारावाज्याहुति) कहते हैं और जो कुण्ड के मध्य में

आहुतियां दी जाती हैं उन को "आज्यभागाहुति" कहते हैं सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तरभाग अग्नि में

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी तत्पश्चात्

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी उस के पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति दे के तब प्रधान होम अर्थात् जिस २ कर्म में जितना २ होम करना हो, करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवें पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय, इदन्न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः, इदन्न मम ॥

ये चार घी की आहुति दे कर स्विष्टकृत होमाहुति एक ही है यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये उस का मन्त्र—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते, इदन्न मम ॥

इस से एक आहुति करके प्राजापत्याहुति करे नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदन्न मम ॥

इस से मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवे परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल समावर्त्तन और विवाह में मुख्य हैं वे चार मंत्र ये हैं

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्ज्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥२॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्य्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥३॥ ऋ० मं० ९ । सू० ६६ । मं० १९।२०।२१॥

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

इन से घृत की ४ आहुति करके "अष्टाज्याहुति" ये निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल कार्यों में ८ आठ आहुति देवें परन्तु किस २ संस्कार में कहां २ देनी चाहिये यह विशेष बात उस २ संस्कार में लिखें गे वे आठ आहुतिमन्त्र ये हैं ॥

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्, इदन्न मम ॥१॥ ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व

नो वरुणं ररा॒णो वी॒हि मृ॒डीकं सु॒हवो॑ न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां—इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ॰ मं॰ ४ । सू॰ १ । मं॰ ४ । ५ ॥

ओं इ॒मं मे॑ वरुण श्रुधी हव॑म॒द्या च॑ मृडय । त्वाम॑व॒स्युरा च॑के स्वाहा ॥ इदं वरुणाय । इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ॰ मं॰ १ । सू॰ २५ । मं॰ १९ ॥

ओं तत्त्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान॒स्तदा शा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑ । अहे॑डमानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शंस॒ मा न॒ आयुः॒ प्र मो॑षीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ॰ मं॰ १ । सू॰ २४ । मं॰ ११ ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नोऽ अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः । इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशास्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे । इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं उदु॑त्त॒मं व॑रुण॒ पाश॑म॒स्मदवा॑ध॒मं वि म॑ध्य॒मं श्र॑थाय । अथा॑ व॒यमा॑दित्य व्र॒ते तवाना॑गसो॒ऽदित॑ये स्याम॒ स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च । इदन्न मम ॥ ऋ॰ मं॰ १ । सू॰ २४ । मं॰ १५ ॥

ओं भव॑तन्नः॒ सम॑नसौ॒ सचे॑तसावरे॒पसौ॑ । मा य॒ज्ञꣳ हिꣳसिष्टं॒ मा य॒ज्ञप॑तिं जातवेदसौ शि॒वौ भ॑वतम॒द्य नः॒ स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्यां । इदन्न मम ॥ य॰ अ॰ ५ । मं॰ ३ ॥

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे, न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है करे यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मंदमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करें और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करे स्रुवा को घृत से भर के—

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ।

इस मन्त्र से एक आहुति देवे ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति दे के जिस को दक्षिणा देनी हो देवे वा जिस को जिमाना हो जिमा दक्षिणा देके सब को विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष घृत भात वा मोहनभोग को प्रथम जीम के पश्चात् रुचि पूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें ॥

मङ्गलकार्य

अर्थात् गर्भाधानादि संन्यास संस्कार पर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करें वे मन्त्र ये हैं ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । कस्त्वा सत्यो-
मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
ओं भूर्भुवः स्वः । अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥ महावामदेव्यम् ॥ काऽ५या । नश्चा३
इत्रा३आभुवात् । ऊ । ती सदावृधः सखा । ओ३ होहाइ ।

कया २ ३ शचाई। ष्ठयौहो३हुम्मा २ । वा२र्तो३ऽ५हाइ॥ (१)॥

का ऽ५स्त्वा। सत्यो ३ मा ३ दानाम् । मा। हिष्ठोमान्त्सादन्ध । सा ।

औ३होहाइ । दृढा २ ३ चिदा । रुजौहो३ । हुम्मा २ । वाऽ३सो-

३ऽ५हायि ॥ (२) औऽ५भी । षुणा३:सा३खीनाम् । औ ।

विता जरायितॄ । णाम् । औ२३हो हायि । शता२३भवा । सि-

यौहो ३ । हुम्मा २ । ताऽ २ यो ३ ऽ ५ हायि ॥ (३) ॥

साम० उत्तरार्चिके । अध्याये १ । खं० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ वर्त्तने वाले हों उन को नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों उन को भी सत्कारपूर्वक विदा कर दें अथवा जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक् २ मौन करके बैठे रहें कोई बात चीत हल्ला गुल्ला न करने पावें सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें विशेष कर्मकर्त्ता और कर्म कराने वाले शान्ति धीरज और विचारपूर्वक, क्रम से कर्म करें और करावें ॥

यह सामान्य विधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्त्तव्य है ॥

इति सामान्यप्रकरणम् ॥

अथ गर्भाधानविधिं वक्ष्यामः ॥

—०*०—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। मनुस्मृतिद्वितीयाध्याये श्लोकः १६ ॥

अर्थः—मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं उन में से प्रथम गर्भाधान संस्कार है ॥

गर्भाधान उस को कहते हैं कि जो "गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद्गर्भाधानम्" गर्भ का धारण, अर्थात् वीर्य का स्थापन गर्भाशय में स्थिर करना जिस से होता है। जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम बलवान् स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इस से पूर्णयुवावस्था यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून १६ सोलह वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य हो और इस से अधिक वय वाले होने से अधिक उत्तमता होती है क्योंकि विना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता, और २५ पच्चीस वर्ष के विना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता इस में यह प्रमाण है ॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥
सुश्रुते सूत्रस्थाने। अ० ३५ ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ २ ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ३ ॥
सुश्रुते शारीरस्थाने । अ० १० ॥

ये सुश्रुत के श्लोक हैं शरीर की उन्नति वा अवनति की विधि जैसी वैद्यक शास्त्र में है वैसी अन्यत्र नहीं जो उस का मूल विधान है आगे वेदारम्भ में लिखा जायगा अर्थात् किस २ वर्ष में कौन२ धातु किस २ प्रकार का कच्चा वा पक्का वृद्धि वा क्षय को प्राप्त होता है यह सब वैद्यक शास्त्र में विधान है इस लिये गर्भाधानादि संस्कारों के करने में वैद्यकशास्त्र का आश्रय विशेष लेना चाहिये अब देखिये सुश्रुतकार परमवैद्य कि जिन का प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं वे विवाह और गर्भाधान का समय न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे यह लिखते हैं जितना सामर्थ्य पच्चीसवें २५ वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य १६ सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है इस लिये वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जानें ॥ १ ॥ सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में पच्चीस २५ वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही विगड़ जाता है ॥ २ ॥ और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे अथवा कदाचित् जीवे भी तो उस के अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों इस लिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति । आषोडशाद् वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः संपूर्णता ततः किंचित्परिहाणिश्चेति ॥

अर्थः—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि, और पच्चीसवें वर्ष से युवावस्था का आरंभ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं की पूर्णपुष्टि और उस से आगे किञ्चित् २ धातु वीर्य की हानि होती है अर्थात् ४० चालीसवें वर्ष सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं पुनः खान पान से जो उत्पन्न वीर्य धातु होता है वह कुछ २ क्षीण होने लगता है इस से यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहैं तो कन्या १६ सोलह वर्ष की और पुरुष २५ पच्चीस वर्ष का अवश्य होना चाहिये मध्यम समय कन्या का २० बीस वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० चालीसवां वर्ष, और उत्तम समय कन्या का २४ चौबीस वर्ष और पुरुष का अड़तालीस वर्ष पर्यन्त का है जो अपने कुल की उत्तमता उत्तम सन्तान दीर्घायु सुशील बुद्धि बल पराक्रम युक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे १६ सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और २५ पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें यही सब सुधार का सुधार सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिस से उत्तम सन्तान होवें ॥

ऋतुदान का काल ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतस्सदा ।
पर्ववर्ज व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ १ ॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ २ ॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ३ ॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ ४ ॥

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥ ५ ॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ६ ॥
मनुस्मृतौ अ० ३ ।

अर्थ—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है, कि सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री का समागम करे और अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे वैसे स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहै जो स्त्रीव्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती वह पुरुष जब ऋतुदान देना हो तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के १६ सोलह दिनों में पौर्णमासी अमावास्या चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उस को छोड़ देवे इन में स्त्री पुरुष रतिक्रिया कभी न करें ॥ १ ॥ स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ सोलह रात्रि का है अर्थात् रजोदर्शन दिन से ले के १६ सोलहवें दिन तक ऋतु समय है उन में प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से ले चार दिन निन्दित हैं प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकान्त में बैठी रहै क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोग-कारक है । रजः अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े में से पीव वा रुधिर निकलता है वैसा है ॥ २ ॥ और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित है और बाकी रहीं दश रात्री सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ जिन को पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं ये छः रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इन में भी उत्तर २

श्रेष्ठ हैं और जिन को कन्या की इच्छा हो वे पांचवीं, सातवीं, नववीं, और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें * इस से पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे ॥४॥ पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा वन्ध्या स्त्री क्षीण और अल्प वीर्य से गर्भ का न रहना वा रह कर गिर जाना होता है ॥ ५ ॥ जो पूर्व निन्दित ८ आठ रात्रि कह आये हैं उन में जो स्त्री का संग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में बसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ॥ ६ ॥

उपनिषदि गर्भलम्भनम् ॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन विधि लिखा है वैसा करना चाहिये अर्थात् पूर्वोक्त समय विवाह करके जैसा कि १६ सोलहवें और २५ पचीसवें वर्ष विवाह करके ऋतुदान लिखा है वही उपनिषद् से भी विधान है ॥

अथ गर्भाधानᳫं स्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वᳫं स्नात्वा विरुजायास्तस्मिन्नेव दिवा "आदित्यं गर्भमिति" ॥

यह पारस्कर गृह्यसूत्र का वचन है—ऐसा ही गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी विधान है इस के अनन्तर स्त्री जब रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान कर रजरोग रहित हो उसी दिन (आदित्यं गर्भमिति) इत्यादि मन्त्रों से जैसा जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने की इच्छा हो उस से पूर्व दिन में सुगन्धादि पदार्थों सहित पूर्व सामान्यप्रकरण के लिखित प्रमाणे हवन करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देनी यहां पत्नी पति के वामभाग में बैठे और पति वेदी से पश्चिमाभिमुख पूर्व दक्षिण वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठे और ऋत्विज् भी चारों दिशाओं में यथासुख बैठें ॥

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यस्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा—इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं

* रात्रिगणना इस लिये की है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है ।

देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं वायवे। इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं अग्निवायुश्चन्द्रसूर्य्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥७॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥८॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय । इदन्न मम ॥९॥ ओं अग्निवायुश्चन्द्रसूर्याः

प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः । इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे। इदन्न मम ॥११॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदमग्नये । इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय । इदन्न मम ॥ १३ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा इदं सूर्याय । इदन्न मम ॥१४॥ ओं अग्निवायुश्चन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः । ददन्न मम ॥ १५ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसिब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदमग्नये । इदन्न मम ॥ १६ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं वायवे ।

इदन्न मम ॥ १७ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय । इदन्न मम ॥ १८ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय । इदन्न मम ॥ १९ ॥ ओं अग्निवायुश्चन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः । इदन्न मम ॥ २० ॥

इन बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी * । और बीस आहुति करने से यत्किञ्चित् घृत बचे वह कांसे के पात्र में ढांक के रख देवें इस के पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना अर्थात् एक चांदी वा कांसे के पात्र में भात रख के उस में घी दूध और शक्कर मिला के कुछ थोड़ी देर रख के जब घृत आदि भात में एक रस हो जाय पश्चात् नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ आहुति अग्नि में देवें और स्रुवा में का शेष आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे ॥

ओं अग्नये पवमानाय स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अग्नये पावकाय स्वाहा ॥ इदमग्नये पावकाय इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं अग्नये शुचये स्वाहा ॥ इदमग्नये शुचये । इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं अदित्यै स्वाहा ॥ इदमदित्यै इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये ।

* इन बीस आहुति देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे ।

इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यून-
मिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे ।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां
समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्ट-
कृते । इदन्न मम ॥ ६ ॥

इन छः मन्त्रों से उस भात की आहुति देवें तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त २६—२७ पृष्ठ लिखित आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देनी उन ८ आठ मन्त्रों से ८ आठ तथा निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्याहुति देवें ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥ १ ॥ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा स्वाहा ॥ २ ॥ हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतोऽअश्विना । तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥३॥ ऋ० मं० १ । सू० ८४ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना ॥ ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा ॥४॥ यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् ॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा ॥ ५ ॥ यजुर्वेदे ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ॥ एवा ते ध्रियतां गर्भोऽ अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥६॥ यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥७॥ यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ८ ॥ यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् । एवा ते ध्रियतां गर्भोऽ अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ९ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० १७ ॥

इन ९ मन्त्रों से नव आज्य और मोहन भोग की आहुति दे के नीचे लिखे मन्त्रों से भी चार घृताहुति देवे ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भुवर्वायवे स्वाहा । इदं वायवे । इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओम् अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः । इदन्न मम ॥ ४ ॥

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से घृत की दो आहुति देनी ॥

ओम् अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा । इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये । इदन्न मम ॥ २ ॥

इन कर्म और आहुतियों के पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे "ओं यदस्य कर्मणोत्यरीरिचं०" इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे जो इन मन्त्रों से आहुति देने समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे

धरे हुए कांसे के उदकपात्र में इकट्ठा करते गये हों जब आहुती हो चुकें तब उस आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नान के घर में जा कर उस घी का पग के नख से लेके शिर पर्यन्त सब अङ्गों पर मर्दन करके स्नान करे। तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ शुद्ध वस्त्र धारण करके कुण्ड के समीप आवे तब दोनों वधू वर कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य्य का दर्शन करें उस समय—

ओं आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परिवृङ्धि हरसा माभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ १ ॥ सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥ २ ॥ जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति। पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥ ३ ॥ चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ ४ ॥ चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। सं चेदं वि च पश्येम ॥५॥ सुसंदृशं त्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य। विपश्येम नृचक्षसः ॥६॥

इन मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करके वधू—

ओं (अमुक (१) गोत्रा शुभदा, अमुक (२) दा अहं भो भवन्तमभिवादयामि)

ऐसा वाक्य बोल के अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और जो वहां अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियां हों उन को भी इसी प्रकार वन्दन करे इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुए अर्थात् वधू पत्नीत्व

(१) इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे।

(२) इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे।

और वर पवित्र को प्राप्त हुए पश्चात् दोनों पति पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिम भाग में बैठ के वामदेव्यगान करें तत्पश्चात् यथोक्त (१) भोजन दोनों जने करें और पुरोहितादि सब मण्डली को सन्मानार्थ यथाशक्ति भोजन करा के आदर सत्कारपूर्वक सब को विदा करें ॥

इस के पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर रात्री के गये पश्चात् प्रहर रात्री रहे तक है जब वीर्य गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों स्थिर शरीर प्रसन्न वदन मुख के सामने मुख नासिका के सामने नासिकादि, सब सूधा शरीर रक्खें वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रिय को ऊपर संकोच और वीर्य को खैंच कर स्त्री गर्भाशय में स्थित करे तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे यदि शीतकाल हो तो प्रथम केशर कस्तूरी जायफर जावित्री छोटी इलायची डाल गर्म कर रक्खे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके पश्चात् पृथक् २ शयन करें यदि स्त्री पुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय कि गर्भ स्थिर हो गया तो उस के दूसरे दिन और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एक महीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय, स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित

(१) उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है इस लिये पति पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि की बर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें ॥ सर्वौषधी ये हैं। दो खण्ड आंबाहलदी, दूसरी खाने की हरदी "चन्दन" मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है) कुष्ठ, जटामासी, मोर वेल, (यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है) शिलाजित्, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ, इन सब ओषधियों का चूर्ण करके सब सम भाग लेके उदुम्बर के काष्ठपात्र में गाय के दूध के साथ मिला उन का दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़ की मंथनी से मंथन करके उस में से मक्खन निकाल उस को ताय, घृत कर के उस में सुगन्धित द्रव्य केशर कस्तूरी जायफर इलायची जावित्री मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्ध कर घी हुए पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक २ मासा जायफलादि भी मिला के नित्य प्रातःकाल उस घी में से २५ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्य भागाहुती ४ चार और पृष्ठ ३४ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि ७ सात मंत्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो उस के दिन में होम करके उसी घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें इस प्रकार गर्भस्थापन करें तो सुशील विद्वान् दीर्घायु तेजस्वी सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे और यदि कन्या की इच्छा होतो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के एक पात्र में जमाए हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि

हो गया है ॥ अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवें * ॥

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा ॥ १ ॥ यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति । एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा ॥ २ ॥ दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि । निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ७८ । मं० ७ । ८ । ९ ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह

---

* आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ॥

यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात् शुद्ध आहार जो कि मद्यमांसादि रहित घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होता है इस लिये पूर्ण युवावस्था में विवाह कर इस प्रकार विधि कर प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल नित्यप्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते जायें जब रजस्वला होने के समय से १२—१३ दिन शेष रहें तब शुक्लपक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला के इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें और मिताहारी हो कर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम सन्तान होवें जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या हैं वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें क्योंकि इस के न होने से कुल की हानि नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है ॥

*यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जाय अर्थात् दो बार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाय गर्भस्थिति न होवे तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे तब पुष्य नक्षत्रयुक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा और यव के दाणों को सेक के पीस के दो मासा ले के इन दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में दे के उस से पति पूछे "किं पिबसि" इस प्रकार तीन वार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" इस वाक्य को तीन वार बोल के उत्तर देवे और उस का प्राशन करे इसी रीति से पुनः पुनः तीन वार विधि करना तत्पश्चात् सङ्खाहुली व भटकाई औषधी को जल में महीन पीस के उस का रस कपड़े में छान के पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिञ्चन करे और पति ।

ओ३म् यमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती ।
अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् ॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करे यह सूत्रकार का मत है

स्वाहा ॥ १ ॥ यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥ २ ॥ यजुः ० ८ । मं० २८ । २९ ॥

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ । पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा ॥ १ ॥ पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः । पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायतां स्वाहा ॥ २ ॥ सामवेदे ॥

इन मन्त्रों से आहुति दे कर पूर्व लिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति दे के पुनः २८ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे पूर्णाहुति देवे पुनः स्त्री के भोजन छादन का सुनियम करे कोई मादक मद्य आदि रेचक हरीतकी आदि क्षार अति लवणादि अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई रूक्ष चणे आदि तीक्ष्ण अधिक लालमिर्ची आदि स्त्री कभी न खावे किन्तु घृत दुग्ध मिष्ट सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि चावल मिष्ट, दधि, गेहूं, उर्द, मूंग, तुअर, आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें उस में ऋतु २ के मसाले गर्मी में ठण्ढे सफेद इलायची आदि और सरदी में केशर कस्तूरी आदि डाल कर खाया करें युक्ताहार विहार सदा किया करें दुधि में सुंठी और ब्राह्मी ओषधी का सेवन स्त्री विशेष किया करे जिस से सन्तान अति बुद्धिमान् रोगरहित शुभगुण कर्म स्वभाव वाला होवे ॥

इति गर्भाधानविधिः समाप्तः ॥

अथ पुंसवनम् ॥

—०-*-०—

पुंसवन संस्कार का समय गर्भस्थिति ज्ञान हुए समय से दूसरे वा तीसरे महीने में है उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिये जिस से पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे यावत् बालक के जन्म हुए पश्चात् दो महीने न बीत जावें तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रह कर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे भोजन छादन शयन जागरणादि व्यवहार उसी प्रकार से करे जिस से वीर्य स्थिर रहे और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे ॥

अत्र प्रमाणानि ॥

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे ॥ १ ॥
पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः ।
पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननुजायताम् ॥२॥ सामवेदे
शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम् ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि ॥ १ ॥
पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनुषिच्यते ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत् ।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह ॥ ३ ॥
अथर्व० कां० ६ । सू० । ११ ॥

इन मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिये इस में आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रमाण :—

अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति ॥ १ ॥

प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके ॥ २ ॥

गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने में वट वृक्ष की जटा वा उस की पत्ती ले के स्त्री को दक्षिण नासापुट से सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गुड़च जो गिलोय वा ब्राह्मी औषधी खिलावे ऐसा ही पारस्कर गृह्यसूत्र का प्रमाण है ॥

अथ पुंसवनं पुरास्यन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा ॥१॥

इस के अनन्तर, पुंसवन उस को कहते हैं जो पूर्व ऋतुदान दे कर गर्भस्थिति से दूसरे वा तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार किया जाता है इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी लिखा है ।

अथ क्रियारम्भः ॥

पृष्ठ ४ से १४ वें पृष्ठ के शान्तिकरण पर्यन्त कहे प्रमाणे (विश्वानि देव०) इत्यादि चारों वेदों के मंत्रों से यजमान और पुरोहितादि ईश्वरोपासना करें और जितने पुरुष वहां उपस्थित हों वे भी परमेश्वरोपासना में चित्त लगावें और पृष्ठ ८ में कहे प्रमाणे स्वस्तिवाचन तथा पृष्ठ ११ में लिखे प्रमाणे शांतिकरण करके पृष्ठ १४ में लिखे प्रमाणे यज्ञदेश, यज्ञशाला, तथा पृष्ठ १५ वें में यज्ञकुण्ड, १६ में यज्ञसमिधा होम के द्रव्य और पाकस्थाली आदि करके और पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे (अयन्त इध्म०) इत्यादि (ओं अदिते०) इत्यादि ४ चार मंत्रोक्त कर्म, और आघारावाज्यभागाहुति ४ चार तथा व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २५ में (ओं प्रजापतये स्वाहा) ॥ १ ॥ पृष्ठ २५ में (ओं यदस्य कर्मणो०) ॥ २ ॥ लिखे प्रमाणे, २ दो आहुति देकर नीचे लिखे हुए दोनों मंत्रों से दो आहुति घृत की देवे ॥

ओं आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान्बाण इवेषुधिम् । आवीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं अग्निरेतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा ॥ २ ॥

इन दोनों मंत्रों को बोल के दो आहुति किये पश्चात् एकान्त में पत्नी के हृदय पर हाथ धर के यह निम्नलिखित मंत्र पति बोले ॥

ओं यत्ते सुसीमे हृदये हितवन्तः प्रजापतौ । मन्येहं मां तद्विद्वांसमाह पौत्रमघन्नियाम् ॥

तत्पश्चात् पृष्ठ २८ में लिखे प्रमाणे सामवेद आर्चिक और महावामदेव्यगान गा के जो २ पुरुष वा स्त्री संस्कार समय पर आये हों उन को विदा कर दे पुनः बट वृक्ष के कोमल कूपल और गिलोय को महीन बांट कपड़े में छान, गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुंघावे तत्पश्चात् ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥ य० अ० १३ । मं० ४ ॥

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ २ ॥ य० अ० ३१ । मं० । १७ ॥

इन दो मंत्रों को बोल के पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय पर हाथ धर के यह मंत्र बोले ।

सुपर्णोसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छन्दाᳬस्यङ्गानि यजूᳬषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञा यज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ १ ॥ य० अ० १२ । मं० ४ ॥

इस के पश्चात् स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे विशेष कर गिलोय ब्राह्मी ओषधी और सुंठी को दूध के साथ थोड़ी २ खाया करे और अधिक शयन और अधिक भाषण अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक, हरड़ें आदि न खावे सूक्ष्म आहार करे क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे इत्यादि शुभाचरण करे ॥

इति पुंसवनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ सीमन्तोन्नयनम् ॥

—:-*-:—

अब तीसरा, संस्कार सीमन्तोन्नयन कहते हैं जिस से गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य गर्भ स्थिर उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे। इस में आगे प्रमाण लिखते हैं ॥

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम् ॥ १ ॥ आपूर्यमाणपक्षे पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् ॥ २ ॥ अथास्यै युग्मेन शलालुग्रप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः। चतुर्वा ॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र

पुंसवनवत्प्रथमे गर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा ॥

यह पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण—इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक-गृह्य सूत्र में भी लिखा है ॥

गर्भमास से चौथे महीने में शुक्लपक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो उसी दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करे और पुंसवन संस्कार के तुल्य छठे आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोन्नयनसंस्कार करें इस में प्रथम ४—२९ पृष्ठ तक का विधि करके (अदितेऽनुमन्यस्व) इत्यादि पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे वेदी से पूर्वादि दिशाओं में जल सेचन करके

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥ य० । अ० ११ । मं० ७ ॥

इस मंत्र से कुंड के चारों ओर जल सेचन करके आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार मिल के ८ आठ आहुति पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे करके

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥

अर्थात् चावल, तिल, मूंग, इन तीनों को सम भाग ले के

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥

अर्थात् धो के इन की खिचड़ी बना, उस में पुष्कल घी डाल के निम्नलिखित मंत्रों से ८ आठ आहुति देवें ॥

ओं धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवति स्वाहा ॥ इदं धात्रे । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं धाता प्रजानामुत राय ईशे धातेदं विश्वं भुवनं जजान । धाता कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे धात्र इद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा । इदं धात्रे । इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना । सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा । इदं राकायै । इदन्न मम ॥ ३ ॥ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि । ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा स्वाहा । इदं राकायै । इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० २ । सू० ३२ । मं० ४ । ५ । नेजमेष परापत सुपुत्रः पुनरापत । अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान्स्वाहा ॥ ५ ॥ यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमादधे । एवं तं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ६ ॥ विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम् । पुमांसं पुत्रानाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ७ ॥

इन सात मंत्रों से खीचड़ी की सात आहुति दे के पुनः (प्रजापते न त्व०) पृष्ठ २६ में लिखित इस से एक, सब मिला के ८ आठ आहुति देवे और पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे (ओं प्रजापतये०) मंत्र से एक भात की और पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे (ओं यदस्यकर्मणो०) मंत्र से एक खीचड़ी की आहुति देवे॥ तत्पश्चात् "ओं त्वन्नो अग्ने०" पृष्ठ २६—२७ में लिखे प्रमाणे ८ आठ घृत की आहुति और "ओं भूरग्नये०" पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे ४ चार व्याहृति मंत्रों से चार आज्याहुति देकर पति और पत्नी एकान्त में जा के उत्तमासन पर बैठ पति पत्नी के पश्चात् पृष्ठ की ओर बैठ—

ओं सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥१॥ य० अ० ६। मं० २२॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥२॥ य० अ० ७। मं० २४॥

ओं अयमूर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनी भव। पर्णं वनस्पते नुत्वा नुत्वा सूयताꣳ रयिः॥ ३ ॥ ओं येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय। तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि॥ ४ ॥ ओं राकामहꣳ सुहवाꣳ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु। उपार्गाहि सहस्रपोषꣳ सुभगे रराणा॥ ५ ॥ ओं किंपतत्मना सीव्यत्वपः सूच्या छिद्यमानया ददातु वीरꣳ शतदायमुक्थ्यम्॥ ६ ॥ ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमनाऽउपागहि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः॥७॥

इन मंत्रों को पढ़ के पति अपने हाथ से स्वपत्नी के केशों में सुगन्ध तैल डाल कंघे से सुधार हाथ में उदुंबर अथवा अर्ज्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा

की मृदु छीपी वा शाही पशु के कांटे से अपनी पत्नी के केशों को स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछे की ओर जूड़ा सुन्दर बांध कर यज्ञशाला में आवें—उस समय वीणा आदि बाजे बजवावे, तत्पश्चात् पृष्ठ २८—२९ में लिखे प्रमाणे सामवेद का गान करें पश्चात्

ओं सोम ऽएव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः। अविमुक्त चक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यं असौ * ॥

आरंभ में इस मंत्र का गान करके पश्चात् अन्य मंत्रों का गान करें तत्पश्चात् पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खीचड़ी में पुष्कल घृत डाल के गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे उस समय पति स्त्री से पूछे "किं पश्यसि" स्त्री उत्तर देवे "प्रजां पश्यामि,, तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध कुलीन सौभाग्यवती पुत्रवती गर्भिणी अपने कुल की और ब्राह्मणों की स्त्रियां बैठें प्रसन्नवदन और प्रसन्नता की बातें करें और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे और वे वृद्ध समीप बैठीं हुईं उत्तम स्त्री लोग ऐसा आशीर्वाद देवें ॥

ओं वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव ॥

ऐसे शुभ मांगलिक वचन बोलें तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथायोग्य सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को विदा करें ॥

इति सीमन्तोन्नयनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

* यहां किसी नदी का नामोच्चारण करे ।

अथ जातकर्मसंस्कारविधिः ॥

—:-*-:—

इस का समय और प्रमाण और कर्मविधि इस प्रकार करें ॥

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति ॥

इत्यादि पारस्कर गृह्यसूत्र का प्रमाण है इसी प्रकार आश्वलायन गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी लिखा है ॥

जब प्रसव होने का समय आवे तब निम्नलिखित मंत्र से गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करे—

ओं एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥ य० अ० ८ । मं० २८ ॥

इस से मार्जन करने के पश्चात् ॥

ओं अवैतु पृश्निशेवलꣳशुभे जराय्वत्तवे । नैव मांꣳसेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमव जरायु पद्यताम् ॥

इस मंत्र का जप करके पुनः मार्जन करे ॥

कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्ययेन प्राशयेत् ॥

जब पुत्र का जन्म होवे तब प्रथम दायी आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख नासिका कान आंख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर पिता के गोद में बालक को देवे पिता जहां वायु और शीत का प्रवेश न हो वहां बैठ के एक बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांध के उस बंधन के ऊपर से नाड़ीछेदन करके किंचित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा शुद्ध वस्त्र से पूंछ नवीन शुद्ध वस्त्र पहिना जो प्रसूता घर

के बाहर पूर्वोक्त प्रकार कुण्ड कर रक्खा हो अथवा तांबे के कुंड में समिधा पूर्वलिखित प्रमाणे चयन कर पूर्वोक्त सामान्य विध्युक्त पृष्ठ २२—२३ में कहे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करके सुगन्धित घृतादि वेदी के पास रख के हाथ पग धो के एक पीठासन अर्थात् शुभासन पुरोहित * के लिये कुंड के दक्षिणभाग में रक्खे उस पर उत्तराभिमुख बैठे और यजमान अर्थात् बालक का पिता हाथ पग धो के वेदी के पश्चिम भाग में आसन बिछा उस पर उपवस्त्र ओढ़ के पूर्वाभिमुख बैठे तथा सब सामग्री अपने और पुरोहित के पास रख के पुरोहित पद के स्वीकार के लिये बोले :—

ओम् आ वसोः सदने सीद ॥

तत् पश्चात् पुरोहित :—

ओं सीदामि ॥

बोल के आसन पर बैठ के पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे "अयन्त इध्म०" ३ मंत्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे और प्रदीप्त समिधा पर पूर्वोक्त सिद्ध किये घी की पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति देनी तत् पश्चात् :—

ओं या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति । तां त्वा घृतस्य धारया यजे सꣳराधनीमहम् । सꣳराधन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा । इदं संराधिन्यै । इदन्न मम ॥ ओं विपश्चित्पुच्छमभरत्तद्धाता पुनराहरत् । परे हि त्वं विपश्चित्पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा । इदं धात्रे । इदन्न मम ॥

इन दोनों मंत्रों से दो आज्याहुति करके पृष्ठ २८—२९ में लिखे प्रमाणे वामदेव्य गान करके ४—८ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करे तत् पश्चात् घी और मधु दोनों बराबर मिला के जो प्रथम सोने की शलाका कर रक्खी हो उस से बालक की जीभ पर ॥

*धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि को पूर्णरीति से जानने हारा विद्वान् सद्धर्मी कुलीन निर्व्यसनी सुशील वेदप्रिय पूजनीय सर्वोपकारी गृहस्थ की पुरोहित सञ्ज्ञा है ।

"ओ३म्"

यह अक्षर लिख के उस के दक्षिण कान में "वेदोसीति" तेरा गुप्त नाम वेद है ऐसा सुना के पूर्व मिलाये हुए घी और मधु को उस सोने की शलाका से बालक को नीचे लिखे मन्त्र से थोड़ा २ चटावे :—

ओं प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूतं मघोनाम् । आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन् ॥ १ ॥ ओं भूस्त्वयि दधामि ॥ २ ॥ ओं भुवस्त्वयि दधामि ॥ ३ ॥ ओं स्वस्त्वयि दधामि ॥ ४ ॥ ओं भूर्भुवःस्वस्सर्वं त्वयि दधामि ॥५॥ ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥ ६ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से सात बार घृत मधुप्राशन कराके तत्पश्चात् चावल और जव को शुद्ध कर पानी से पीस वस्त्र से छान एक पात्र में रख के हाथ के अंगूठा और अनामिका से थोड़ा सा ले के :—

ओम् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम् ।

इस मन्त्र को बोल के बालक के मुख में एक बिंदु छोड़ देवे यह एक गोभिलीय गृह्यसूत्र का मत है सब का नहीं पश्चात् बालक का पिता बालक के दक्षिण कान में मुख लगा के निम्नलिखित मन्त्र बोले :—

ओं मेधान्ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती । मेधान्ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ १ ॥ ओं अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥२॥ ओं सोमऽआयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्माँस्तेन० * ॥ ३ ॥ ओं ब्रह्मऽ आयुष्मत् तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन० ॥ ४ ॥ ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन० ॥ ५ ॥ ओं ऋषय आयुष्मन्तस्ते

* यहां पूर्व मन्त्र का शेषभाग (त्वा०) इत्यादि उत्तर मन्त्रों के पश्चात् बोलें ॥

व्रतैरायुष्मन्तस्तेन० ॥ ६ ॥ ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन ॥ ७ ॥ ओं यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन० ॥ ८ ॥ ओं समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ९ ॥

इन नव मन्त्रों का जप करे इसी प्रकार, बायें कान पर मुख धर ये ही नव मन्त्र पुनः जपे इस के पीछे बालक के कन्धों पर कोमल स्पर्श से हाथ धर अर्थात् बालक के स्कन्धों पर हाथ का बोझा न पड़े धरके निम्नलिखित मन्त्र बोलेः—

ओं इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ १ ॥ अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः। अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ २ ॥ ओं अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों को बोले तत्पश्चात् :—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र का तीन बार जप करे तत्पश्चात् बालक के स्कन्धा पर से हाथ उठा ले और जिस जगह पर बालक का जन्म हुआ हो वहां जा के :—

ओं वेद ते भूमिहृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र का जप करे तथा :—

यत्ते सुसीमे हृदय२हितमन्तः प्रजापतौ । वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ २ ॥ यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदामृतस्येह नाममाहं पौत्रमघ२रिषम् ॥ ३ ॥ इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती । यथायन्न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि ॥ ४ ॥ यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदय२श्रितम् । तदहं विद्वा२स्तत्पश्यन् माहं पौत्रमघ२रुदम् ॥ ५ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ सुगन्धित जल से प्रसूता के शरीर का मार्जन करे ॥

कोसि कतमोस्येषोस्यमृतोसि । आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥ ६ ॥ स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वा-होरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रेत्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्स-राय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ ॥ ७ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के बालक को आशीर्वाद देवे पुनः—

अङ्गादङ्गात्स२स्रवसि हृदयादधिजायसे । प्राणन्ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम् ॥ ८ ॥ अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे । वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ ९ ॥ अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव । आत्मासि पुत्र मामृथाः स जीव शरदः शतम् ॥ १० ॥ पशूनां त्वा हिंकारेणाभिजिघ्राम्यसौ ॥ ११ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पुत्र के शिर का आघ्राण करे अर्थात् सूंघे इसी प्रकार जब २ परदेश से आवे वा जावे तब २ भी इस क्रिया को करे जिस से पुत्र और पिता माता में अतिप्रेम बढ़े ॥

ओं इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः । सा त्वं वीरवती भव यास्मान्वीरवतोऽकरत् ॥ १ ॥

इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करके प्रसूता स्त्री को प्रसन्न करके पश्चात् स्त्री के दोनों स्तन किंचित् उष्ण सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर पोंछ के :—

ओं इमꣳस्तनमूर्ज्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने शरीरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमा विशस्व ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवे इस के पश्चात् :—

ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वती तमिह धातवे कः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के वाम स्तन बालक के मुख में देवे तत्पश्चात्—

ओं आपो देवेषु जागृथ यथा देवेषु जागृथ। एवमस्याꣳ सूतिकायाꣳ सपुत्रिकायां जागृथ ॥ १ ॥

इस मन्त्र से प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भर के दश रात्रि तक वहीं धर रक्खे तथा प्रसूता स्त्री प्रसूतस्थान में दश दिन तक रहे वहां नित्य सायं और प्रातःकाल सन्धिवेला में निम्नलिखित दो मन्त्रों से भात और सरसों मिला के दश दिन तक बराबर आहुतियां देवे ॥

ओं शण्डामर्काउपवीरः शौण्डिकेयऽउलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा। इदं शण्डामर्काउपवीराय, शौण्डिकेयायोलूखलाय, मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनोनश्यतादितेभ्यश्च। इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं आलिखन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रुतिः। हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा। इदमालिखन्ननिमिषाय किंवदद्भ्य उपश्रुत हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय। इदन्न मम ॥ २ ॥

इन मन्त्रों से १० दिन तक होम करके पश्चात् अच्छे २ विद्वान् धार्मिक वैदिक मत वाले बाहर खड़े रह कर और बालक का पिता भीतर रह कर आशीर्वाद रूपी नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ आनन्दित हो के करें, ।

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः । अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ अथर्व० कां० ६ । अनु० ४ । सू० ४१ । इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् । शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १२ । अ० २ । मं० २३ । विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः । इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ३ ॥ अथर्व० कां० १८ । अनु० ३ । मं० ६१ ॥

इति जातकर्मसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ नामकरणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

——:-*-:-*-:-*-:——

अत्र प्रमाणम् । नाम चास्मै दद्युः ॥ १ ॥ घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम् ॥ २ ॥ चतुरक्षरं वा ॥ ३ ॥ द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ४ ॥ युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥ ५ ॥ अयुजानि स्त्रीणाम् ॥ ६ ॥ अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विदध्यातामोपनयनात् ॥ ७ ॥ इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु ॥

दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं कुर्यान्न तद्धितमयुजाक्षरमाकारान्तꣳस्त्रियै शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्य सूत्र में भी लिखा है—

नामकरण अर्थात् जन्मे हुए बालक का सुन्दर नाम धरे नामकरण का काल जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ११ में वा० १०१ एकसौ एकवें अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अतिप्रसन्नता से इष्ट मित्र हितैषी लोगों को बुला यथावत्सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान बालक का पिता और ऋत्विज करें पुनः पृष्ठ ४—२९ में लिखे प्रमाणे सब मनुष्य ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण और सामान्यप्रकरणस्थ संपूर्णविधि करके आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २६-----२७ मे लिखे प्रमाणे (त्वन्नो अग्ने०) इत्यादि आठ मन्त्रों से ८ आठ आहुति अर्थात् सब मिला के १६ घृताहुतीं करें तत्पश्चात् बालक को शुद्ध स्नान करा

शुद्ध वस्त्र पहिना के उस की माता कुंड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा में रख के बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे हो कर उत्तर भाग में पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग करके अपनी पत्नी को देवे पश्चात् जो उसी संस्कार के लिये कर्तव्य हो उस प्रथम प्रधान होम को करें पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब साकल्य सिद्ध कर रक्खे उस में से प्रथम घी का चमसा भर के—

(ओं प्रजापतये स्वाहा)

इस मन्त्र से एक आहुति दे कर पीछे जिस तिथि जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके, उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से ४ चार आहुतीं देनी अर्थात् एक तिथि दूसरी तिथि के दे.ता तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से अर्थात् तिथि नक्षत्र और उन के देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोल के ४ चार घी की आहुति देवे जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तोः--

ओं प्रतिपदे स्वाहा । ओं ब्रह्मणे स्वाहा । ओं अश्विन्यै स्वाहा । ओं अश्विभ्यां स्वाहा * ॥

तत्पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखी हुई स्विष्टकृत मन्त्र से एक आहुति और पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे ४ चार व्याहुति आहुति दोनों मिल के ५ आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसन पर बैठे और पिता बालक के नासिका द्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके—

* तिथि देवताः १—ब्रह्मन् । २—त्वष्टृ । ३—विष्णु । ४—यम । ५—सोम । ६—कुमार । ७—मुनि । ८—वसु । ९—शिव । १०—धर्म । ११—रुद्र । १२—वायु । १३—काम । १४—अनन्त । १५—विश्वेदेव । ३०—पितर ॥

नक्षत्र देवताः ॥ अश्विनी—अश्वी । भरणी—यम । कृत्तिका—अग्नि । रोहिणी—प्रजापति । मृगशीर्ष सोम । आर्द्रा—रुद्र । पुनर्वसु—अदिति । पुष्य—बृहस्पति । आश्लेषा—सर्प । मघा—पितृ । पूर्वा—फल्गुनी—भग । उत्तराफल्गुनी—अर्यमन् । हस्त—सवितृ । चित्रा—त्वष्टृ । स्वाति—वायु । विशाखा—इन्द्राग्नी । अनुराधा—मित्र । ज्येष्ठा—इन्द्र । मूल—निर्ऋति । पूर्वाषाढा । अप् । उत्तराषाढा—विश्वेदेव । श्रवण—विष्णु । धनिष्ठा—वसु । शतभिषज्—वरुण । पूर्वाभाद्रपदा—अजपाद । उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य । रेवती—पूषन् ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि यस्य ते नामामन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳪं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ यजुः अ० ७ । मं० २९ ॥

(ओं कोऽसि कतमोऽस्येषोस्यमृतोऽसि । आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ)

जो यह "असौ" पद है इस के पीछे बालक का ठहराया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षर का वा चार अक्षर का घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो २ अक्षर छोड़ के तीसरा, चौथा, पांचवां और य, र, ल, व, ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें* जैसे देव अथवा जयदेव ब्राह्मण हो तो देवशर्म्मा क्षत्रिय हो तो देववर्म्मा वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि नामों को प्रसिद्ध बोल के पुनः "असौ" पद के स्थान में बालक का नाम धर के पुनः "ओं कोसि०" ऊपर लिखित मन्त्र बोलना----

ओं स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्त्तुभ्यः परिददत्त्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु, असौ ॥

* ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, ये स्पर्श और य, र, ल, व, ये चार अन्तःस्थ और ह एक ऊष्मा, इतने अक्षर नाम में होने चाहिये और स्वरों में से कोई भी स्वर हो जैसे (भद्रः, भद्रसेनः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः) इत्यादि पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिये, तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खे अन्त्य में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त भी होवे, जैसे (श्रीः, ह्रीः, यशोदा, सुखदा, गान्धारी, सौभाग्यवती, कल्याणक्रोडा) इत्यादि परन्तु स्त्रियों के जिस प्रकार के नाम कभी न रक्खे उस में प्रमाण (नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ १ ॥ मनुस्मृतौ । (ऋक्ष) रोहिणी, रेवती, इत्यादि (वृक्ष) चम्पा, तुलसी, इत्यादि (नदी) गंगा, यमुना, सरस्वती, इत्यादि (अन्त्य) चांडाली, इत्यादि (पर्वत) विंध्याचला' हिमालया, इत्यादि (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि "अहि" सर्पिणी, नागी, इत्यादि "प्रेष्य" दासी, किंकरी, इत्यादि "भयंकर" भीमा, भयंकरी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं ॥

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवे इस प्रमाणे बालक का नाम रख के संस्कार में आये हुए मनुष्यों को वह नाम सुना के पृष्ठ २८—२९ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्यगान करे तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पृष्ठ ४—७ में लिखे प्रमाणे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करके बालक को आशीर्वाद देवें कि—

"हे बालक! त्वमायुष्मान् वर्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः,,

हे बालक! आयुष्मान् विद्यावान् धर्मात्मा यशस्वी पुरुषार्थी प्रतापी परोपकारी श्रीमान् हो ॥

इति नामकरणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ निष्क्रमणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

—:-*-:—

निष्क्रमण संस्कार उस को कहते हैं कि जो बालक को घर से जहां का वायुस्थान शुद्ध हो वहां भ्रमण कराना होता है उस का समय जब अच्छा देखे तभी बालक को बाहर घुमावें अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें इस में प्रमाण—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति ॥

यह आश्वलायनगृह्य सूत्र का वचन है ॥

जननाद्यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम् ॥

यह पारस्करगृह्यसूत्र में भी है ॥

अर्थ :—निष्क्रमण संस्कार के काल के दो भेद हैं एक बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्लपक्ष की तृतीया और दूसरा चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि में यह संस्कार करे—

उस संस्कार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिनावे पश्चात् बालक को यज्ञशाला में बालक की माता ले आ के पति के दक्षिण पार्श्व में हो कर पति के सामने आ कर बालक का मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रख के पति हाथ में देवे पुनः पति के पीछे की ओर घूम के बायें पार्श्व में पश्चिमाभिमुख खड़ी रहे—

ओं यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ। वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ १ ॥ ओं यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदामृतस्याह नाममाहं पौत्रमघꣳ रिषम् ॥ २ ॥ ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती। यथायन्न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करके पृष्ठ ४—२९ लिखे प्रमाणे परमेश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण आदि सामान्य प्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्र को देख के इन निम्नलिखित तीन मन्त्रों से पुत्र के शिर को स्पर्श करे ॥

ओं। अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ १ ॥ ओं प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि । सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ २ ॥ गवां त्वा हिंकारेणावजिघ्रामि । सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥

तथा निम्नलिखित मन्त्र बालक के दक्षिण कान में जपे

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः । अस्मे शतꣳ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १ ॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे । पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ २ ॥

इस मन्त्रों को वाम कान में जप के पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके स्त्री के शिर का स्पर्श करे तत्पश्चात् आनन्द पूर्वक उठ के बालक को सूर्य का दर्शन करावे और निम्नलिखित मन्त्र वहां बोले—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के थोड़ासा शुद्ध वायु में भ्रमण करा के यज्ञशाला में ला, सब लोग—

त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ॥

इस वचन को बोल के आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुए स्त्रियों और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब बालक की माता लड़के को शुद्ध वस्त्र पहिना दाहिनी ओर से आगे आ के पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवें और बालक की माता दाहिनी ओर से लौट कर बाईं ओर आ अंजलि भर के चन्द्रमा के सन्मुख खड़ी रह के—

ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳ श्रितम् ।
तदहं विद्वाꣳस्तत्पश्यन्माहं पौत्रमघꣳ रुदम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे तत्पश्चात् बालक की माता पुनः पति के पृष्ठ की ओर से पति के दाहिने पार्श्व से सन्मुख आ के पति से पुत्र को लेके पुनः पति के पीछे होकर बाईं ओर आ बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रख के खड़ी रहे और बालक का पिता जल की अंजली भर (ओं यददश्च०) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ के दोनों प्रसन्न हो कर घर में आवें ॥

इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथान्नप्राशनविधिं वक्ष्यामः ॥

——:-*-:-*-:-*-:——

अन्नप्राशन संस्कार तभी करे जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे ॥ इस में आश्वलायनगृह्यसूत्र का प्रमाण ।

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् ॥ १ ॥ घृतौदनं तेजस्कामः ॥ २ ॥

दधिमधुघृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत् ॥ ३ ॥

इसी प्रकार पारस्करगृह्यसूत्रादि में भी है ॥

छठे महीने बालक को अन्नप्राशन करावे जिस को तेजस्वी बालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दही सहत और घृत तीनों भात के साथ मिला के निम्नलिखित विधि से अन्नप्राशन करावे अर्थात् पूर्वोक्त पृष्ठ ४—२९ में कहे हुए संपूर्ण विधि को करके जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उसी दिन यह संस्कार करे और निम्न लिखे प्रमाणे भात सिद्ध करे ॥

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । ओं अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० । ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥

इन पांच मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि चावलों को धो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डाल देना जब अच्छे प्रकार पक जावें तब उतार थोड़े ठण्ढे हुए पश्चात् होमस्थाली में—

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं निवर्पामि । ओम् अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० । ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥५॥

इन पांच मन्त्रों से कार्यकर्त्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों को पात्र में पृथक् २ देके पृष्ठ २२---२३ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधानादि करके प्रथम आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार मिल के ८ आठ घृत की आहुति देके पुनः उस पकाये हुए भात की आहुति नीचे लिखे हुए मन्त्रों से देवे ॥

दे॒वीं वाच॑मजनयन्त दे॒वास्तां वि॒श्वरू॑पाः प॒शवो॑ वदन्ति ।
सा नो॑ म॒न्द्रेष॒मूर्ज॒ं दुहा॑ना धे॒नुर्वाग॒स्मानुप॒सुष्टु॒तैतु॒ स्वाहा॑ ॥

इदं वाचे । इदन्न मम ॥ १ ॥ वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयᳫं स्वाहा । इदं वाचे वाजाय । इदन्न मम ॥ २ ॥

इन दो मन्त्रों से दो आहुति देवें तत्पश्चात् उसी भात में और घृत डाल के—

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा । इदं प्राणाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अपानेन गन्धानमशीय स्वाहा । इदमपानाय इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा । इदं चक्षुषे । इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा । इदं श्रोत्राय । इदन्न मम ॥ ४ ॥

इन मन्त्रों से चार आहुति देके (ओंयदस्य कर्मणो०) पृष्ठ २५ में लि० स्विष्टकृत् आहुति एक देवे तत्पश्चात् पृष्ठ २५ में लि० व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २६—२७ में लिखे (ओं त्वन्नो०) इत्यादि से ८ आठ आज्याहुति मिल के १२ बारह आहुति देवे । उस के पीछे आहुति से बचे हुए भात में दही मधु और उस में घी यथायोग्य किंचित् २ मिला के और सुगन्धियुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़े से मिला के बालक के रुचि प्रमाणे—

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के थोड़ा २ पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे यथारुचि खिला बालक का मुख धो और अपने हाथ धो के पृष्ठ २८—२९ में लि० महावामदेव्यगान करके जो बालक के माता पिता और अन्य वृद्ध स्त्री पुरुष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना कर के—

त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः

इस वाक्य से बालक को आशीर्वाद देके पश्चात् संस्कार में आये हुए पुरुषों का सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का सत्कार बालक की माता कर के सब को प्रसन्नतापूर्वक विदा करें ॥

इत्यन्नप्राशनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ चूड़ाकर्मसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

—:-*-:-*-:-*-:—

यह आठवां संस्कार चूड़ाकर्म है जिस को केशछेदन संस्कार भी कहते हैं। इस में आश्वलायन गृह्यसूत्र का मत ऐसा है—

तृतीये वर्षे चौलम् ॥ १ ॥ उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां शरावाणि निदधाति ॥ २ ॥

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादि में भी है ॥

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम् ॥

इसी प्रकार गोभिलीय गृह्यसूत्र का भी मत है, यह चूड़ाकर्म अर्थात् मुंडन बालक के जन्म से तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना उत्तरायणकाल शुक्ल पक्ष में जिस दिन आनन्द मंगल हो उस दिन यह संस्कार करें। विधि :—

आरम्भ में पृष्ठ ४—२६ में लिखित विधि करके चार शरावे ले एक में चावल दूसरे में यव तीसरे में उर्द और चौथे शरावे में तिल भर के वेदी के उत्तर में धर देवे धर के पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे "ओं अदितेऽनुमन्यस्व०" इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीन बाजू और पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे "ओं देव सवितः प्रसुव०" इस मन्त्र से कुंड के चारों ओर जल छिटका के पूर्व पृष्ठ २२—२३ में लिखित अग्न्याधान समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करके जो समिधा प्रदीप्त हुई हो उस पर लक्ष दे कर पृष्ठ २५ में आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २६—२७ में लि० आठ आज्याहुति सब मिल के सोलह १६ आहुति देके पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे "ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०" इत्यादि मन्त्रों से चार आज्याहुति प्रधान होम की देके पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ चार और स्विष्टकृदग्निमन्त्र से एक आहुति मिल के पांच घृत की आहुति देवे इतनी क्रिया करके कर्मकर्ता परमात्मा का ध्यान करके नाई की ओर प्रथम देख के—

ओं आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि। आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥ १ ॥ अथर्व० कां० ६। सू० ६८ ॥

इस मन्त्र का जप करके पिता बालक के पृष्ठभाग में बैठ के किञ्चित् उष्ण और किञ्चित् ठण्ढा जल दोनों पात्रों में लेके (उष्णेनवायउदकेनैधि) इस मन्त्र को बोल के दोनों पात्र का जल एक पात्र में मिला देवे पश्चात् थोड़ा जल थोड़ा मांखन अथवा दही की मलाई लेके--

ओं अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा। चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥१॥ अथर्व० कां० ६। सू० ६८॥

ओं सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उदन्तु। ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को बोल के बालक के शिर के वालों में तीन वार हाथ फेर के केशों को भिगोवे तत्पश्चात् कंगा ले के केशों को सुधार के इकट्ठा करे अर्थात् विखरे न रहैं तत्पश्चात् (ओं ओषधे त्रायस्वैनꣳ मैनꣳ हिꣳसीः) इस मन्त्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबा के (ओं विष्णोर्दꣳष्ट्रोसि) इस मंत्र से छुरे की ओर देख के--

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मामा हिꣳसीः।

इस मंत्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवे तत्पश्चात्--

ओं स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥

ओं निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के उस छुरे और उन कुशाओं को केशों के समीप ले जाके--

ओं येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ अथर्व० कां० ६। सू० ६८।

इस मन्त्र को बोल के कुशसहित उन केशों को काटे * और वे काटे हुए केश और दर्भ शमी वृक्ष के पत्र सहित अर्थात् यहां शमी वृक्ष के पत्र भी प्रथम से रखने चाहिये उन सब को लड़के का पिता और लड़के की मा एक शरावा में रक्खे और कोई केश छेदन करते समय उड़ा हो उस को गोबर से उठा के शरावा में अथवा उस के पास रक्खे तत्पश्चात् इसी प्रकार—

ओं येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् । तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥

इस मन्त्र से दूसरी बार केश का समूह दूसरी ओर का काट के उसी प्रकार शरावा में रक्खे तत्पश्चात्—

ओं येन भूयश्च रात्र्यां ज्योक् च पश्याति सूर्यम् । तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥

इस मन्त्र से तीसरी बार उसी प्रकार केशसमूह को काट के उपरि उक्त तीन मन्त्रों अर्थात् "ओं येनावपत्०" "ओं येन धाता०" "ओं येन भूयश्च०" और—

येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय ॥

इस एक इन चार मंत्रों को बोल के चौथी बार इसी प्रकार केशों के समूहों को काटे अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने का विधि पूर्ण हुए पश्चात् बाईं ओर के केश काटने का विधि करे तत्पश्चात् उस के पीछे आगे के केश काटे परन्तु चौथी बार काटने में "येन पूषा०" इस मन्त्र के बदले—

ओं येन भूरिश्चरादिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥१॥

यह मन्त्र बोल छेदन करे तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥

* केश छेदन की रीति ऐसी है कि दर्भ और केश दोनों युक्ति से पकड़ कर अर्थात् दोनों ओर से पकड़ के बीच में से केशों को छुरे से काटे यदि छुरे के बदले कैंची से काटें तो भी ठीक है ॥

इस एक मन्त्र को बोल के शिर के पीछे के केश एक बार काट के इसी (ओं त्र्यायुषं०) मन्त्र को बोलते जाना और औंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेर के मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में दे के—

ओं यत् क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान् ।
शुन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः ॥

इस मन्त्र को बोल के नापित से पथरी पर छुरे की धार तेज करा के नापित से बालक का पिता कहे कि इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजो सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर कर कहीं छुरा न लगने पावे इतना कह के कुंड से उत्तर दिशा में नापित को ले जा, उस के सन्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठा के जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे परन्तु पांचों ओर थोड़ा २ केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे अथवा एक बार सब कटवा देवे पश्चात् दूसरी वार के केश रखने अच्छे होते हैं जब क्षौर हो चुके तब कुंड के पास पड़ा वा धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ वा शरावा आदि कि जिन में प्रथम अन्न भरा था नापित को देवे और मुंडन किये हुए सब केश दर्भ शमीपत्र और गोबर नाई को देवे यथायोग्य उस को धन वा वस्त्र भी देवे और नाई केश दर्भ शमीपत्र और गोबर को जंगल में ले जा गढ़ा खोद के उस में सब डाल ऊपर से मट्टी से दाब देवे अथवा गोशाला नदी वा तालाव के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाढ़ देवे ऐसा नापित से कह दे अथवा किसी को साथ भेज देवे वह उस से उक्त प्रकार करा लेवे—क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तम वस्त्र पहिना के बालक को पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ २८—२९ में० सामवेद का महावामदेव्यगान करके बालक की माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ॥

इस मन्त्र को बोल बालक को आशीर्वाद दे के अपने २ घर को पधारें और बालक के माता पिता प्रसन्न हो कर बालक को प्रसन्न रक्खें ॥

इति चूडाकर्म्मसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ कर्णवेधसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

—:-*-:-*-:-*-:—

अत्र प्रमाणम्—कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा ॥ १ ॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है। बालक के कर्ण वा नासिका के वेध का समय जन्म से तीसरे वा पांचवें वर्ष का उचित है जो दिन कर्ण वा नासिका के वेध का ठहराया हो उसी दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालंकार धारण करा के बालक की माता यज्ञशाला में लावे पृष्ठ ४–२७ तक में लिखा हुआ सब विधि करे और उस बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धर के—

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

इस मन्त्र को पढ़ के चरक सुश्रुत वैदिक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से कर्ण वा नासिका वेध करावें कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान और—

वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना।
योषेव सिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥

इस मन्त्र को पढ़ के दूसरे वाम कर्ण का वेध करे तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे कि जिस से छिद्र पूर न जावें और ऐसी ओषधी उस पर लगावे जिस से कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें ॥

इति कर्णवेधसंस्कारविधिः समाप्तः ॥ ९ ॥

अथोपनयन * संस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

—— :-*-:-*-:-*-: ——

अत्र प्रमाणानि—अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥१॥ गर्भाष्टमे वा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥ ३ ॥ द्वादशे वैश्यम् ॥४॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालः ॥५॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥६॥

यह आश्वलायन गृह्य सूत्र का प्रमाण है इसी प्रकार पारस्करादि गृह्य सूत्रों का भी प्रमाण है ॥

अर्थः—जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उस से ८ आठवें वर्ष में ब्राह्मण के, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें, तथा ब्राह्मण के १६ सोलह क्षत्रिय के २२ बाईस और वैश्य के बालक का २४ चौबीस से पूर्व २ यज्ञोपवीत चाहिये यदि पूर्वोक्त काल में इन का यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित माने जावें ॥

श्लोकः—ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ १ ॥

यह मनुस्मृति का वचन है कि जिस को शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पाचवें क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें, परन्तु यह बात तब संभव है कि जब बालक की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे, उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठबुद्धि और शीघ्र समर्थ बढ़ने वाले होते हैं जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब यह पढ़ने के योग्य हुआ, तभी यज्ञोपवीत करा देवें—

* उप नाम समीप नयन अर्थात् प्राप्त करना वा होना ॥

यज्ञोपवीत का समय—उत्तरायण सूर्य और

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम् । शरदि वैश्यम् । सार्वकालमेके

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ।

अर्थः—ब्राह्मण का वसंत, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करें अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है और इस का प्रातः काल ही समय है ॥

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः

यह शतपथब्राह्मण का वचन है—

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उस से तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक बार वा अनेकबार दुग्धपान, क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कि कढ़ी होती है वैसी बना कर पिलावें और (आमिक्षा) अर्थात् जिस को श्रीखण्ड वा सिखण्ड कहते हैं जो दही चौगुना दूध एक गुना तथा यथायोग्य खांड़ केशर डाल के कपड़े में छान कर बनाया जाता है उस को वैश्य का लड़का पी के व्रत करे अर्थात् जब २ लड़कों को भूंख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीवें ॥

विधिः—अब जिस दिन उपनयन करना हो उस के पूर्व दिन में सब सामग्री इकट्ठी कर याथातथ्य शोधन आदि कर लेवे और उस दिन पृष्ठ ४—१९ वें तक सब कुण्ड के समीप सामग्री धर प्रातःकाल बालक का क्षौर करा शुद्ध जल से स्नान करा के उत्तम वस्त्र पहिना यज्ञमण्डप में पिता वा आचार्य्य बालक को मिष्ठान्नादि का भोजन करा के वेदी के पश्चिमभाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावे और बालक का पिता और पृष्ठ २१ में लि० ऋत्विज् लोग भी पूर्वोक्त प्रकार अपने २ आसन पर बैठ यथावत् आचमनादि क्रिया करें ॥

पश्चात् कार्य्यकर्त्ता बालक के मुख से

ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्मचार्यसानि,

ये वचन बुलवा के * आचार्य्य--

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्य्यदधादमृतम् । तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनावे पश्चात् बालक आचार्य्य के सन्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१॥

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को बोल के आचार्य बायें स्कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल दहने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दहिने ओर साथ बैठा के ईश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण का पाठ करके समिदाधान अग्न्याधान कर, (ओं अदितेऽनुमन्यस्व०) इत्यादि पूर्वोक्त चार मन्त्रों से पूर्वोक्त रीति से कुण्ड के चारों ओर जल छिट का पश्चात् आज्याहुति करने का आरम्भ करना ॥

वेदी में प्रदीप्त हुई समिधा को लक्ष में धर चमसा में आज्यस्थाली से घी ले, आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार तथा पृष्ठ २६–२७ में आज्याहुति ८ तीनों मिल के १६ सोलह घृत की आहुति देके पश्चात् बालक के हाथ से प्रधान होम जो विशेष शाकल्य बनाया हो उस की आहुतियां निम्नलिखित मन्त्रों से दिलानी, (ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि०) पृष्ठ २६—२७ में० ४ चार आज्याहुति देवे तत्पश्चात्—

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि—स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं वायो व्रतपते०† स्वाहा ॥ इदं वायवे०

(*) आचार्य, उस को कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जानने हारा छल कपट रहित अतिप्रेम से सब को विद्या का दाता परोपकारी तन मन और धन से सब को सुख बढ़ाने में तत्पर महाशय पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सब का हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे।

† इस के आगे व्रतं चरिष्यामि इत्यादि संपूर्ण मन्त्र बोलना चाहिये।

इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं सूर्य व्रतपते०—स्वाहा ॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं चन्द्र व्रतपते०—स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं व्रतानां व्रतपते०—स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये—इदन्न मम ॥ ५ ॥

इन पांच मन्त्रों से पांच आज्याहुति दिलानी उस के पीछे पृष्ठ २५ में० व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २५ में० स्विष्टकृत् आहुति १ एक और पृष्ठ २६ में० प्राजापत्याहुति १ एक ये सब मिल के छः घृत की आहुति देनी, सब मिल के १५ पन्द्रह आहुति बालक के हाथ से दिलानी उस के पश्चात् आचार्य्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बालक आचार्य्य के सन्मुख पश्चिम में मुख करके बैठे तत्पश्चात् आचार्य्य बालक की ओर देख के—

ओं आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमर्त्यं युयोतन । अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र का जप करे ॥

माणवकवाक्यम् "ओम् ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व" आचार्योक्तिः—"को * नामासि" बालकोक्तिः "एतन्नामास्मि" †

तत्पश्चात्—

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥ १ ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों को पढ़ के बटुक की दक्षिण हस्ताञ्जली शुद्धोदक से भरनी तत्पश्चात् आचार्य अपनी हस्ताञ्जली भर के—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमम् । तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥

---

* तेरा नाम क्या है ऐसा पूछना । † मेरा यह नाम है ।

इस मन्त्र को पढ़ के आचार्य अपनी अञ्जली का जल बालक की अञ्जली में छोड़ के बालक की हस्ताञ्जली अङ्गुष्ठसहित पकड़ के—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ * ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के बालक की हस्ताञ्जली का जल नीचे पात्र में छुड़ा देना इसी प्रकार दूसरीबार अर्थात् प्रथम आचार्य अपनी अञ्जली भर बालक की अञ्जली में अपनी अञ्जली का जल भर के अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़ के—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ ॥ १ ॥

इस मन्त्र से पात्र में छुड़वा दे पुनः इसी प्रकार तीसरी बार आचार्य अपने हाथ में जल भर पुनः बालक की अञ्जली में भर अङ्गुष्ठसहित हाथ पकड़—

ओं अग्निराचार्यस्तव, असौ ॥

तीसरीबार बालक की अंजली का जल छुड़वा के बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह देख के आचार्य—

ओं देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय समामृत ॥ १ ॥

इस एक और पृष्ठ ६३ में लि० (तच्चक्षुर्देवहितम्०)

इस दूसरे मन्त्र को पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करा, बालकसहित आचार्य सभामंडप में आ यज्ञकुण्ड की उत्तर बाजू की ओर बैठ के—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। ओं सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व, † असौ ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़े और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सन्मुख बैठे पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण स्कन्धे पर अपने दक्षिण हाथ से स्पर्श और पश्चात् अपने हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके—

ओं प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि, असुम् ॥ १ ॥

* असौ इस पद के स्थान में बालक का सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करना चाहिये ।

† असौ और असुं इन दोनों पदों के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये ॥

इस मन्त्र को बोलने के पश्चात्—

ओं अहुर इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ २ ॥

इस मन्त्र से उदर पर और—

ओं कृशन इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ ३ ॥

इस मन्त्र से हृदय—

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि, असौ ॥ ४ ॥

इस मन्त्र को बोल के दक्षिण स्कन्ध और—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ ॥ ५ ॥

इस मन्त्र को बोल के बाम हाथ से बाएं स्कन्धा पर स्पर्श करके बालक के हृदय पर हाथ धर के—

ओं तं धीरांसः कृवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥६॥

इस मन्त्र को बोल के आचार्य्य सम्मुख रह कर बालक के दक्षिण हृदय पर अपना हाथ रख के—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽअस्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ १ ॥

आचार्य्य इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले अर्थात् हे शिष्य बालक तेरे हृदय को मैं अपने आधीन करता हूं तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहै और तूं मेरी वाणी को एकाग्रमन हो प्रीति से सुन कर उस के अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे । यह प्रतिज्ञा करावे इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य्य से प्रतिज्ञा करावे कि हे आचार्य्य आप के हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूं मेरे चित्त के अनुकूल आप का चित्त सदा रहे आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिये और परमात्मा मेरे लिये आप को सदा नियुक्त रक्खे इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके—आचार्योक्तिः—

को नामाऽसि

तेरा नाम क्या है ।

वालकोक्तिः— अहम्भोः

मेरा अमुकनाम है ऐसा उत्तर देवे। आचार्य्य—

कस्य ब्रह्मचार्य्यसि

तू किस का ब्रह्मचारी है। बालक—

भवतः

आप का। आचार्य्य बालक की रक्षा के लिये—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव * असौ।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात्।

ओं कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि ॥ १ ॥ ओं प्रजापतये त्वा परिददामि। देवाय त्वा सवित्रे परिददामि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि। द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि। सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ॥२॥

इन मन्त्रों को बोल बालक को शिक्षा करे कि तू प्राण आदि की विद्या के लिये यत्नवान् हो ॥

यह उपनयन संस्कार पूरे हुए पश्चात् यदि उसी दिन वेदारम्भ करने का विचार पिता और आचार्य्य का हो तो उसी दिन करना और जो दूसरे दिन का विचार हो तो—पृष्ठ २८–२९ में लि० महावामदेव्य गान करके संस्कार में आई हुई स्त्रियों का बालक की माता और पुरुषों का बालक का पिता सत्कार करके विदा करे और माता पिता आचार्य्य सम्बन्धी इष्ट मित्र सब मिल के—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः, आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः ॥

इस प्रकार आशीर्वाद देके अपने २ घर को सिधारें ॥

इत्युपनयनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

* असौ इस पद के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये।

अथ वेदारम्भसंस्कारविधिर्विधीयते ॥

वेदारम्भ उस को कहते हैं जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग * चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना ।

समयः—जो दिन उपनयन संस्कार का है वही वेदारम्भ का है यदि उस दिवस में न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करे यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे ।

विधिः—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान करा के शुद्ध वस्त्र पहिना, पश्चात् कार्यकर्त्ता अर्थात् पिता यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पृष्ठ ४—१४ तक में ईश्वरस्तुति † प्रार्थनोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण करके पृष्ठ २२ में (भूर्भुवः स्वः०) इस मन्त्र से अग्न्याधान २३ पृष्ठ में (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ चार मन्त्रों से समिदाधान पृष्ठ २४ में (ओं अदितेऽनुमन्यस्व०) इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीनों ओर और (ओं देव सवितः०) इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका के पृष्ठ २३ में (उद्बुध्यस्वाग्ने०) इस मन्त्र से अग्नि को प्रदीप्त कर के प्रदीप्तसमिधा पर पृष्ठ २५ में आघारावाज्यभागाहुति ४ चार व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २६—२७ में आज्याहुति ८ आठ मिल के १६ सोलह आज्याहुति देने के पश्चात् प्रधान ‡ होमाहुति दिला के पश्चात् पृष्ठ २५ में व्याहृति आहुति ४ चार और स्विष्टकृत् आहुति १ एक तथा पृष्ठ २६ में प्राजापत्याहुति १ एक मिल कर छः आज्याहुति बालक के हाथ से दिलानी तत्पश्चात्—

---

* (अङ्ग) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष (उपाङ्ग) पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, साङ्ख्य और वेदान्त (उपवेद)आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र । ब्राह्मण ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ (वेद) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन सब को क्रम से पढ़े ॥

† जो उपनयन किये पश्चात् उसी दिन वेदारम्भ करे उस को पुनः वेदारम्भ के आदि में ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना और शान्तिकरण करना आवश्यक नहीं ॥

‡ प्रधान होम उस को कहते हैं जो संस्कार में मुख्य करके किया जाता है ॥

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु । ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि । ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु । ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि । ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र से वेदी के अग्नि को इकट्ठा करना तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करके २४ पृष्ठ में लि० प्र० "अदितेनुमन्यस्व०" इत्यादि ४ चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसिञ्चन करके बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रह कर घृत में भिजो के एक समिधा हाथ में ले—

ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽ एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा ॥ १ ॥

समिधा वेदिस्थ अग्नि के मध्य में छोड़ देना इसी प्रकार दूसरी और तीसरी समिधा छोड़े पुनः "ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०" इस मन्त्र से वेदिस्थ अग्नि को इकट्ठा करके पृष्ठ २४ में लि० प्र० "ओं अदितेनुमन्यस्व०" इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसेचन करके बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदी के अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ा सा तपा के हाथ में जल लगा—

ओं तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि ॥ १ ॥ ओं आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि ॥ २ ॥ ओं वर्चोदा अग्नेसि वर्चो मे देहि ॥ ३ ॥ ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण ॥ ४ ॥ ओं मेधां मे सविता आ ददातु ॥ ५ ॥ ओं मेधां मे देवी सरस्वती अददातु ॥ ६ ॥ ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्ता पुष्करस्रजौ ॥ ६ ॥

इन सात मन्त्रों से सात बार किंचित् हथेली उष्ण कर जल स्पर्श करके मुखस्पर्श करना तत्पश्चात् बालक—

ओं वाक् म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से मुख ॥

ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से नासिका द्वार ॥

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से दोनों नेत्र ॥

ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से दोनों कान

ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु। यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥

इन मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करके कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जा के जानू को भूमि में टेक के पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के सन्मुख पश्चिमाभिमुख बैठ।

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीम् भो अनुब्रूहि ॥

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि हे आचार्य प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महाव्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक अर्थात् तीनों मिल के परमात्मा के वाचक मन्त्र को मुझे उपदेश कीजिये तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रख के अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन बार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे॥

प्रथम बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्।

इतना टुकड़ा एक २ पद का शुद्ध उच्चारण बालक से करा के दूसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

एक २ पद से यथावत् धीरे २ उच्चारण करवा के, तीसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

धीरे २ इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप से इस का अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थः—(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का नाम है जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ाने हारा (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति कराने हारा है उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय कराने हारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उस को हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्र,चोदयात्) प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और इस से भिन्न किसी को उपास्य इष्टदेव उस के तुल्य वा उस से अधिक नहीं मानना चाहिये इस प्रकार अर्थ सुनाये पश्चात्—

ओं मम व्रते हृदयं ते दधामि। मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥ १॥

इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा कर के—

ओं इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी शुभगा मेखलेयम्॥ १॥

इस मन्त्र से आचार्य सुंदर चिकनी प्रथम बना के रक्खी हुई मेखला * को बालक के कटि में बांध के—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् । स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कोपीन दो अंगोछे और एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे और उन में से एक कोपीन एक कटिवस्त्र और एक उपन्ना बालक को आचार्य धारण करावे तत्पश्चात् आचार्य दण्ड † हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

ओं यो मे दंडः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम् । तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के बालक आचार्य के हाथ से दंड ले लेवे तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ, ‡ ॥ १ ॥ अपोऽशान ॥ २ ॥ कर्म कुरु ॥ ३ ॥ दिवा मा स्वाप्सीः ॥ ४ ॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥ ५ ॥ द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥ ६ ॥ आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥ ७ ॥ क्रोधानृते वर्जय ॥ ८ ॥ मैथुनं वर्जय ॥ ९ ॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥ १० ॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥ ११ ॥ अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय

---

* ब्राह्मण की मुञ्ज वा दर्भ की क्षत्रिय की धनुष् संज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य की ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिये ।

† ब्राह्मण के बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा बिल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को बट वा खदिर का ललाट भ्रूतक, वैश्य को पीलु अथवा गूलर वृक्ष का नासिका के अग्र भाग तक दंड प्रमाण और वे दंड चिकने सूधे हों अग्नि में जले, टेढ़े, कीड़ों के खाये हुये न हों और एक २ मृगचर्म उन के बैठने के लिये एक २ जलपात्र एक २ उपपात्र और एक २ आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये ।

‡ असौ इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम सर्वत्र उच्चारण करे ।

॥ १२ ॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासा-न्नित्यमाचर ॥ १३ ॥ क्षुरकृत्यं वर्जय ॥ १४ ॥ मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥ १५ ॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥ १६ ॥ अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय ॥ १७ ॥ अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥ १८ ॥ तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लाति-तिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥ १९ ॥ नित्यं युक्ता-हारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥ २० ॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥ २१ ॥ मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यस-मिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमभिवादनविद्या-संचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥ २२ ॥

अर्थः—तू आज से ब्रह्मचारी है ॥ १ ॥ नित्यसन्ध्योपासन भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥ २ ॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर ॥ ३ ॥ दिन में शयन कभी मत कर ॥ ४ ॥ आचार्य के आधीन रह के नित्य साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर ॥५॥ एक २ साङ्गोपाङ्ग वेद के लिये बारह२ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जब तक साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पूरे होवें तब तक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥ ६ ॥ आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे उस को तू कभी मत मान और उस का आचरण मत कर ॥ ७ ॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ॥८॥ आठ * प्रकार के मैथुन को छोड़ देना ॥९॥ भूमि में शयन करना पलंग आदि पर कभी न सोना ॥१०॥ कौशी-लव अर्थात् गाना बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अंजन का सेवन मत करे ॥११॥ अतिस्नान, अतिभोजन, अधिकनिद्रा, अधिकजागरण, निन्दा,

* स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम, यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है जो इन को छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी होता है ॥

लोभ, मोह, भय, शोक का ग्रहण कभी मत कर ॥ १२ ॥ रात्रि के चौथे प्रहर में जाग आवश्यक शौचादि दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की, स्तुति, प्रार्थना और उपासना योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर ॥ १३ ॥ क्षौर मत करा ॥ १४ ॥ मांस, रूखा शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ॥ १५ ॥ बैल घोड़ा हाथी ऊंट आदि की सवारी मत कर ॥ १६ ॥ ग्राम में निवास, और जूता और छत्र का धारण मत कर ॥ १७ ॥ लघुशंका के विना उपस्थ इन्द्रिय का स्पर्श से वीर्यस्खलन कभी न करके वीर्य को शरीर में रख के निरन्तर ऊर्ध्व-रेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे इस प्रकार यत्न से वर्ता कर ॥ १८ ॥ तैलादि से अंगमर्दन उबटना अतिखट्टा, अमली आदि, अतितीखा लालमरिची आदि, कसैला, हरड़ आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ॥ १९ ॥ नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो ॥ २० ॥ सुशील थोड़े बोलने वाला सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर ॥ २१ ॥ मेखला और दण्ड का धारण भिक्षाचरण अग्निहोत्र स्नान सन्ध्योपासन आचार्य का प्रियाचरण प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं ॥ २२ ॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़ के कहे कि जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूंगा तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुंड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रह के माता, पिता, बहिन, भाई, मामा, मौसी, चाचा आदि से ले के जो भिक्षा देने में नकार न करें उन से भिक्षा * मांगे और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देनी तत्पश्चात् आचार्य उसमें से कुछ थोड़ासा अन्न ले के वह सब भिक्षा बालक को दे देवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिये रख छोड़े तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठा के पृष्ठ २८—२९ में लि० वामदेव्यगान को करना तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे पश्चात् सायंकाल तक विश्राम और गृहाश्रम संस्कार में लिखा सन्ध्योपासन आचार्य बालक के हाथ से करावे और पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम

* ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो "भवान् भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से मांगे तो "भवती भिक्षां ददातु" और क्षत्रिय का बालक "भिक्षां भवान् ददातु" और स्त्री से "भिक्षां भवती ददातु" वैश्य का बालक "भिक्षां ददातु भवान्" और "भिक्षां ददातु भवती" ऐसा वाक्य बोले ।

भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और स्थालीपाक अर्थात् पृष्ठ १६ में लि० भात बना उस में घी डाल पात्र में रख पृष्ठ २३ में लि० समिदाधान कर पुनः समिधा प्रदीप्त कर आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति देनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा हो के पृष्ठ ८० में "ओं अग्ने सुश्रवः०" इस मन्त्र से तीन समिधा की आहुति देवे तत्पश्चात् बालक बैठ के यज्ञकुण्ड के अग्नि से अपना हाथ तपा पृष्ठ २२ में पूर्ववत् मुख का स्पर्श करके अङ्गस्पर्श करना तत्पश्चात् पृष्ठ १६ में लि० प्र० बनाये हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेके उस में घी मिला—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा । इदं सदसस्पतये—इदन्न मम ॥ १ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ इदं सवित्रे—इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं ऋषिभ्यः स्वाहा—इदं ऋषिभ्यः—इदन्न मम ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से तीन और पृष्ठ २५ में लि० (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से चौथी आहुति देवे तत्पश्चात् पृष्ठ २६ में लि० व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २६—२७ में (ओं त्वन्नो०) इन ८ आठ मन्त्रों से आज्याहुति ८ आठ मिल के १२ बारह आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ २८—२९ में लि० वामदेव्यगान आचार्य के साथ करके—

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये ॥

ऐसा वाक्य बोल के आचार्य्य का वन्दन करे और आचार्य्य

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य ॥

ऐसा आशीर्वाद देके पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक् २ बैठ के करें तत्पश्चात् हस्त मुख प्रक्षालन करके संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों उन को यथायोग्य भोजन करा तत्पश्चात् स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जने बालक को निम्नलिखित—

हे बालक! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

ऐसा आशीर्वाद दे के अपने २ घर को चले जायें तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ३ तीन दिन तक भूमि में शयन प्रातः सायं पृ० ८० लि० (ओं सुश्रवः०) इस मन्त्र से समिधा होम और पृष्ठ २२ में लि० मुख आदि अंगस्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिन तक (सदसस्पति०) इत्यादि पृष्ठ ८६ में लि० ४ चार स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करवावे और ३ तीन दिन तक क्षार लवण रहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य्य भी करे ।

आचार्य॑ उपनयमा॑नो ब्रह्मचा॒रिणं॑ कृणुते॒ गर्भ॑मन्तः । तं रात्री॑स्ति॒स्र उदरे॑ बिभर्ति॒ तं जा॒तं द्रष्टु॑मभि॒ सं य॑न्ति दे॒वाः ॥ १ ॥ इ॒यं स॒मित्पृ॑थि॒वी द्यौर्द्वि॒तीयो॒तान्तरि॑क्षं स॒मिधा॑ पृणाति । ब्र॒ह्मचा॒री स॒मिधा॒ मेख॑लया॒ श्रमे॑ण लो॒काँस्तप॑सा पिपर्ति ॥ २ ॥ ब्र॒ह्म॒चार्ये॑ति स॒मिधा॒ समि॑द्धः का॒र्ष्णं वसा॑नो दीक्षि॒तो दी॒र्घश्म॑श्रुः ॥ स स॒द्य ए॑ति॒ पूर्व॑स्मा॒दुत्त॑रं समु॒द्रं लो॒कान्त्सं॒गृभ्य॒ मुहु॒राच॑रिक्रत् ॥ ३ ॥ ब्र॒ह्म॒चर्ये॑ण॒ तप॑सा॒ राजा॑ रा॒ष्ट्रं वि र॑क्षति । आ॒चार्यो॑ ब्र॒ह्मचर्ये॑ण ब्रह्मचा॒रिण॑मिच्छते ॥ ४ ॥ ब्र॒ह्म॒चर्ये॑ण क॒न्या॒३॒ युवा॑नं विन्दते॒ पति॑म् ॥ ५ ॥ ब्र॒ह्म॒चा॒री ब्रह्म॒ भ्राज॑द् बिभर्ति॒ तस्मि॑न्दे॒वा अधि॒ विश्वे॑ स॒मोताः॑ । प्रा॒णा॒पा॒नौ ज॒नय॒न्नाद्व्या॒नं वाचं॒ मनो॒ हृद॑यं॒ ब्रह्म॒ मेधा॑म् ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ११ । सू० ५ ।

संक्षेप से भाषार्थ—आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञा पूर्वक समीप रख के ३ तीन रात्रि पर्यन्त गृहाश्रम के प्रकरण में लिखे सन्ध्योपासनादि सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर उस के आत्मा के भीतर गर्भरूप विद्या स्थापन करने के

लिये उस को धारण कर और उस को पूर्ण विद्वान् कर देता और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है तब उस को देखने के लिये सब विद्वान् लोग सन्मुख जाकर बड़ा मान्य करते हैं ॥ १ ॥

जो यह ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय तीन समिधा अग्नि में होम कर ब्रह्मचर्य के व्रत का नियम पूर्वक सेवन करके विद्या पूर्ण करने को दृढोत्साही होता है वह जानो पृथिवी सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सब का पालन करता है क्योंकि वह समिदाधान मेखलादि चिन्हों का धारण और परिश्रम से विद्या पूर्ण करके इस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप तप से सब लोगों को सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है ॥ २ ॥

जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण कर दीक्षित हो के (दीर्घश्मश्रुः) ४० चालीस वर्ष तक डाढ़ी मूंछ आदि पञ्च केशों का धारण करने वाला ब्रह्मचारी होता है वह पूर्व समुद्ररूप ब्रह्मचर्यानुष्ठान को पूर्ण करके गुरुकुल से उत्तर समुद्र अर्थात् गृहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है वह सब लोगों का संग्रह करके वारं वार पुरुषार्थ और जगत् को सत्योपदेश से आनन्दित कर देता है ॥ ३ ॥

वही राजा उत्तम होता है जो पूर्ण ब्रह्मचर्यरूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान् सुशिक्षित सुशील जितेन्द्रिय हो कर राज्य का विविध प्रकार से पालन करता है और वही विद्वान् ब्रह्मचारी की इच्छा करता और आचार्य हो सकता है जो यथावत् ब्रह्मचर्य से संपूर्ण विद्याओं को पढ़ता है ॥ ४ ॥

जैसे लड़के पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण ज्वान हो के अपने सदृश कन्या से विवाह करें वैसे कन्या भी अखण्ड ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण युवति हो अपने तुल्य पूर्ण युवावस्था वाले पति को प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

जब ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों को शब्द अर्थ और सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक धारण करता है तभी प्रकाशमान होता उस में संपूर्ण दिव्य गुण निवास करते और सब विद्वान् उस से मित्रता करते हैं वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य ही से प्राण, दीर्घजीवन, दुःख क्लेशों का नाश, संपूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम वाणी, पवित्र आत्मा, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठप्रज्ञा को धारण करके सब मनुष्यों के हित के लिये सब विद्याओं का प्रकाश करता है ॥६॥

ब्रह्मचर्यकालः ॥

इस में छान्दोग्योपनिषद् के तृतीय प्रपाठक के सोलहवें खण्ड का प्रमाण।

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥ १ ॥ पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानिचतुर्विꣳशतिवर्षाणि तत् प्रातःसवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥ २ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳ सवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥३॥ अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति ॥४॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहम्प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ५ ॥ अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥६॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ७ ॥

अर्थ :—जो बालक को ५ पांच वर्ष की आयु तक माता पांच से ८ आठ तक पिता ८ आठ से ४८ अड़तालीस ४४ चवालीस ४० चालीस ३६ छत्तीस

३० तीस तक अथवा २५ पच्चीस वर्ष तक तथा कन्या को ८ आठ से २४ चौबीस २२ बाईस २० बीस १८ अठारह अथवा १६ सोलह वर्ष तक आचार्य की शिक्षा प्राप्त हो तभी पुरुष वा स्त्री विद्यावान् हो कर धर्मार्थ काम मोक्ष के व्यवहारों में अतिचतुर होते हैं ॥ १ ॥ यह मनुष्य देह यज्ञ अर्थात् अच्छे प्रकार इस को आयु बल आदि से संपन्न करने के लिये छोटे से छोटा यह पक्ष है कि २४ चौबीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य पुरुष और १६ सोलह वर्ष तक स्त्री ब्रह्मचर्याश्रम यथावत् पूर्ण जैसे २४ चौबीस अक्षर का गायत्री छन्द होता है वैसे करे वह प्रातःसवन कहाता है जिस से इस मनुष्य देह के मध्य वसुरूप प्राण प्राप्त होते हैं जो बलवान् हो कर सब शुभ गुणों को शरीर आत्मा और मन के बीच में वास कराते हैं ॥ २ ॥ जो कोई इस २५ पच्चीस वर्ष के आयु से पूर्व ब्रह्मचारी को विवाह वा विषय भोग करने का उपदेश करे उस को वह ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि देख, यदि मेरे प्राण मन और इन्द्रिय २५ पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य से बलवान् न हुए तो मध्यम सवन जो कि आगे ४४ चवालीस वर्ष तक का ब्रह्मचर्य कहा है उस को पूर्ण करने के लिये मुझ में सामर्थ्य न हो सकेगा किन्तु प्रथम कोटि का ब्रह्मचर्य मध्यम कोटि के ब्रह्मचर्य को सिद्ध करता है इस लिये क्या मैं तुम्हारे सदृश मूर्ख हूं कि जो इस शरीर प्राण अन्तःकरण और आत्मा के संयोग रूप सब शुभ गुण कर्म और स्वभाव के साधन करने वाले इस संघात को शीघ्र नष्ट करके अपने मनुष्य देहधारण के फल से विमुख रहूं और सब आश्रमों के मूल सब उत्तम कर्मों में उत्तम कर्म और सब के मुख्य कारण ब्रह्मचर्य को खंडित करके महादुःखसागर में कभी डूबूं किन्तु जो प्रथम आयु में ब्रह्मचर्य करता है वह ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हो के निश्चित रोगरहित होता है इस लिये तुम मूर्ख लोगों के कहने से ब्रह्मचर्य का लोप मैं कभी न करूंगा ॥ ३ ॥ और जो ४४ चवालीस वर्ष तक अर्थात् जैसा ४४ चवालीस अक्षर का त्रिष्टुप् छन्द होता है तद्वत् जो मध्यम ब्रह्मचर्य करता है वह ब्रह्मचारी रुद्ररूप प्राणों को प्राप्त होता है कि जिस के आगे किसी दुष्ट की दुष्टता नहीं चलती और वह सब दुष्ट कर्म करने वालों को सदा रुलाता रहता है ॥ ४ ॥ यदि मध्यम ब्रह्मचर्य के सेवन करने वाले से कोई कहे कि तू इस ब्रह्मचर्य को छोड़ विवाह करके आनन्द को प्राप्त हो उस को ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि जो सुख अधिक ब्रह्मचर्याश्रम के

सेवन से होता और विषयसम्बन्धी भी अधिक आनंद होता है वह ब्रह्मचर्य को न करने से स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होता क्योंकि सांसारिक व्यवहार, विषय और परमार्थ सम्बन्धी पूर्ण सुख को ब्रह्मचारी ही प्राप्त होता है अन्य कोई नहीं इस लिये मैं इस सर्वोत्तम सुखप्राप्ति के साधन ब्रह्मचर्य का लोप न करके विद्वान् बलवान् आयुष्मान् धर्मात्मा हो के संपूर्ण आनन्द को प्राप्त होऊं गा। तुम्हारे निर्बुद्धियों के कहने से शीघ्र विवाह करके स्वयं और अपने कुल को नष्ट भ्रष्ट कभी न करूंगा ॥ ४ ॥ अब ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त जैसा कि ४८ अड़तालीस अक्षर का जगती छन्द होता है वैसे इस उत्तम ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या, पूर्णबल, पूर्णप्रज्ञा, पूर्णशुभगुण, कर्म, स्वभाव युक्त सूर्यवत् प्रकाशमान हो कर ब्रह्मचारी सब विद्याओं को ग्रहण करता है ॥ ५ ॥ यदि कोई इस सर्वोत्तम धर्म से गिराना चाहे उस को ब्रह्मचारी उत्तर देवे कि अरे! छोकरों के छोकरे मुझ से दूर रहो तुम्हारे दुर्गन्ध रूप भ्रष्ट वचनों से मैं दूर रहता हूं मैं इस उत्तम ब्रह्मचर्य का लोप कभी न करूंगा इस को पूर्ण करके सर्वरोगों से रहित सर्वविद्यादि शुभ गुण कर्म स्वभाव सहित होऊंगा इस मेरी शुभ प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करे जिस से मैं तुम निर्बुद्धियों का उपदेश और विद्या पढ़ा के विशेष तुम्हारे बालकों को आनन्द युक्त कर सकूं ॥ ६ ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। तत्राषोडशाद् वृद्धिः। आपञ्चविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतस्संपूर्णता। ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोड़शे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

यह धन्वन्तरि जी कृत सुश्रुतग्रन्थ का प्रमाण है।

अर्थः—इस मनुष्य देह की ४ चार अवस्था हैं एक वृद्धि दूसरी यौवन तीसरी संपूर्णता चौथी किञ्चित्परिहाणि करने हारी अवस्था है इन में १६ सोलहवें वर्ष आरंभ २५ पच्चीसवें वर्ष में पूर्ति वाली वृद्धि की अवस्था है जो कोई इस वृद्धि की अवस्था में वीर्यादि धातुओं का नाश करेगा वह कुल्हाड़े से काटे वृक्ष वा डंडे से फूटे घड़े के समान अपने सर्वस्व का नाश करके पश्चात्ताप

करेगा पुनः उस के हाथ में सुधार कुछ भी न रहेगा और दूसरी जो युवावस्था उस का आरम्भ २५ पच्चीसवें वर्ष से और पूर्त्ति ४० चालीसवें वर्ष में होती है जो कोई इस को यथावत् संरक्षित न कर रक्खे गा वह अपनी भाग्यशालीनता को नष्ट कर देवेगा और तीसरी पूर्ण युवावस्था ४० चालीसवें वर्ष में होती है जो कोई ब्रह्मचारी हो कर पुनः ऋतुगामी परस्त्रीत्यागी एकस्त्रीव्रत गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचारी न रहे गा वह भी बना बनाया धूल में मिल जायगा और चौथी ४० चालीसवें वर्ष से यावत् निर्वीर्य न हो तावत् किञ्चित् हानिरूप अवस्था है यदि किञ्चित् हानि के बदले वीर्य्य की अधिक हानि करेगा वह भी राजयक्ष्मा और भगन्दरादि रोगों से पीड़ित हो जायगा और जो इन चारों अवस्थाओं को यथोक्त सुरक्षित रक्खे गा वह सर्वदा आनन्दित हो कर सब संसार को सुखी कर सके गा ॥

अब इस में इतना विशेष समझना चाहिये कि स्त्री और पुरुष के शरीर में पूर्वोक्त चारों अवस्थाओं का एकसा समय नहीं है किन्तु जितना सामर्थ्य २५ पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना सामर्थ्य स्त्री के शरीर में १६ सोलहवें वर्ष में हो जाता है यदि बहुत शीघ्र विवाह करना चाहें तो २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष और १६ सोलह वर्ष की स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्य वाले होते हैं इस कारण इस अवस्था में जो विवाह करना वह अधम विवाह है और जो १७ सत्रहवें वर्ष की स्त्री और ३० तीस वर्ष का पुरुष १८ अठारह वर्ष की स्त्री और ३६ छत्तीस वर्ष का पुरुष १९ उन्नीस वर्ष की स्त्री ३८ अड़तीस वर्ष का पुरुष विवाह करे तो इस को मध्यम समय जानो और जो २० बीस २१ इकीस २२ बाइस वा २४ चौबीस वर्ष की स्त्री और ४० चालीस ४२ बयालीस ४६ छयालीस और ४८ अड़तालीस वर्ष का पुरुष हो कर विवाह करे वह सर्वोत्तम है हे ब्रह्मचारिन् इन बातों को तू ध्यान में रख जो कि तुझ को आगे के आश्रमों में काम आवें गी जो मनुष्य अपने सन्तान कुल सम्बन्धी और देश की उन्नति करना चाहें वे इन पूर्वोक्त और आगे कही हुई बातों का यथावत् आचरण करें ॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ॥ १ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ २ ॥
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ३ ॥
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ५ ॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ६ ॥
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥ ७ ॥
यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥ ८ ॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ९ ॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ १० ॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ ११ ॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥ १२ ॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ १३ ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १४ ॥
वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ १५ ॥
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ १६ ॥
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥
श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ १८ ॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥ १९ ॥ मनु० ।

अर्थः—कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, गुदा, उपस्थ (मूत्र का मार्ग) हांथ, पग, वाणी ये दश १० इन्द्रिय इस शरीर में हैं ॥१॥ इन में कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पांच कर्मेन्द्रिय कहाते हैं ॥२॥ ग्यारहवां इन्द्रिय मन है वह अपने स्मृति आदि गुणों से दोनों प्रकार के इन्द्रियों से सम्बन्ध करता है कि जिस मन के जीतने में ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों जीत लिये जाते हैं ॥३॥ जैसे सारथि घोड़े को कुपथ में नहीं जाने देता वैसे विद्वान् ब्रह्मचारी आकर्षण करने वाले विषयों में जाते हुए इन्द्रियों के रोकने में सदा प्रयत्न किया करे ॥४॥ ब्रह्मचारी इन्द्रियों के साथ मन लगाने से निःसन्देह दोषी हो जाता है और उन पूर्वोक्त दश इन्द्रियों को वश में करके ही पश्चात् सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जिस का ब्राह्मणपन (संमान नहीं चाहना वा इन्द्रियों को वश में रखना आदि) बिगड़ा वा जिस का विशेष प्रभाव (वर्णाश्रम के गुण कर्म) बिगड़े हैं उस पुरुष के वेद पढ़ना, त्याग (संन्यास) लेना, यज्ञ (अग्निहोत्रादि) करना, नियम (ब्रह्मचर्याश्रम आदि) करना, तप (निन्दा, स्तुति और हानि, लाभ आदि द्वन्द्व का सहन) करना आदि कर्म कदापि सिद्ध नहीं हो सकते

इस लिये ब्रह्मचारी को चाहिये कि अपने नियम धर्मों को यथावत् पालन करके सिद्धि को प्राप्त होवे ॥ ६ ॥ ब्रह्मचारी पुरुष सब इन्द्रियों को वश में कर और आत्मा के साथ मन को संयुक्त करके योगाभ्यास से शरीर को किञ्चित् २ पीड़ा देता हुआ अपने सब प्रयोजनों को सिद्ध करे ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् ब्रह्मचारी को चाहिये कि यमों का सेवन नित्य करे केवल नियमों का नहीं क्योंकि यमों * को न करता हुआ और केवल नियमों † का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है इस लिये यमसेवनपूर्वक नियमसेवन नित्य किया करे ॥ ८ ॥ अभिवादन करने का जिस का स्वभाव और विद्या वा अवस्था में वृद्ध पुरुषों का जो नित्य सेवन करता है उस की अवस्था, विद्या, कीर्त्ति और बल इन चारों की नित्य उन्नति हुआ करती है इस लिये ब्रह्मचारी को चाहिये कि आचार्य माता पिता अतिथि महात्मा आदि अपने बड़ों को नित्य नमस्कार और सेवन किया करे ॥९॥ अज्ञ अर्थात् जो कुछ नहीं पढ़ा वह निश्चय करके बालक होता और जो मन्त्रद अर्थात् दूसरे को विचार देने वाला विद्या पढ़ा विद्याविचार में निपुण है वह पिता स्थानीय होता है क्योंकि जिस कारण सत्पुरुषों ने अज्ञ जन को बालक कहा और मन्त्रद को पिता ही कहा है इससे प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम संपन्न हो कर ज्ञानवान् विद्यावान् अवश्य होना चाहिये ॥ १० ॥ धर्मवेत्ता ऋषिजनों ने न वर्षों न पके केशों वा झूलते हुए अङ्गों न धन और न बन्धु जनों से बड़प्पन माना किन्तु यही धर्म निश्चय किया कि जो हम लोगों में वाद विवाद में उत्तर देने वाला अर्थात् वक्ता हो वह बड़ा है इस से ब्रह्मचर्य्याश्रम संपन्न हो कर विद्यावान् होना चाहिये जिस से कि संसार में बड़प्पन प्रतिष्ठा पावें और दूसरों को उत्तर देने में अतिनिपुण हों ॥११॥ उस कारण से वृद्ध नहीं होता कि जिस से इस का शिर झूल जाय केश पक जावें किन्तु जो ज्वान भी पढ़ा हुआ विद्वान् है उस को विद्वानों ने वृद्ध जाना और माना है इस से ब्रह्मचर्य्याश्रमसंपन्न हो कर विद्या पढ़नी चाहिये ॥१२॥ जैसे काठ का कठपुतला

---

* अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ॥

निर्वैरता, सत्यबोलना, चोरीत्याग, वीर्यरक्षण और विषय भोग में घृणा ये ५ यम हैं ॥

† शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

शौच, सन्तोष, तपः (हानि लाभ आदि द्वन्द्व का सहना) स्वाध्याय, वेद का पढ़ना, ईश्वरप्रणिधान [सर्वस्व ईश्वरार्पण] ये ५ नियम कहाते हैं ॥

हांथी वा जैसे चमड़े का बनाया हुआ मृग हो वैसे विना पढ़ा हुआ विप्र अर्थात् ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन होता है उक्त वे हांथी मृग और विप्र तीनों नाममात्र धारण करते हैं इस कारण ब्रह्मचर्य्याश्रम संपन्न हो कर विद्या पढ़नी चाहिये ॥ १३ ॥ ब्राह्मण विष के समान उत्तम मान से नित्य उदासीनता रक्खे और अमृत के समान अपमान की आकाङ्क्षा सर्वदा करे अर्थात् ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों के लिये भिक्षामात्र मांगते भी कभी मान की इच्छा न करे ॥ १४ ॥ द्विजोत्तम अर्थात् ब्राह्मणादिकोंमें उत्तम सज्जन पुरुष सर्वकाल तपश्चर्य्या करता हुआ वेद ही का अभ्यास करे जिस कारण ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन को वेदाभ्यास करना इस संसार में परम तप कहा है इस से ब्रह्मचर्य्याश्रमसंपन्न हो कर अवश्य वेदविद्याध्ययन करे ॥ १५ ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़ कर अन्य शास्त्र में श्रम करता है वह जीवता ही अपने वंश के सहित शूद्रपन को प्राप्त हो जाता है इस से ब्रह्मचर्य्याश्रमसंपन्न हो कर वेदविद्या अवश्य पढ़े ॥ १६ ॥ जैसे फांवड़ा से खोदता हुआ मनुष्य जल को प्राप्त होता है वैसे गुरु की सेवा करने वाला पुरुष गुरु जनों में जो पाई हुई विद्या है उस को प्राप्त होता है इस कारण ब्रह्मचर्य्याश्रमसंपन्न हो कर गुरुजन की सेवा कर उन से सुने और वेद पढ़े ॥ १७ ॥ उत्तम विद्या की श्रद्धा करता हुआ पुरुष अपने से न्यून से भी विद्या पावे तो ग्रहण करे। नीच जाति से भी उत्तम धर्म का ग्रहण करे और निन्द्य कुल से भी स्त्रियों में उत्तम स्त्री जन का ग्रहण करे यह नीति है इस से गृहस्थाश्रम से पूर्व २ ब्रह्मचर्य्याश्रमसंपन्न हो कर कहीं से न कहीं से उत्तम विद्या पढ़े उत्तम धर्म शीखे और ब्रह्मचर्य्य के अनन्तर गृहाश्रम में उत्तम स्त्री से विवाह करे क्योंकि— ॥१८॥ विष से भी अमृत का ग्रहण करना बालक से भी उत्तम वचन को लेना और नाना प्रकार के शिल्प काम सब से अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहिये इस कारण ब्रह्मचर्य्याश्रमसंपन्न हो कर देश २ पर्य्यटन कर उत्तम गुण सीखे ॥ १९ ॥

यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि । नो इतराणि । एके चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् ॥ १ ॥ तैत्तिरी० प्रपा० ७ । अनु० ११ ॥

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपश्शम-स्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो ब्रह्मभूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतदुपास्स्वैतत्तपः ॥ २ ॥ तैत्तिरी० प्रपा० १० । अनु० ८ ॥

अर्थः—हे शिष्य जो आनन्दित पापरहित अर्थात् अन्याय अधर्माचरण-रहित न्यायधर्माचरणसहित कर्म हैं उन्हीं का सेवन तू किया करना इन से विरुद्ध अधर्माचरण कभी मत करना। हे शिष्य जो तेरे माता पिता आचार्य आदि हम लोगों के अच्छे धर्म युक्त उत्तम कर्म हैं उन्हीं का आचरण तू कर और जो हमारे दुष्ट कर्म हों उन का आचरण कभी मत कर हे ब्रह्मचारिन् जो हमारे मध्य में धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्रह्मवित् विद्वान् हैं उन्हीं के समीप बैठना संग करना और उन्हीं का विश्वास किया कर ॥ १ ॥ हे शिष्य तू जो यथार्थ का ग्रहण सत्यमानना सत्यबोलना वेदादि सत्यशास्त्रों का सुनना अपने मन को अधर्माचरण में न जाने देना श्रोत्रादि इन्द्रियों को दुष्टाचार से रोक श्रेष्ठाचार में लगाना क्रोधादि के त्याग से शान्त रहना विद्या आदि शुभगुणों का दान करना अग्निहोत्रादि और विद्वानों का संग कर जितने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्य आदि लोकों में पदार्थ हैं उन का यथाशक्ति ज्ञान कर और योगाभ्यास प्राणा-याम एक ब्रह्म परमात्मा की उपासना कर ये सब कर्म करना ही तप कहाता है ॥ २ ॥

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्या० । दमश्च स्वाध्या० । शमश्च स्वाध्या० । अग्नयश्च स्वाध्या० । अग्निहोत्रं च स्वाध्या० । सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपो नित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ ३ ॥ तैत्तिरी० प्रपा० ७ । अनु० ९ ॥

अर्थः—हे ब्रह्मचारिन् तू सत्य धारण कर, पढ़ और पढ़ाया कर, सत्योपदेश करना कभी मत छोड़ सदा सत्यबोल, पढ़ और पढ़ाया कर। हर्षशोकादि छोड़ प्राणायाम योगाभ्यास कर तथा पढ़ और पढ़ाया भी कर। अपने इन्द्रियों को बुरे कामों से हटा अच्छे कामों में चला विद्या का ग्रहण कर और कराया कर। अपने

अन्तःकरण और आत्मा को अन्यायाचरण से हटा न्यायाचरण में प्रवृत्त कर और कराया कर तथा पढ़ और सदा पढ़ाया कर। अग्निविद्या के सेवन पूर्वक विद्या को पढ़ और पढ़ाया कर। अग्निहोत्र करता हुआ पढ़ और पढ़ाया कर, सत्यवादी होना तप सत्यवचा राथीतर आचार्य, न्यायाचरण, में कष्ट सहना तप नित्य पौरुशिष्टि आचार्य और धर्म में चल के पढ़ना पढ़ाना और सत्योपदेश करना ही तप है यह नाकोमौद्गल्य आचार्य का मत है और सब आचार्यों के मत में यही पूर्वोक्त तप यही पूर्वोक्त तप है ऐसा तू जान॥ ३॥ इत्यादि उपदेश तीन दिन के भीतर आचार्य वा बालक का पिता करे॥

तत्पश्चात् घर को छोड़ गुरुकुल में जावें यदि पुत्र हो तो पुरुष की पाठशाला और कन्या हो तो स्त्रियों की पाठशाला में भेजें यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत् न हुई हो तो आचार्य-बालकों को और कन्याओं को स्त्री, पाणिनिमुनिकृत वर्णोच्चारणशिक्षा १ एक महीने के भीतर पढ़ा देवें पुनः पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी का पाठ पदच्छेद अर्थ सहित ८ आठ महीने में अथवा १ एक वर्ष में पढ़ा कर धातुपाठ और १० दश लकारों के रूप सधवाना तथा दश प्रक्रिया भी सधवानी पुनः पाणिनिमुनिकृत लिङ्गानुशासन और उणादि, गणपाठ तथा अष्टाध्यायीस्थ ण्वुल् और तृच् प्रत्ययाद्यन्त सुबन्त रूप ६ छः महीने के भीतर सधवा देवें पुनः दूसरी वार अष्टाध्यायी पदार्थोक्ति समास शंका समाधान उत्सर्ग अपवाद * अन्वय पूर्वक पढ़ावें और संस्कृतभाषण का भी अभ्यास कराते जायं ८ आठ महीने के भीतर इतना पढ़ना पढ़ाना चाहिये।

तत्पश्चात् पतञ्जलिमुनिकृत महाभाष्य जिस में वर्णोच्चारणशिक्षा अष्टाध्यायी धातुपाठ गणपाठ उणादिगण लिंगानुशासन इन ६ छः ग्रन्थों की व्याख्या यथावत् लिखी है डेढ़ वर्ष में अर्थात् १८ अठारह महीने में इस को पढ़ना पढ़ाना इस प्रकार शिक्षा और व्याकरण शास्त्र को ३ तीन वर्ष ५ पांच महीने वा ९ नौ महीने अथवा ४ चार वर्ष के भीतर पूरा कर सब संस्कृत विद्या के मर्मस्थलों को समझने के योग्य होवे तत्पश्चात् यास्कमुनिकृत निघण्टु निरुक्त तथा कात्यायनादि मुनिकृत कोश १॥ डेढ़ वर्ष के भीतर पढ़ के अव्ययार्थ आप्तमुनिकृत

* जिस सूत्र का अधिक विषय हो वह उत्सर्ग और जो किसी सूत्र के बड़े विषय में से थोड़े विषय में प्रवृत्त हो वह अपवाद कहाता है।

वाच्यवाचकसम्बन्धरूप * यौगिक योगरूढि और रूढि तीन प्रकार के शब्दों के अर्थ यथावत् जानें तत्पश्चात् पिङ्गलाचार्यकृत पिंगल सूत्र छन्दोग्रन्थ भाष्यसहित ३ तीन महीने में पढ़ और ३ तीन महीने में श्लोकादिरचन विद्या को सीखे पुनः यास्कमुनिकृत काव्यालङ्कार सूत्र वात्स्यायनमुनिकृत भाष्यसहित आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्यार्थ, अन्वयसहित पढ़ के इसी के साथ मनुस्मृति विदुरनीति और किसी प्रकरण में के १० सर्ग वाल्मीकीय रामायण के ये सब १ एक वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें तथा १ एक वर्ष में सूर्यसिद्धान्तादि में से कोई १ एक सिद्धान्त से गणितविद्या जिस में बीजगणित रेखागणित और पाटीगणित जिस को अंकगणित भी कहते हैं पढ़ें और पढ़ावें निघण्टु से ले के ज्योतिष् पर्यन्त वेदाङ्गों को चार वर्ष के भीतर पढ़ें। तत्पश्चात् जैमिनिमुनिकृत सूत्र पूर्वमीमांसा को व्यासमुनिकृत व्याख्यासहित, कणादमुनिकृत वैशेषिकसूत्र रूप शास्त्र को गोतममुनिकृत प्रशस्तपाद भाष्यसहित, वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य सहित गोतममुनिकृत सूत्ररूप न्यायशास्त्र, व्यासमुनिकृत भाष्यसहित पतञ्जलिमुनिकृत योगसूत्र योगशास्त्र, भागुरिमुनिकृतभाष्ययुक्त कपिलाचार्यकृत सूत्रस्वरूप साङ्ख्यशास्त्र, जैमिनि वा बौद्धायन आदि मुनिकृत व्याख्यासहित व्यासमुनिकृत शारीरकसूत्र तथा ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक १० दश उपनिषद् व्यासादिमुनिकृत व्याख्यासहित वेदान्तशास्त्र। इन ६ छः शास्त्रों को २ दो वर्ष के भीतर पढ़ लेवें। तत्पश्चात् बह्वृच् ऐतरेय ऋग्वेद का ब्राह्मण। आश्वलायनकृत श्रौत तथा गृह्यसूत्र † और कल्पसूत्र पदक्रम और व्याकरणादि के सहाय से छन्दः स्वर पदार्थ अन्वय भावार्थ सहित ऋग्वेद का पठन ३ तीन वर्ष के भीतर करे। इसी प्रकार यजुर्वेद को शतपथब्राह्मण और पदादि के सहित २ दो वर्ष तथा सामब्राह्मण और पदादि तथा गान सहित सामवेद को २ दो वर्ष तथा गोपथब्राह्मण और पदादि के सहित अथर्ववेद २ दो वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें सब मिल के ९ नौ वर्षों के भीतर ४ चारों वेदों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिये। पुनः ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद जिस को वैद्यकशास्त्र कहते हैं जिस में धन्वन्तरि जी

* यौगिक — जो क्रिया के साथ सम्बन्ध रक्खे जैसे पाचक याजकादि। योगरूढि जैसे पङ्कजादि रूढि जैसे धन वन इत्यादि।

† जो ब्राह्मण वा सूत्र वेदविरुद्ध हिंसा परक हो उस का प्रमाण न करना।

कृत सुश्रुत और निघण्टु तथा पतञ्जलि ऋषिकृत चरक आदि आर्ष ग्रन्थ हैं इन को ३ तीन वर्ष के भीतर पढ़ें। जैसे सुश्रुत में शस्त्र लिखे हैं बना कर शरीर के सब अवयवों को चीर के देखें तथा जो उस में शारीरकादि विद्या लिखी है साक्षात् करें।

तत्पश्चात् यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद जिस को शस्त्रास्त्रविद्या कहते हैं जिस में अङ्गिरा आदि ऋषिकृत ग्रन्थ हैं जो इस समय बहुधा नहीं मिलते ३ तीन वर्ष में पढ़ें और पढ़ावें। पुनः सामवेद का उपवेद गान्धर्व वेद जिस में नारद-संहितादि ग्रन्थ हैं उन को पढ़ के स्वर, राग, रागिणी, समय, वादित्र, ग्राम, ताल, मूर्च्छना आदि का अभ्यास यथावत् ३ तीन वर्ष के भीतर करे।

तत्पश्चात् अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद जिस को शिल्पशास्त्र कहते हैं जिस में विश्वकर्मा त्वष्टा और मयकृत संहिता ग्रन्थ हैं उन को ६ छः वर्ष के भीतर पढ़ के विमान तार भूगर्भादि विद्याओं को साक्षात् करें। ये शिक्षा से ले के आयुर्वेद तक १४ चौदह विद्याओं को ३१ इकत्तीस वर्षों में पढ़ के महाविद्वान् हो कर अपने और सब जगत् के कल्याण और उन्नति करने में सदा प्रयत्न किया करें।

इति वेदारम्भसंस्कारविधिः समाप्तः।

अथ समावर्त्तनसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

समावर्त्तन संस्कार उस को कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य्य व्रत, साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या, उत्तमशिक्षा और पदार्थविज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त होके विवाह विधानपूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय छोड़ के घर की ओर आना। इस में प्रमाण—

वेदसमाप्तिं वाचयीत। कल्याणैः सह सम्प्रयोगः। स्नातकायोपस्थिताय राज्ञे च। आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च। दधनि मध्वानीय। सर्पिर्वा मध्वलाभे। विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कः।

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र। तथा पारस्करगृह्यसूत्र॥

वेदꣳ समाप्य स्नायाद् ब्रह्मचर्यं वाऽष्टचत्वारिꣳशकम्। त्रय एव स्नातका भवन्ति। विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति।

जब वेदों की समाप्ति हो तब समावर्त्तनसंस्कार करे। सदा पुण्यात्मा पुरुषों के सब व्यवहारों में साझा रक्खे। राजा आचार्य श्वशुर चाचा और मामा आदि का अपूर्वागमन जब हो और स्नातक अर्थात् जब विद्या और ब्रह्मचर्य पूरण करके ब्रह्मचारी घर को आवे तब प्रथम (पाद्यम्) पग धोने का जल (अर्घ्यम्) मुखप्रक्षालन के लिये जल और आचमन के लिये जल दे के शुभासन पर बैठा दही में मधु अथवा सहत, न मिले तो घी मिला के एक अच्छे पात्र में धर इन को मधुपर्क देना होता है और विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्याव्रतस्नातक ये तीन * प्रकार के स्नातक होते हैं इस कारण वेद की समाप्ति और ४८ अड़तालीस वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्याव्रतस्नान करे।

* जो केवल विद्या को समाप्त तथा ब्रह्मचर्य व्रत को न समाप्त करके स्नान करता है वह विद्यास्नातक, जो ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त तथा विद्या को न समाप्त करके स्नान करता है वह व्रतस्नातक और जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य व्रत दोनों को समाप्त करके स्नान करता है वह विद्याव्रतस्नातक कहाता है।

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे । स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ अथर्व० कां० ११ । प्रपा० २४ । व० १६ । मं० २६ ॥

अर्थः—जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य्य में निवास कर महातप को करता हुआ वेदपठन, वीर्य्यनिग्रह आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर पश्चात् पृ० १०३ में लिखे अनुसार स्नानविधि करके पूर्ण विद्याओं को धरता सुन्दर वर्णयुक्त हो के पृथिवी में अनेक शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है वही धन्यवाद के योग्य है ॥

इस का समय०—पृ० ८९–९२ तक में लिखे प्रमाणे जानना परन्तु जब विद्या हस्तक्रिया ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करे । विवाह के स्थान दो हैं एक आचार्य का घर दूसरा अपना घर दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने आगे विवाह में लिखे प्रमाणे सब विधि करे । इस संस्कार का विधि पूरा करके पश्चात् विवाह करे ।

विधिः—जो शुभ दिन समावर्त्तन का नियत करे उस दिन आचार्य्य के घर में पृ० १५ में लिखे यज्ञकुण्ड आदि बना के सब साकल्य और सामग्री संस्कार दिन से पूर्व दिन में जोड़ रक्खे और स्थाली * पाक बना के तथा घृतादि और पात्रादि यज्ञशाला में वेदी के समीप रक्खे पुनः पृ० २१ में लिखे० यथावत् ४ चारों दिशाओं में आसन बिछा बैठ पृ० ४ चार से पृ० १४ तक में ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करें और जितने वहां पुरुष आये हों वे भी एकाग्रचित्त हो के ईश्वर के ध्यान में मग्न होवें तत्पश्चात् पृ० २२–२३ में० अग्न्याधान समिदाधान करके पृ०२४ में० वेदी के चारों ओर उदकसेचन करके आसन पर पूर्वाभिमुख आचार्य्य बैठ के पृ० २५ में० आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और पृ० २५ में० व्याहृति आहुति ४ चार और पृ० २६–२७ में० अष्टाज्याहुति ८ आठ और पृ० २५ में० स्विष्टकृत् आहुति १ एक और पृ० २६ में० प्राजापत्याहुति १ एक ये सब मिल के १८ अठारह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी पृ० ८० में० (ओं अग्ने सुश्रवः०) इस मन्त्र से कुण्ड का

* ओं १६. पूर्ण पृ० १६ में लिखे प्रमाणे भात आदि बना कर रक्खा—

अग्नि कुण्ड के मध्य में इकट्ठा कर तत्पश्चात् पृ० ८० में० (ओं अग्नये समिध०) इस मन्त्र से कुण्ड में ३ तीन समिधा होम कर पृ० ८० में० (ओं तनूपा० इत्यादि ७ सात मन्त्रों से दक्षिण हस्ताञ्जली आगी पर थोड़ी सी तपा उस जल से मुखस्पर्श और तत्पश्चात् पृ० २२ में० (ओं वाङ् म०) इत्यादि मन्त्रों से उक्त प्रमाणे अङ्गस्पर्श कर पुनः सुगन्धादि औषधयुक्त जल से भरे हुए ८ आठ घड़े वेदी के उत्तरभाग में जो पूर्व से रक्खे हुए हों उन में से:—

ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्यऽउपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदुषुरिन्द्रियहातान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥

इस मन्त्र को पढ़ एक घड़े को ग्रहण करके उस घड़े में से जल ले के:—

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् उपरि कथित (ओं ये अप्स्वन्तर०) इस मन्त्र को बोल के दूसरे घड़े को ले उस में से लोटे में जल ले के

ओं येन श्रियमकृणुतां येनावमृशताᳬं सुरान् । येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः ॥

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् पूर्ववत् ऊपर के (ओं ये अप्स्वन्तरग्न०) इसी मन्त्र का पाठ बोल के वेदी के उत्तर में रक्खे घड़ों में से ३ तीन घड़ों को ले के पृ० ७५ में० लिखे हुए (आपो हि ष्ठा०) इन ३ तीन मन्त्रों को बोल के उन घड़ों के जल से स्नान करना तत्पश्चात् ८ आठ घड़ों में से रहे हुए ३ तीन घड़ों को ले के (ओं आपो हि०) इन्हीं ३ तीन मन्त्रों को मन में बोल के स्नान करे पुनः—

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमᳬं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दण्ड को छोड़ तत्पश्चात् वह स्नातक ब्रह्मचारी सूर्य के सम्मुख खड़ा रह कर ॥

ओं उद्यन् भ्राजि भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मागमय । उद्यन् भ्राजि भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन् मागमय । उद्यन् भ्राजि भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायं यावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥

इस मन्त्र से परमात्मा का उपस्थान स्तुति कर के तत्पश्चात् दही वा तिल प्राशन करके जटा लोम और नख वपन अर्थात् छेदन करा के :–

ओं अन्नाद्याय व्यूहध्वꣳ सोमो राजा यमागमत् । स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च ॥

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी उदुम्बर की लकड़ी से दन्तधावन करे । तत्पश्चात् सुगन्धि द्रव्य शरीर पर मल के शुद्ध जल से स्नान कर शरीर को पोंछ अधोवस्त्र अर्थात् धोती वा पीताम्बर धारण करके सुगन्ध युक्त चन्दनादि का अनुलेपन करे तत्पश्चात् चक्षु मुख और नासिका के छिद्रों का :–

ओं प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय ॥

इस मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल ले, अपसव्य और दक्षिणमुख हो के ।

ओं पितरः शुन्धध्वम् ॥

इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ के सव्य हो के :–

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳ सुवर्चा मुखेन । सुश्रुतकर्णाभ्यां भूयासम् ॥

इस मन्त्र का जप करके :–

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥

इस मन्त्र से सुन्दर अतिश्रेष्ठ वस्त्रधारण करके :—

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती । यशो भगश्च माविदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करके :—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै कामायेन्द्रियाय । ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥

इस मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला ले के :—

ओं यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु । तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ॥

इस मन्त्र से धारण करनी पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी डुपट्टा और टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में ले के पृष्ठ ७८ में लि० "युवा सुवासाः०" इस मन्त्र से धारण करे उस के पश्चात् अलंकार ले के :—

ओं अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात् ॥

इस मन्त्र से धारण करे और—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ।

इस मन्त्र से आंख में अंजन करना तत्पश्चात् :—

ओं रोचिष्णुरसि ।

इस मन्त्र से दर्पण में मुख अवलोकन करे तत्पश्चात् :—

ओं बृहस्पते छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्धेहि ।

इस मन्त्र से छत्रधारण करे पुनः :—

ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् ।

इस मन्त्र से उपानह् पादवेष्टन पगरखा और जिस को जोड़ा भी कहते हैं धारण करे तत्पश्चात् :—

ओं विश्वाभ्यो माष्ट्राभ्यस्परि पाहि सर्वतः ।

इस मन्त्र से बांस आदि की एक सुन्दर लकड़ी हाथ में धारण करनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के माता पिता आदि जब वह आचार्यकुल से अपना पुत्र घर को आवे उस को बड़े मान्य प्रतिष्ठा उत्सव उत्साह से अपने घर पर ले आवें, घर पर ला के उन के पिता माता सम्बन्धी बन्धु आदि ब्रह्मचारी का सत्कार पृष्ठ ९२ वें में लिखे प्र० करें पुनः उस संस्कार में आये हुए आचार्य आदि को उत्तम अन्न पानादि से सत्कारपूर्वक भोजन करा के और वह ब्रह्मचारी और उस के माता पितादि आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा पूर्वोक्त प्रकार मधुपर्क कर सुन्दर पुष्पमाला वस्त्र गोदान धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति दे के सब के सामने आचार्य के जोकि उत्तम गुण हों उन की प्रशंसा कर और विद्यादान की कृतज्ञता सब को सुनावे सुनो भद्र जनो ! इन महाशय आचार्य ने मेरे पर बड़ा उपकार किया है जिस ने मुझ को पशुता से छुड़ा उत्तम विद्वान् बनाया है उस का प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता इस के बदले में अपने आचार्य को अनेक धन्यवाद दे नमस्कार कर प्रार्थना करता हूं कि जैसे आप ने मुझ को उत्तम शिक्षा और विद्यादान दे के कृतकृत्य किया उसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों को भी कृतकृत्य करें गे और जैसे आप ने मुझ को विद्या दे के आनन्दित किया है वैसे मैं भी अन्य विद्यार्थियों को कृतकृत्य और आनन्दित करता रहूंगा और आप के किये उपकार को कभी न भूलूंगा सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर आप मुझ और सब पढ़ने पढ़ाने हारे तथा सब संसार पर अपनी कृपादृष्टि से सब को सभ्य विद्वान् शरीर और आत्मा के बल से युक्त और परोपकारादि शुभ कर्मों की सिद्धि करने कराने में चिरायु स्वस्थ पुरुषार्थी उत्साही करे कि जिस से इस परमात्मा की सृष्टि में उस के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभावों को कर के धर्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि कर करा के सदा आनन्द में रहैं ॥

इति समावर्तनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ विवाहसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

विवाह उस को कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त हो के निम्न लिखित प्रमाणे सन्तानोत्पत्ति और अपने २ वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है। इस में प्रमाणः—

उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे * चौलकर्मोपनयन गोदानविवाहाः ॥ १ ॥ सार्वकालमेके विवाहम् ॥ २ ॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र, और—

आवसथ्याधानं दारकाले ॥ ३ ॥

इत्यादि पारस्कर, और—

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत॥४॥लक्षणप्रशस्तान्कुशलेन॥५॥

इत्यादि गोभिलीय गृह्य सूत्र और इसी प्रकार शौनक गृह्यसूत्र में भी है॥

अर्थः—उत्तरायण शुक्ल पक्ष अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाह करना चाहिये ॥ १ ॥ और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये ॥ २ ॥ जिस अग्नि का स्थापन विवाह में होता है उस का आवसथ्य नाम है ॥ ३ ॥ प्रसन्नता के दिन स्त्री का पाणिग्रहण जो कि स्त्री सर्वथा शुभ गुणादि से उत्तम हो करना चाहिये ॥ ४ ॥

इस का समयः—पृष्ठ ८८—९२ तक में जानना चाहिये वधू और वर का आयु, कुल, वासस्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें अर्थात् दोनोंसज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी और अधिक से अधिक दूनी होवे परस्पर कुल की परीक्षा भी करनी चाहिये। इस में प्रमाण—

* यह नक्षत्रादि का विचार कल्पनायुक्त है इस से प्रमाण नहीं।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ १ ॥
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २ ॥
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ३ ॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ५ ॥
नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ ६ ॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ७ ॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥ ८ ॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ९ ॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ १० ॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ ११ ॥

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ १२ ॥
सह नौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ १३ ॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते ॥ १४ ॥
इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ १५ ॥
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ १६ ॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ १७ ॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥ १८ ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥ १९ ॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ २० ॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत् ॥ २१ ॥

अर्थः—ब्रह्मचर्य से ४ चार ३ तीन २ दो अथवा १ एक वेद को यथावत् पढ़, अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहाश्रम का धारण करे ॥१॥ यथावत् उत्तम

रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षणयुक्त स्त्री से विवाह करे ॥२॥ जो स्त्री माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो वही द्विजों के लिये विवाह करने में उत्तम है ॥ ३ ॥ विवाह में नीचे लिखे हुए दश कुल चाहें वे गाय आदि पशु धन और धान्य से कितने हीं बड़े हों उन कुलों की कन्या के साथ विवाह न करे ॥४॥ वे दश कुल ये हैं १ एक—जिस कुल में उत्तम क्रिया न हो। २ दूसरा—जिस कुल में कोई भी उत्तम पुरुष न हो। ३ तीसरा—जिस कुल में कोई विद्वान् न हो। ४ चौथा—जिस कुल में शरीर के ऊपर बड़े २ लोम हों। ५ पांचवां—जिस कुल में बवासीर हो। ६ छठा जिस कुल में क्षयी (राज यक्ष्मा) रोग हो ७ सातवां—जिस कुल में अग्निमन्दता से आमाशयरोग हो। ८ आठवां—जिस कुल में मृगी रोग हो। ९ नववां—जिस कुल में श्वेत कुष्ठ। और १० दशवां—जिस कुल में गलित कुष्ठ आदि रोग हों। उन कुलों की कन्या अथवा उन कुलों के पुरुषों से विवाह कभी न करे ॥ ५ ॥ पीले वर्ण वाली, अधिक अङ्ग वाली जैसी छंगुली आदि, रोगवती, जिस के शरीर पर कुछ भी लोम न हों और जिस के शरीर पर बड़े २ लोम हों, व्यर्थ अधिक बोलने हारी और जिस के पीले बिल्ली के सदृश नेत्र हों ॥ ६ ॥ तथा जिस कन्या का (ऋक्ष) नक्षत्र पर नाम अर्थात् रेवती रोहिणी इत्यादि (नदी) जिस का गङ्गा, यमुना इत्यादि (पर्वत) जिस का विन्ध्याचला इत्यादि (पक्षी) पक्षी पर अर्थात् कोकिला हंसा इत्यादि (अहि) अर्थात् उरगा भोगिनी इत्यादि (प्रेष्य) दासी इत्यादि और जिस कन्या का (भीषण) कालिका, चण्डिका इत्यादि नाम हो उस से विवाह न करे ॥ ७ ॥ किन्तु जिस के सुन्दर अंग उत्तम नाम हंस और हस्तिनी के सदृश चाल वाली जिस के सूक्ष्म लोम सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दांत हों जिस के सब अङ्ग कोमल हों उस स्त्री से विवाह करे ॥ ८ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये विवाह आठ प्रकार के होते हैं ॥ ९ ॥ ब्राह्म, कन्या के योग्य सुशील विद्वान् पुरुष का सत्कार कर के कन्या को वस्त्रादि से अलंकृत करके उत्तम पुरुष को बुला अर्थात् जिस को कन्या ने प्रसन्न भी किया हो उस को कन्या देना वह ब्राह्म विवाह कहाता है ॥१०॥ विस्तृत यज्ञ में बड़े २ विद्वानों का वर्ण कर उस में कर्म करने वाले विद्वान् को वस्त्र आभूषण आदि से कन्या को सुशोभित करके देना वह दैव विवाह ॥११॥

३ तीसरा १ एक गाय बैल का जोड़ा अथवा २ दो जोड़े * वर से लेके धर्म पूर्वक कन्यादान करना वह आर्ष विवाह ॥ १२ ॥ और ४ चौथा कन्या और वर को यज्ञशाला में विधि करके सब के सामने तुम दोनों मिल के गृहाश्रम के कर्मों को यथावत् करो ऐसा कह कर दोनों की प्रसन्नता पूर्वक पाणिग्रहण होना वह प्राजापत्य विवाह कहाता है । ये ४ चार विवाह उत्तम हैं ॥ १३ ॥ और ५ पांचवां वर की जाति वालों और कन्या को यथाशक्ति धन देके होम आदि विधि कर कन्या देना आसुर विवाह कहाता है ॥ १४ ॥ ६ छठा वर और कन्या की इच्छा से दोनों का संयोग होना और अपने मन में मान लेना कि हम दोनों स्त्री पुरुष हैं यह काम से हुआ गांधर्व विवाह कहता है ॥१५॥ और ७ सातवां हनन छेदन अर्थात् कन्या के रोकने वालों का विदारण कर क्रोशती रोती कंपती और भयभीत हुई कन्या को बलात्कार हरण करके विवाह करना वह राक्षस विवाह ॥ १६ ॥ और जो सोती पागल हुई वा नशा पी कर उन्मत्त हुई कन्या को एकान्त पा कर दूषित कर देना, यह सब विवाहों में नीच से नीच महानीच दुष्ट अतिदुष्ट पैशाच विवाह है ॥ १७ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, और प्राजापत्य इन ४ चार विवाहों में पाणिग्रहण किये हुए स्त्री पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे वेदादिविद्या से तेजस्वी आप्त पुरुषों के संमत अत्युत्तम होते हैं ॥ १८ ॥ वे पुत्र वा कन्या सुन्दर रूप बल पराक्रम शुद्ध बुद्ध्यादि उत्तम गुण युक्त बहुधनयुक्त पुण्यकीर्त्तिमान् और पूर्ण भोग के भोक्ता अतिशय धर्मात्मा हो कर १०० सौ वर्ष तक जीते हैं ॥ १९ ॥ इन चार विवाहों से जो बाकी रहे ४ चार आसुर, गांधर्व, राक्षस, और पैशाच, इन ४ चार दुष्ट विवाहों से उत्पन्न हुए सन्तान निन्दित कर्म कर्त्ता मिथ्यावादी वेद धर्म के द्वेषी बड़े नीच स्वभाव वाले होते हैं ॥ २० ॥ इस लिये मनुष्यों को योग्य है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती हैं उन का त्याग और जिन उत्तम विवाहों से उत्तम प्रजा होती हैं उन का वर्त्ताव किया करें ॥ २१ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ॥ १ ॥

* यह बात मिथ्या है क्योंकि आगे मनुस्मृति में निषेध किया है और युक्ति विरुद्ध भी है इस लिये कुछ भी न ले दे कर दोनों की प्रसन्नता से पाणिग्रहण होना आर्ष विवाह है ।

कामममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ २ ॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ३ ॥

यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अतिउत्कृष्ट शुभगुण कर्म स्वभाव वाला कन्या के सदृश रूप लावण्यादि गुणयुक्त वर ही को चाहें वह कन्या माता की छः पीढ़ी के भीतर भी हो तथापि उसी को कन्या देना अन्य को कभी न देना कि जिस से दोनों अतिप्रसन्न हो कर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों की उत्पत्ति करें ॥ १ ॥ चाहे मरण पर्यन्त कन्या पिता के घर में विना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन असदृश दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ हीं विवाह करें ॥ २ ॥ जब कन्या विवाह करने की इच्छा करे तब रजस्वला होने के दिन से ३ तीन वर्ष को छोड़ के ४ चौथे वर्ष में विवाह करे ॥ ३ ॥

(प्रश्न) "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी" इत्यादि श्लोकों की क्या गति होगी (उत्तर) इन श्लोकों और इन के मानने वालों की दुर्गति अर्थात् जो इन श्लोकों की रीति से बाल्यावस्था में अपने सन्तानों का विवाह कर करा इन को नष्ट भ्रष्ट रोगी अल्पायु करते हैं वे अपने कुल का जानों सत्यानाश कर रहे हैं इस लिये यदि शीघ्र विवाह करें तो वेदारम्भ में लिखे हुए १६ सोलह वर्ष से न्यून कन्या और २५ पच्चीस वर्ष से न्यून पुरुष का विवाह कभी न करे करावे । इस के आगे जितना अधिक ब्रह्मचर्य रक्खें गे उतना हीं उन को आनन्द अधिक होगा ॥

(प्रश्न) विवाह निकटवासियों से अथवा दूरवासियों से करना चाहिये (उत्तर)

दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति ॥

यह निरुक्त का प्रमाण है कि जितना दूरदेश में विवाह होगा उतना हीं उन को अधिक लाभ होगा (प्रश्न) अपने गोत्र वा भाई बहिनों का परस्पर विवाह क्यों नहीं होता (उत्तर) एक दोष यह है कि इन के विवाह होने में प्रीति कभी नहीं होती क्योंकि जितनी प्रीति परोक्ष पदार्थ में होती है उतनी

प्रत्यक्ष में नहीं और बाल्यावस्था के गुण दोष भी विदित रहते हैं तथा भयादि भी अधिक नहीं रहते दूसरा जब तक दूरस्थ एक दूसरे कुल के साथ सम्बन्ध नहीं होता तब तक शरीर आदि की पुष्टि भी पूर्ण नहीं होती तीसरा दूर सम्बन्ध होने से परस्पर प्रीति उन्नति ऐश्वर्य बढ़ना है निकट से नहीं युवावस्था ही में विवाह का प्रमाण—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः । स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ १ ॥ अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् । कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ २ ॥ अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन् । आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो विनशन्नानृतानि ॥ ३ ॥ ऋ० मं० २ सू० ३५ मं० ४—६ । वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् । आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्त्तयाते ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ३७ । मं० ३ ॥

उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः । उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ५ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ४१ । मं० ७ ॥

अर्थः—जो (मर्मृज्यमानाः) उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त (युवतयः) २० वीसवें वर्ष से २४ चौवीसवें वर्ष वाली हैं वे कन्या लोग जैसे (आपः) जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) हम को प्राप्त होने वाली अपने २ प्रसन्न अपने से डेढ़े वा दूने आयु वाले (तम्) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभलक्षणयुक्त (युवानम्) जवान पति को (परियन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (सः) वह ब्रह्मचारी (शुक्रेभिः) शुद्ध गुण और

(शिक्वभिः) वीर्यादि से युक्त हो के (अस्मे) हमारे मध्य में (रेवत्) अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और (दीदाय) अपने तुल्य युवति स्त्री को प्राप्त होवे जैसे (अप्सु) अन्तरिक्ष वा समुद्र में (घृतनिर्णिक्) जल को शोधन करने हारा (अनिध्मः) आप प्रकाशित विद्युत् अग्नि है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान भीतर सुप्रकाशित रह कर उत्तम संतान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें ॥ १ ॥ हे स्त्रीपुरुषो जैसे (तिस्रः) उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट स्वभावयुक्त (देवीः, नारीः) विद्वान् नरों की विदुषी स्त्रियां (अस्मै) इस (अव्यथ्याय) पीड़ा से रहित (देवाय) काम के लिये (अन्नम्) अन्नादि उत्तम पदार्थों को (दिधिषन्ति) धारण करती हैं (कृनाइव) की हुई शिक्षायुक्त के समान (अप्सु) प्राणवत् प्रीति आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होने के लिये स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री (उप, प्रसर्से) सम्बन्ध को प्राप्त होती है (स, हि) वही पुरुष और स्त्री आनन्द को प्राप्त होती है जैसे जलों में (पीयूषम्) अमृतरूप रस को (पूर्वसूनाम्) प्रथम प्रसूत हुई स्त्रियों का बालक (धयति) दुग्ध पी के बढ़ता है वैसे इन ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सन्तान यथावत् बढ़ते हैं ॥२॥ जैसे राजादि सब लोग (पूर्षु) अपने नगरों और (आमासु) अपने घर में उत्पन्न हुए पुत्र और कन्या रूप प्रजाओं में उत्तम शिक्षाओं को (परः) उत्तम विद्वान् (अप्रमृष्यम्) शत्रुओं को सहने के अयोग्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुए शरीरात्मबलयुक्त देह को (अरातयः) शत्रु लोग (न) नहीं (विनशन्) विनाश कर सकते और (अनृतानि) मिथ्याभाषणादि दुष्ट दुर्व्यसनों को प्राप्त (न) नहीं होते वैसे उत्तम स्त्री पुरुषों को (द्रुहः) द्रोह आदि दुर्गुण और (रिपः) हिंसा आदि पाप (न, सम्पृचः) सम्बन्ध नहीं करते किन्तु जो युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नता पूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं इन के (अस्य) इस (अश्वस्य) महान् गृहाश्रम के मध्य में उत्तम बालकों का (जनिम) जन्म होना है इस लिये हे स्त्रि वा पुरुष तू (सूरीन्) विद्वानों की (पाहि) रक्षा कर (च) और ऐसे गृहस्थों को (अत्र) इस गृहाश्रम में सदैव (स्वः) सुख बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो (यः) जो पूर्वोक्त लक्षण युक्त पूर्ण जवान (ईम्) सब प्रकार की परीक्षा करके (महिषीम्) उत्तम कुल में उत्पन्न हुई विद्या शुभ गुण रूप सुशीलतादि युक्त (इषिराम्) वर की इच्छा करने हारी हृदय को प्रिय स्त्री को (एति) प्राप्त होता है और जो

(पतिम्) विवाह से अपने स्वामी की (इच्छन्ती) इच्छा करती हुई (इयम्) यह (वधूः) स्त्री अपने सदृश हृदय को प्रिय पति को (एति) प्राप्त होती है वह पुरुष वा स्त्री (अस्य) इस गृहाश्रम के मध्य (आश्वस्यात्) अत्यन्त विद्या धन धान्य युक्त सब ओर से होवे और वे दोनों (रथः) रथ के समान (आघोषात्) परस्पर प्रिय वचन बोलें (च) और सब गृहाश्रम के भार को (वहाते) उठा सकते हैं तथा वे दोनों (पुरु) बहुत (सहस्रा) असङ्ख्य उत्तम कार्यों को (परिवर्त्तयाते) सब ओर से सिद्ध कर सकते हैं ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य से सुशिक्षित विद्या युक्त अपने सन्तानों को करा के स्वयंवर विवाह कराओ तो वे (वन्द्येभिः) कामना के योग्य (चितयद्भिः) सब सत्य विद्याओं को जनाने हारे (अर्कैः) सत्कार के योग्य (शूषैः) शरीरात्मबलों से युक्त हो के (वः) तुम्हारे लिये (एषे) सब सुख प्राप्त कराने को समर्थ होवें और वे (उषासानक्ता) जैसे दिन और रात तथा जैसे (विदुषीव) विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (विश्वम्) गृहाश्रम के संपूर्ण व्यवहार को (आवहतः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (ह) वैसे ही इस (यज्ञम्) संगत रूप गृहाश्रम के व्यवहार को वे स्त्री पुरुष पूर्ण कर सकते हैं और (मर्त्याय) मनुष्यों के लिये यही पूर्वोक्त विवाह पूर्ण सुखदायक है और (यह्वी) बड़े ही शुभगुणकर्मस्वभाव वाले स्त्री पुरुष दोनों (दिवः) कामनाओं को (उप, प्र, वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

जैसे ब्रह्मचर्य में कन्या का ब्रह्मचर्य वेदोक्त है वैसे ही सब पुरुषों को ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो परस्पर परीक्षा करके जिस से जिस की विवाह करने में पूर्ण प्रीति हो उसी से उस का विवाह होना अत्युत्तम है। जो कोई युवावस्था में विवाह न करा के बाल्यावस्था में अनिच्छित अयोग्य वर कन्या का विवाह करावें गे वे वेदोक्त ईश्वराज्ञा के विरोधी हो कर महादुःखसागर में क्यों कर न डूबें गे और जो पूर्वोक्त विधि से विवाह करते कराते हैं वे ईश्वराज्ञा के अनुकूल होने से पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं (प्रश्न) विवाह अपने २ वर्ण में होना चाहिये वा अन्यवर्ण में भी (उत्तर) अपने २ वर्ण में। परन्तु वर्ण व्यवस्था गुण कर्मों के अनुसार होनी चाहिये जन्ममात्र से नहीं जो पूर्ण विद्वान् धर्मात्मा परोपकारी जितेन्द्रिय मिथ्याभाषणादि दोषरहित विद्या और धर्म प्रचार में तत्पर रहे इत्यादि उत्तम गुण जिस में हों वह ब्राह्मण

ब्राह्मणी। विद्या बल शौर्य न्यायकारित्वादि गुण जिस में हों वह क्षत्रिय क्षत्रिया। और विद्वान् हो के कृषि पशुपालन व्यापार देशभाषाओं में चतुरतादि गुण जिस में हों वह वैश्य वैश्या। और जो विद्याहीन मूर्ख हो वह शूद्र शूद्रा कहावे। इसी क्रम से विवाह होना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में आनन्द होता है अन्यथा नहीं॥ इस वर्णव्यवस्था में प्रमाणः—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वंपूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥ अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥ आपस्तम्भे ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ ३ ॥ मनुस्मृतौ ॥

अर्थः—धर्माचरण से नीच वर्ण उत्तम २ वर्ण को प्राप्त होता है और उस वर्ण में जो २ कर्त्तव्य अधिकार रूप कर्म हैं वे सब गुण कर्म उस पुरुष और स्त्री को प्राप्त होवें ॥ १ ॥ वैसे ही अधर्माचरण से उत्तम २ वर्ण नीचे २ के वर्ण को प्राप्त होवें और वे ही उस २ वर्ण के अधिकार और कर्मों के कर्त्ता होवें ॥ २ ॥ उत्तम गुण कर्म स्वभाव से जो शूद्र है वह वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण, और वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण, तथा क्षत्रिय ब्राह्मण, वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है वैसे ही नीच कर्म और गुणों से जो ब्राह्मण है वह क्षत्रिय वैश्य शूद्र, और क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा वैश्य शूद्र वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था होने से पक्षपात न हो कर सब वर्ण उत्तम बने रहते और उत्तम बनने में प्रयत्न करते और उत्तम वर्ण के भय से कि मैं नीच वर्ण न हो जाऊं इस लिये बुरे कर्म छोड़ उत्तम कर्मों ही को किया करते हैं इस से संसार की बड़ी उन्नति है। आर्यावर्त्त देश में जब तक ऐसी वर्णव्यवस्था पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहण उत्तमता से स्वयंवर विवाह होता था तभी देश की उन्नति थी, अब भी ऐसा ही होना चाहिये जिस से आर्यावर्त्त देश अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो कर आनन्दित होवे ॥

अब वधू वर एक दूसरे के गुण कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करें :—दोनों का तुल्य शील, समान बुद्धि, समान आचार, समान रूपादि गुण, अहिंसकता, सत्य मधुरभाषण, कृतज्ञता, दयालुता, अहंकार, मत्सर, ईर्ष्या, काम, क्रोध, निर्लोभता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, कपट, द्यूत, चोरी, मद्य, मांसाहारादि दोषों का त्याग गृह कामों में अतिचतुरता हो जब २ प्रातः सायं वा परदेश से आ कर मिलें तब २ नमस्ते इस वाक्य से परस्पर नमस्कार कर स्त्री पति के चरणस्पर्श पादप्रक्षालन आसन दान करे तथा दोनों परस्पर प्रेम बढ़ाने हारे वचनादि व्यवहारों से वर्त कर आनन्द भोगें वर के शरीर से स्त्री का शरीर पतला और पुरुष के स्कन्धे के तुल्य स्त्री का शिर होना चाहिये तत्पश्चात् भीतर की परीक्षा स्त्री पुरुष वचनादि व्यवहारों से करें ॥

ओं ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् । यदियं कुमार्य्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम् । यत्सत्यं तद्दृश्यताम् ।

अर्थः—जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावे पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा करके दोनों परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष इस जगत् के पूर्व ऋत यथार्थ स्वरूप महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्त्व में सत्य त्रिगुणात्मक नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है जैसे पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी और मैं कुमार पुरुष इस समय दोनों में विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं उस को यह कन्या और मैं वर प्राप्त होवें और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें ॥

विधिः—जब कन्या रजस्वला हो कर पृष्ठ ३४ में लिखे प्रमाणे शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्री निश्चित की हो उस रात्रि में विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये और १५–२१ पृष्ठ में लि० यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य आदि सब सामग्री शुद्ध कर के रखनी उचित है पश्चात् एक * घंटे मात्र रात्रि जाने पर ॥

* यदि आधी रात तक विधि पूरा न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवें कि जिस से मध्यरात्रि तक विवाह विधि पूरा हो जावे ।

ओं कामवेद ते नाममदो नामासि समानयामुꣳसुराते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥ १ ॥ ओं इमं त उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्द्वितीयम् । तेन पुꣳसोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञि स्वाहा ॥२॥ ओं अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः। तेनाज्यमकृण्वꣳस्त्रैशृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥ ३ ॥

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेके वधू वर स्नान कर पश्चात् वधू उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पृष्ठ ४ से १४ तक लि० प्र० ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करें तत्पश्चात् पृष्ठ २२–२३ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान पृष्ठ १६ में लि० स्थालीपाक आदि यथोक्त कर वेदी के समीप रक्खे वैसे ही वर भी एकान्त अपने घर में जा के उत्तम वस्त्रालंकार करके यज्ञशाला में आ उत्तमासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ ४–८ में लि० प्र० ईश्वर * स्तुति प्रार्थनोपासना कर वधू के घर को जाने का ढंग करे तत्पश्चात् कन्या के और वर पक्ष के पुरुष बड़े सामान से वर को घर ले जावें जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करे उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर सत्कार करें उस की रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्त्ता–

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ॥

इस वाक्य को बोले उस पर वर—

ओं अर्चय ॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवे पुनः जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिये उत्तम आसन सिद्ध कर रक्खा हो उस को वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रहे ॥

* विवाह में आये हुए भी स्त्री पुरुष एकाग्र चित्त ध्यानावस्थित हो के इन तीन कर्मों के अनुसार ईश्वर का चिन्तन किया करें ॥

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम् ॥

यह उत्तम आसन है आप ग्रहण कीजिये वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के वधू के हाथ से आसन ले बिछा उस पर सभा मंडप में पूर्वाभिमुख बैठ के वर—

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः । इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर के कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के आगे धरे पुनः वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से उदक ले पग *प्रक्षालन करे और उस समय—

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् फिर भी कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे पुनः कन्या—

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जलपात्र ले के उस से मुखप्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोके—

* यदि घर का प्रवेशक द्वार पूर्वाभिमुख हो तो वर उत्तराभिमुख और वधू तथा कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख खड़े रहें के यदि ब्राह्मण वर्ण हों तो प्रथम दक्षिण पग पश्चात् बायां और अन्य क्षत्रियादि वर्ण हों तो प्रथम बायां पग धोवें पश्चात् दहना ।

ओं आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि । ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचिमत्पयः ॥

इन मन्त्रों को बोले तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उस में आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

ओं आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के सामने करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले सामने धर उस में से दहिने हाथ में जल जितना अङ्गुलियों के मूल तक पहुंचे उतना ले के वर—

ओं आमागन् यशसा सꣳसृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥

इस मन्त्र से एक आचमन इसी प्रकार दूसरी और तीसरी वार इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधु* पर्क का पात्र कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥

ऐसी विनती वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले और उस समय—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे और :—

* मधुपर्क उस को कहते हैं जो दही में घी वा सहत मिलाया जाता है उस का परिमाण १२ बारह तोले दही में ४ चार तोले सहत अथवा ४ चार तोले घी मिलाना चाहिये और यह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है ॥

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥

इस मन्त्र को बोल के मधुपर्क के पात्र को वाम हाथ में लेवे और :-

ओं भूर्भुवः स्वः। मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥१॥ ओं भूर्भुवः स्वः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२॥ ओं भूर्भुवः स्वः। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥३॥

इन तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे-

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥

इस मन्त्र को पढ़ दहिने हांथ की अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन वार विलोवे और उस मधुपर्क में से वर—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से पूर्व दिशा।

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा।

ओं आदित्यास्त्वा जागतेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा और

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा २ छोड़े अर्थात् छींटे देवे।

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के पात्र के मध्य भाग में से लेके ऊपर की ओर तीन वार फेंकना तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर भूमि में अपने सन्मुख तीनों पात्र रक्खे रख के—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥

इस मन्त्र को एक २ वार बोल के एक २ भाग में से वर थोड़ा २ प्राशन करे वा सब प्राशन करे जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक को देवे वा जल में डाल देवे तत्पश्चात्—

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे तत्पश्चात् वर पृष्ठ २२ में लि० प्र० चक्षुरादि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे पश्चात् कन्या—

ओं गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ।

इस वाक्य से वर की विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य जो कि वर के योग्य हो अर्पण करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ।

इस वाक्य से उस को ग्रहण करे इस प्रकार मधुपर्कविधि यथावत् करके वधू और कार्यकर्ता वर को सभामण्डपस्थान * से घर में ले जा के शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बैठावे और कार्यकर्ता उत्तराभिमुख बैठ के—

ओं अमुक † गोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीं ‡ मलङ्कृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ।

इस प्रकार बोल के वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रख के उस के हाथ में वधू का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना और वर—

* यदि सभा मण्डपस्थापन न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो उस से दूसरे घर में वर को ले जावे ॥

† अमुक इस पद के स्थान में जिस गोत्र और कुल में वधू उत्पन्न हुई हो उस का उच्चारण अर्थात् उस का नाम लेना ॥

‡ "अमुकनाम्नीम्" इस स्थान पर वधू का नाम द्वितीया विभक्ति के एकवचन से बोलना ॥

ओं प्रतिगृह्णामि ।

ऐसा बोल के—

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।

इस मन्त्र को बोल के वधू को उत्तम वस्त्र देवे तत्पश्चात्—

ओं या अकृतन्न वयं या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ । तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।

इस मन्त्र को बोल के वधू को वर उपवस्त्र देवे वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ।

इस मन्त्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और :—

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥

इस मन्त्र को पढ़ के द्विपट्टा धारण करे । इस प्रकार वधू वस्त्र परिधान कर के जब तक सम्हले तब तक कार्यकर्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा कुण्ड के समीपस्थ हो पृष्ठ २३ में लि० इन्धन और कर्पूर वा घृत से कुण्ड के अग्नि को प्रदीप्त करे और आहुति के लिये सुगन्ध डाला हुआ घी बटलोई में कर के कुण्डके अग्नि पर गरम कर कांसे के पात्र में रक्खे और स्रुवादि होम के पात्र तथा शुद्ध जलपात्र इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे और वर पक्ष का एक पुरुष शुद्धवस्त्रधारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को ले के यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलशस्थापन अर्थात् भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे धर के जब तक विवाह का कृत्य पूरण न हो जाय तब तक उत्तराभिमुख बैठा रहे और उसी प्रकार

वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड ले के कुण्ड के दक्षिणभाग में कार्य-समाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे और इसी प्रकार सहोदर वधू का भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो वह चावल वा जुआर की धाणी और शमीवृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमीपत्रयुक्त धाणी की ४ चार अञ्जली एक शुद्ध सूप में रख के धाणी सहित सूप ले के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे तत्पश्चात् कार्यकर्ता एक सपाट शिला जो कि सुन्दर चीकनी हो उस को तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञिय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल के जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों उन आसनों को रखवावे तत्पश्चात् वस्त्रधारण करे हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के सन्मुख लावे और उस समय वर और कन्या—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ * ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोलें तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़ के :—

ओं यदेषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा । हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु † असौ ॥ २ ॥

---

* वर और कन्या बोलें कि हे "विश्वे, देवाः" इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगो आप हम दोनों को "समञ्जन्तु" निश्चय करके जानें कि अपनी प्रसन्नता पूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे का स्वीकार करते हैं कि "नौ" हमारे दोनों के "हृदयानि" हृदय "आपः" जल के समान "सम्" शान्त और मिले हुए रहेंगे जैसे "मातरिश्वा" प्राण वायु हम को प्रिय है वैसे "सम्" हम दोनों एक दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे जैसे "धाता" धारण करने हारा परमात्मा सब में "सम्" मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे का धारण करेंगे जैसे "समुदेष्ट्री" उपदेश करने हारा श्रोताओं से प्रीति करता है वैसे "नौ" हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को "दधातु" धारण करे।

† (असौ) इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करना हे वरानने वा हे वरानन (यत्) जो तू (मनसा) अपनी इच्छा से मुझ को जैसे (पवमानः) पवित्र वायु (वा) जैसे (हिरण्यपर्णो, वैकर्णः) तेजोमय जल आदि को किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ पदार्थों और (दिशोऽनु) दिशाओं को प्राप्त होता है वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छा से मुझ को प्राप्त होती वा होता है उस (त्वा) तुझ को (सः) वह परमेश्वर (मन्मनसाम्) मेरे मन के अनुकूल (करोतु) करे और हे (वीर) जो आप मन से मुझ को (एषि) प्राप्त होते हो उस आप को जगदीश्वर मेरे मन के अनुकूल सदा रक्खे।

इस मन्त्र को बोल के उस को ले के घर के बाहर मण्डपस्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें और वधू तथा वर—

ओं भूर्भुवः स्वः । अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे * ॥ ३ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । सा नः पूषा शिवतमामेरयसा न ऊरू उशति विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामुकामा बहवो निविष्ट्यै ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को वर बोल के दोनों वर वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के वधू :—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पताᳬ शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् पृष्ठ १५ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करनी तत्पश्चात् पृ० २१ में लिखे०

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

इत्यादि तीन मन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र से एक २ आचमन वैसे तीन आचमन वर वधू और पुरोहित और कार्यकर्त्ता कर के हस्त और मुख प्रक्षालन एक शुद्ध पात्र में करके दूर रखवा दे हाथ और मुख पोंछ के पृ० २२ में लि० यज्ञकुण्ड में (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव०) इस मन्त्र से अग्न्याधान पृ० २४ में लिखे० (ओंअयन्त इध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान और पृ० २४ में लिखे० ।

* हे वरानने 'अपतिघ्नि' पति से विरोध न करने हारी तू जिस के (ओम्) अर्थात् रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों के दाता आदि नाम हैं उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से हे "अघोरचक्षुः" प्रियदृष्टि (एधि) हो (शिवा) मंगल करने हारी 'पशुभ्यः' सब पशुओं को सुखदाता 'सुमनाः' पवित्रान्तःकरणयुक्त प्रसन्नचित्त 'सुवर्चाः' सुन्दर शुभ गुण कर्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित 'वीरसूः' उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने हारी 'देवृकामा' देवर की कामना करती हुई अर्थात् नियोग की भी इच्छा करने हारी 'स्योना' सुखयुक्त हो के 'नः' हमारे 'द्विपदे' मनुष्यादि के लिये 'शम्' सुख करने हारी 'भव' सदा हो और 'चतुष्पदे' गाय आदि पशुओं को भी 'शम्' सुख देने हारी हो वैसे ही मैं तेरा पति भी वर्त्ता करूं ॥

ओं अदितेनुमन्यस्व ।

इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड की तीन ओर और (ओं देवसवितः प्रसुव०) इस मन्त्र से कुण्ड की चारों ओर दक्षिण हाथ की अंजली से शुद्ध जल सेचन करके कुण्ड में डाली हुई समिधा प्रदीप्त हुए पश्चात् पृ० २५ में लि० वधू वर पुरोहित और कार्यकर्त्ता आघारावाज्यभागाहुति ४ चार घी की देवे तत्पश्चात् पृ० २५ में लि० व्याहृति आहुति ४ चार घी की और पृ० २६–२७ में लि० अष्टाज्याहुती ८ आठ ये सब मिल के १६ सोलह आज्याहुति दे के प्रधान होम का प्रारम्भ करें प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्धे पर स्पर्श करके पृ० २६ में लि० (ओं भूर्भुवः स्वः अग्न-आयूंषि०) इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात् एक २ से एक २ मिल के ४ चार आज्याहुति क्रम से करें और—

ओं भूर्भुवः स्वः।त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि । अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के ५ पांचवी आज्याहुति देनी तत्पश्चात्—

ओं ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः, इदन्न मम ॥२॥ ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम । ताभ्यस्स्वाहा । इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा

गन्धर्वः। स नं इदं ब्रह्मं क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये, चन्द्रमसे, गन्धर्वाय; इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। ताभ्यः स्वाहा इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः, इदन्न मम ॥६॥ ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः। स नं इदं ब्रह्मं क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऊर्जो नाम। ताभ्यः स्वाहा इदमद्भ्यो अप्सरोभ्यऽ ऊर्ग्भ्यः, इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स नं इदं ब्रह्मं क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः; इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्मं क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽ ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः; इदन्न मम ॥ १२ ॥

इन १२ बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् (जयाहोम) करना ॥

ओं चित्तं च स्वाहा। इदं चित्ताय, इदन्न मम ॥१॥ ओं चित्तिश्च स्वाहा। इदं चित्त्यै, इदन्न मम ॥२॥ ओं आकूतं

च स्वाहा । इदमाकूताय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं आकूतिश्च स्वाहा । इदमाकूत्यै, इदन्न मम ॥४॥ ओं विज्ञातञ्च स्वाहा । इदं विज्ञाताय, इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं विज्ञातिश्च स्वाहा । इदं विज्ञात्यै, इदन्न मम ॥६॥ ओं मनश्च स्वाहा । इदं मनसे, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं शक्करीश्च स्वाहा । इदं शक्करीभ्यः, इदन्न मम ॥८॥ ओं दर्शश्च स्वाहा । इदं दर्शाय, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं पौर्णमासं च स्वाहा । इदं पौर्णमासाय, इदन्न मम ॥१०॥ ओं बृहच्च स्वाहा । इदं बृहते, इदन्न मम ॥११॥ ओं रथन्तरञ्च स्वाहा । इदं रथन्तराय, इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु । तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहा। इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय, इदन्न मम ॥ १३ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके जयाहोम की १३ तेरह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् अभ्यातन होम करना—इस के मन्त्र ये हैं—

ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा ॥ इदमग्नये भूतानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये । इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा ॥ इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये, इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा॥ इदं वायवे, अन्तरिक्षस्याधिपतये, इदन्न मम ॥४॥ ओं सूर्यो दिवोधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये । इदन्न मम ॥५॥ ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये, इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये, इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदं वरुणायापामधिपतये, इदन्न मम ॥९॥ ओं समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये, इदन्न मम ॥१०॥ ओं अन्नᳬ साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये, इदन्न

मम ॥ ११ ॥ ओं सोमऽ ओषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतये, इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १३ ॥ ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं रुद्राय पशूनामधिपतये इदन्न मम ॥१४॥ ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा। इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये, इदन्न मम ॥ १५ ॥ ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १६ ॥ ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः । इदन्न मम ॥ १७ ॥ ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहाः इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च, इदन्न मम ॥ १८ ॥

इस प्रकार अभ्यातन होम की १८ अठारह आज्याहुति दिये पीछे पुनः—

ओं अग्निरैतु प्रथमो देवताना१ँ सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदय१ँ राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेय१ँ स्त्रीपौत्र-मघन्नरोदात् स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं इमा-मग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्यो-पस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामिय१ँ स्वाहा ॥ इदमग्नये, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वस्तिनोऽग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्र१ँ स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सुगन्नु पन्थां प्रदिशन् न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्न ऽआयुः । अपैतु मृत्युरमृतं म आगाद्वैवस्वतो नोऽअभयं कृणोतु स्वाहा ॥ इदं वैवस्वताय । इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं परं मृत्योऽअनुपरे हि पन्थां यत्र नोऽअन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा१ँ रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा ॥ इदं मृत्यवे इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं द्यौस्ते पृष्ठ१ँ रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च । स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावाससः परि-धाद्बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः । इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्था-दन्यत्रत्वद्रुदत्यः संविशन्तु मा त्व१ँ रुदत्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजा१ँ सुमनस्यमाना१ँ स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यपा-प्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णस्स्रजमिवोन्मुच्यदिषद्भ्यः प्रतिमु-ञ्चामि पाश१ँ स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥ ८ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ आहुति करके आठ आज्याहुति दीजिये तत्पश्चात् २५ पृष्ठ में लि० प्र०—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से ४ चार आज्याहुती दीजिये ऐसे होम करके वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सन्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रह कर अपने वामहस्त से वधू का दहना हाथ चत्ता धर के ऊपर को उठाना और अपने दक्षिण हाथ से वधू के उठाये हुए दक्षिण हस्ताञ्जली अंगुष्ठा सहित चत्ती ग्रहण करके वर—

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः * ॥ १ ॥

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव † ॥ २ ॥ ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् ‡ ॥ ३ ॥

* हे वरानने जैसे मैं (सौभगत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये "ते" तेरे "हस्तम्" हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरावस्था को प्राप्त सुख पूर्वक (आसः) हो तथा हे वीर मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आप के हस्त को ग्रहण करती हूं आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिये आप को मैं और मुझ को आप आज से पति पत्नी भाव करके प्राप्त हुए हैं (भगः) सकल ऐश्वर्य युक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति का कर्त्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रमकर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं आज से मैं आप के हस्ते और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे ॥

† हे प्रिये "भगः" ऐश्वर्ययुक्त मैं "ते" तेरे "हस्तम्" हाथ को "अग्रभीत्" ग्रहण करता हूं तथा "सविता" धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे "हस्तम्" हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण कर चुका हूं "त्वम्" तू "धर्मणा" धर्म से मेरी पत्नी भार्या "असि" है और "अहम्" मैं धर्म से "तव" तेरा "गृहपतिः" गृहपति हूं अपने दोनों मिल के घर के कामों की सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है उस को कभी न करें जिस से घर के सब काम सिद्ध उत्तम सन्तान ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे ॥

‡ हे अनघे (बृहस्पतिः) सब जगत् को पालन करने हारे परमात्मा ने जिस (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है (इयम्) यही तू जगत् भर में मेरी (पोष्या) पोषण करने योग्य पत्नी (अस्तु) हो हे (प्रजावति) तू (मया, पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) शरद ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त (शं, जीव) सुखपूर्वक जीवन धारण कर। वैसे ही वधू भी वर से प्रतिज्ञा करावे। हे भद्र वीर परमेश्वर की कृपा से आप मुझ को प्राप्त हुए हो मेरे लिये आप के विना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी पालन करनेहारा सेव्य इष्टदेव कोई नहीं है न मैं आप से अन्य दूसरे किसी को मानूं गी जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करोगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वर्त्ता करूंगी आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिये ॥

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् । तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया * ॥ ४ ॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु † ॥ ५ ॥

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा कुलायम् । न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् ‡ ॥ ६ ॥

इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोल के पश्चात् वर वधू की हस्ताञ्जली पकड़ के उठावे और उस को साथ ले के जो कुंड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था उस को वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था वर वधू के साथ २ उसी कलश को ले चले यज्ञकुंड की दोनों प्रदक्षिणा करके—

* हे शुभानने जैसे (बृहस्पतेः) इस परमात्मा की सृष्टि में और उस की तथा (कवीनाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दंपती होते हैं (त्वष्टा) जैसे विजुली सब को व्याप्त हो रही है वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिये (वासः) सुन्दर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम्) मुझ से सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध करे जैसे (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने हारा परमात्मा (च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमाम्) इस तुझ (नारीम्) मुझ नर की स्त्री को (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करे, वैसे मैं (तेन) इस सब से (सूर्यामिव) सूर्य की किरण के समान तुझ को वस्त्र और भूषणादि से सुशोभित सदा रक्खूंगा तथा हे प्रिय आप को मैं इसीप्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण कर के (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रक्खूंगी ॥

† हे मेरे सम्बन्धी लोगो जैसे (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणा) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (उभा) दोनों (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजा का पालन करने हारा राजा (मरुतः) सभ्य मनुष्य (ब्रह्म) सब से बड़ा परमात्मा और (सोमः) चन्द्रमा तथा सोमलतादि ओषधी गण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं वैसे (इमां, नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी (वर्धयन्तु) बढ़ाया करो जैसे मैं इस स्त्री को प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूंगा वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस मेरे पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और प्रजा से बढ़ाया करूंगी जैसे ये दोनों मिल के प्रजा को बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिल के गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें ॥

‡ हे कल्याणक्रीड़े जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः) इस तेरे (रूपम्) रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त और इस में प्रेमद्वारा व्याप्त होता हूं वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझ में प्रेम से व्याप्त हो के अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होवे जैसे मैं (मनसा) मन से भी इस तुझ वधू के साथ (स्तेयम्) चोरी को (उदमुच्ये) छोड़ देता हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (नाद्मि) भोग नहीं करता हूं (स्वयम्) आप (श्रन्थानः) पुरुषार्थ से शिथिल हो कर भी (वरुणस्य) उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता रहूं वैसे (इत्) ही यह वधू भी किया करे इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि मैं भी इसी प्रकार आप से वर्ता करूंगी ॥

ओं अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः सं प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् * ॥ १७ ॥

इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके पश्चात् वर वधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रह के वधू की दक्षिणाञ्जली अपनी दक्षिणाञ्जली से पकड़ के दोनों खड़े रहें और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश ले के बैठे वैसे तत्पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी सूप में रक्खी थी उस को बायें हाथ में लेके दहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर—

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳ स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽववाधस्व पृतनायतः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर कुण्ड के समीप आ के पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहां वधू दक्षिण ओर रह के अपनी हस्ताञ्जली को वर की हस्ताञ्जली पर रक्खे तत्पश्चात् वधू की मा वा भाई जो बायें हाथ में धाणी का सूपड़ा पकड़ के खड़ा रहा हो वह धाणी का सूपड़ा भूमि पर धर अथवा

---

* हे वधू जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञान पूर्वक तेरा ग्रहण करने वाला (अस्मि) होता हूं वैसे (सा) सो (त्वम्) तू भी ज्ञान पूर्वक मेरा ग्रहण करने हारी (असि) है जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुझ को (अमः) ग्रहण करता हूं वैसे (सा) सो मैंने ग्रहण की हुई (त्वम्) तू मुझ को भी ग्रहण करती है (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूं हे वधू तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने हारी है और मैं (द्यौः) वर्षा करने हारे सूर्य के समान हूं वह तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें (सह) साथ मिल के (रेतः) वीर्य को (दधावहै) धारण करें (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (प्रजनयावहै) उत्पन्न करें (बहून्) बहुत (पुत्रान्) पुत्रों को (विन्दावहै) प्राप्त होवें (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) जरावस्था के अन्त तक जीवन युक्त (सन्तु) रहें (संप्रियौ) अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णू) दूसरे में रुचियुक्त एक (सुमनस्यमानौ) अच्छे प्रकार विचार करते हुए (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से (पश्येम) देखते रहें (शतं,शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से (जीवेम) जीते रहें और (शतं,शरदः) सौ वर्षपर्यन्त प्रिय वचनों को (शृणुयाम) सुनते रहें।

किसी के हाथ में देके जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्ताञ्जली है उस में प्रथम थोड़ा घृत सिंचन करके पश्चात् प्रथम सूप में से दहिने हाथ की अञ्जली से दो बार ले के वर वधू की एकत्र की हुई अञ्जली में धाणी डाले पश्चात् उस अञ्जलीस्थ धाणी पर थोड़ा सा घी सिंचन करे पश्चात् वधू वर की हस्ताञ्जली सहित अपनी हस्ताञ्जली को आगे से नमा के—

ओं अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत । स नोऽअर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा । इदमर्यम्णे, अग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥२॥ ओं इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव मम तुभ्यं च संवदनं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥३॥

इन तीन मन्त्रों में एक २ मन्त्र से एक २ बार थोड़ी २ धाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित इन्धन पर दे के वर—

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति । यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः । यस्यां भूतꣳ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के अपने जमणे हाथ की हस्ताञ्जली से वधू की हस्ताञ्जली पकड़ के वर—

ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दाग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥ ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमपदीक्षामयष्ट । कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहे महिद्विषः ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें—तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार

कलश सहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर पुनः दोबार इसी प्रकार अर्थात् सब मिल के ४ चार परिक्रमा करके अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा ठहर रह के उक्त रीति से तीन बार क्रिया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बधू वर खड़े रहें पश्चात् वधू की मा अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उस में बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जली में डाल देवे पश्चात् वधू—

ओं भगाय स्वाहा । इदं भगाय । इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे पश्चात् वर वधू को दक्षिण भाग में रख के कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के:—

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये, इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे तत्पश्चात् एकान्त में जा के वधू के बंधे हुए केशों को वर—

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येनस्त्वा बध्नात्सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टान्त्वा सह पत्या दधामि ॥१॥
प्रेतो मुञ्चामि नामतस्सुबद्धाममुतस्करम् । यथेमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सती ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोल के प्रथम वधू के केशों को छोड़ना तत्पश्चात् सभामण्डप में आ के सप्तपदी विधि का आरम्भ करे इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी इसे जोड़ा कहते हैं वधू वर दोनों जने आसन पर से उठ के वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जली पकड़ के यज्ञकुंड के उत्तर भाग में जावें तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख के दोनों समीप २ उत्तराभिमुख खड़े रहें तत्पश्चात् वर—

मासव्येन दक्षिणमतिक्राम ।

ऐसा बोल के वधू को उस का दक्षिण पग उठवा के चलने के लिये आज्ञा देनी और

ओं इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के वर अपने साथ वधू को ले कर ईशान दिशा में एक पग * चले और चलावे ।

ओं ऊर्ज्जे द्विपदी भव० † ॥

इस मन्त्र से दूसरा

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव०

इस मन्त्र से तीसरा

ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव०

इस मन्त्र से चौथा

ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव०

इस मन्त्र से पांचवां ।

ओं ऋतुभ्यः षट्पदी भव०

इस मन्त्र से छठा और

ओं सखे सप्तपदी भव०

इस मन्त्र से सातवां पगला चलना इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बन्धे हुए शुभासन पर बैठें तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को ले के यज्ञकुंड की दक्षिण की ओर में बैठाया था वह पुरुष उस पूर्वस्थापित जलकुम्भ को ले के वधू वर के समीप आवे और उस में से थोड़ासा जल ले के वधू वर के मस्तक पर छिटकावे और वर—

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह

* इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा पग उठा के ईशान कोण की ओर बढ़ा के धरे तत्पश्चात् दूसरे बायें पग को उठा के जमणे पग की पटली तक धरे अर्थात् जमणे पग से थोड़ा सा पीछे बायां पग रक्खे इसी को एक पगला गिणना इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों से भी क्रिया करनी अर्थात् एक २ मन्त्र से एक २ पग ईशान दिशा की ओर धरना ॥

† जो भव के आगे मन्त्र में पाठ है सो छः मन्त्रों के इस भव पद के आगे पूरा बोल के पग धरने की क्रिया करनी ।

नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्माऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥ ओं आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को बोलें तत्पश्चात् वधू वर वहां से उठ के—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के सूर्य का अवलोकन करें तत्पश्चात् वर वधू के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ ले के उस से वधू का हृदय स्पर्श करके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्*

इस मन्त्र को बोले और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले +

तत्पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ धर के :—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

इस मन्त्र को बोल के कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करना और इस समय सब लोग

---

* हे वधू (ते) तेरे (हृदयम्) अन्तःकरण और आत्मा को (मम) मेरे (व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि धारण करता हूं (मम) मेरे (चित्तमनु) चित्त के अनुकूल (ते) तेरा (चित्तम्) चित्त सदा (अस्तु) रहे) (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तू (एकमनाः) एकाग्र चित्त से (जुषस्व) सेवन किया कर (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मेरे लिये (नियुनक्तु) नियुक्त करे ॥

+ वैसे ही हे प्रिय वीर स्वामिन् आप का हृदय आत्मा और अन्तःकरण मेरे प्रियाचरण कर्म में धारण करती हूं मेरे चित्त के अनुकूल आप का चित्त सदा रहे आप एकाग्र हो के मेरी वाणी का जो कुछ मैं आप से कहूं उस का सेवन सदा किया कीजिये क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आप को मेरे आधीन किया है जैसे मुझ को आप के आधीन किया है अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों वर्ता करें जिस से सर्वदा आनन्दित और कीर्तिमान् पतिव्रता और स्त्रीव्रत होके सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणादि को छोड़ के परस्पर प्रीतियुक्त रहें ॥

ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु ॥

इस वाक्य से आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वधू वर यज्ञकुंड के समीप पूर्ववत् बैठ के पुनः पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे दोनों (ओं यदस्य कर्मणो०) इस स्विष्टकृत् मन्त्र से होमाहुति अर्थात् एक आज्याहुति और पृष्ठ २५ में लिखे

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से एक२ से एक २ आहुति करके ४ चार आज्याहुति देवें और इस प्रमाणे विवाह के विधि पूरे हुए पश्चात् दोनों जने आराम अर्थात् विश्राम करें इस रीति से थोड़ासा विश्राम करके विवाह का उत्तरविधि करें। यह उत्तरविधि सब वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके एक घर प्रथम से बना रक्खा हो वहां जा के करनी तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय वधू वर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठें और पृष्ठ २३ में लि० अग्न्याधान (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से करें यदि प्रथम ही सभामंडप ईशान दिशा में हुआ और प्रथम अग्न्याधान किया हो तो अग्न्याधान न करे (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे—

ओं अग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार मन्त्रोंसे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और पृष्ठ २५में लिखे प्रमाणे—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से ४ चार व्याहृति आहुति ये सब मिल के ८ आठ आज्याहुति देवें तत्पश्चात् प्रधान होम करें निम्नलिखित मन्त्रों से—

ओं लेखा सन्धिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते । तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा—इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥ ओं केशेषु यच्च पावक पापकमीक्षिते रुदिते च यत् । तानि० ॥ ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत् ।

तानि०॥ ओं आरोकेषु दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्। तानि०॥ ओं ऊर्वोपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते। तानि० ॥ ओं यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन्। पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा। इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥

ये छः मन्त्र हैं इन में से एक२ मन्त्र बोल एक२ से छः आज्याहुति देनी तत्पश्चात् पृ० २५ में लिखे०—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार व्याहृति मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति दे के वधू वर वहां से उठ के सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें तत्पश्चात् वर—

ध्रुवं पश्य

ऐसा बोल के वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे* और वधू वर से बोले कि मैं

पश्यामि

ध्रुव के तारे को देखती हूं तत्पश्चात् वधू बोले—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य † असौ)

इस मन्त्र को बोल के तत्पश्चात्—

अरुन्धतीं पश्य ॥

ऐसा वाक्य बोल के वर वधू को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू—

पश्यामि ॥

ऐसा कह के—

ओं अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मि (अमुष्य ‡ असौ)

---

* हे वधू वा वर जैसे यह ध्रुव दृढ़ स्थिर है इसी प्रकार आप और मैं एक दूसरे के प्रियाचरणों में दृढ़ स्थिर रहें ॥

† (अमुष्य) इस पद के स्थान में षष्ठीविभक्त्यन्त पति का नाम बोलना जैसे शिवशर्म्मा पति का नाम हो तो "शिवशर्म्मण:" ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमा विभक्त्यन्त बोल के इस मन्त्र को पूरा बोले जैसे "भूयासं सौभाग्यदाहं शिवशर्म्मणस्ते" इस प्रकार दोनों पद जोड़ के बोले ॥

‡ (अमुष्य) इस पद के स्थान में पति का नाम षष्ठ्यन्त और (असौ) इस के स्थान में वधू का प्रथमान्त नाम जोड़ कर बोले हे स्वामिन् सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्म्मा की अर्धाङ्गी (पतिकुले) आप के कुल में (ध्रुवा) निश्चल जैसे कि आप (ध्रुवम्) दृढ़ निश्चय वाले मेरे स्थिर पति (असि) हैं वैसे मैं भी आप की स्थिर दृढ़ पत्नी (भूयासम्) होऊं ॥

इस मन्त्र को बोल के वर वधू की ओर देख के वधू के मस्तक पर हाथ धरके

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् * ॥ ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वादात् । बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम् † ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोले पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख हो के कुण्ड के समीप बैठें और पृ० २१ में लिखे०

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ आचमन करके तीन२ आचमन दोनों करें पश्चात् पृष्ठ २३ में लिखी हुई समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके पृष्ठ १६ में लिखे० घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावे पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे "ओम् अयन्त इध्म०" इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों जने करके पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति वर वधू देवें तत्पश्चात् जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात उस को एक पात्र में निकाल के उस के ऊपर स्रुवा से घृत सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिला कर दक्षिण हाथ से थोड़ा २ भात दोनों जनें ले के—

* हे वरानने जैसे (द्यौः) सूर्य की कान्ति वा विद्युत् (ध्रुवा) सूर्य लोक वा पृथिव्यादि में निश्चल जैसे (पृथिवी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाह स्वरूप में (ध्रुवम्) स्थिर है जैसे (इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम्) यह तू मेरी (स्त्री) (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवा) सदा स्थिर रह ॥

† हे स्वामिन् जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ सङ्कल्प करके स्थिर (असि) हैं या जैसे मैं (त्वा) आप को (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूं वैसे ही सदा के लिये मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आप को (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है वैसे मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त हो के (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (सम्, जीव) जीविये तथा हे वरानने पत्नी (पोष्ये, धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझ पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रह (मह्यम्) मुझ को अपनी मनसा के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त हो कर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर । वधू वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिस से कभी उलटे विरोध में न चलें ॥

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम । ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये, इदन्न मम । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः, इदन्न मम । ओम् अनुमतये स्वाहा । इदमनुमतये, इदन्न मम ॥

इन में से प्रत्येक मन्त्र से एक १ करके ४ चार स्थालीपाक अर्थात् भात की आहुति देनी तत्पश्चात् पृष्ठ २५ में लि० (ओंयदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से १ एक स्विष्टकृत् आहुति देनी तत्पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २६–२७ में लि० अष्टाज्याहुति ८ आठ दोनों मिल के १२ बारह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन और दक्षिण हाथ रख के

ओं अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना । बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते * ॥ १ ॥ ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव† ॥२॥ ओं अन्नं प्राणस्य षड्विꣳशस्तेन बध्नामि त्वा असौ‡॥३॥

इन तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम थोड़ासा भक्षण करके जो उच्छिष्ट शेष भात रहे वह अपनी वधू के लिये खाने को देवे और जब वधू उस को खा चुके तब वधू वर यज्ञमंडप में सनद्ध हुए शुभासन पर नियम प्रमाणे पूर्वाभिमुख बैठें और पृष्ठ २८–२९ में लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त महावामदेव्यगान करें तत्पश्चात् पृष्ठ ४–१४ में लिखे प्रमाणे ईश्वर की

* हे वधू वा वर जैसे अन्न के साथ प्राण प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है वैसे (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय (च) और (मनः) मन (च) और चित्त आदि को (सत्यग्रन्थिना) सत्यता की गांठ से (बध्नामि) बांधती वा बांधता हूं ॥

† हे वर हे स्वामिन् वा हे पत्नी (यदेतत्) जो यह (तव) तेरा (हृदयम्) आत्मा वा अन्तःकरण है (तत्) वह (मम) मेरा (हृदयम्) आत्मान्तःकरण के तुल्य प्रिय (अस्तु) हो, और (मम) मेरा (यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा प्राण और मन है (तत्) सो (तव) तेरे (हृदयम्) आत्मादि के तुल्य प्रिय (अस्तु) सदा रहे ॥

‡ (असौ) हे यशोदे जो (प्राणस्य) प्राण का पोषण करने हारा (षड्विंशः) २६ छब्बीसवां तत्व (अन्नम्) अन्न है (तेन) उस से (त्वा) तुझ को (बध्नामि) दृढ़ प्रीति से बांधता वा बांधती हूं ।

स्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण कर्म करके क्षार लवण रहित मिष्ट दुग्ध घृतादि सहित भोजन करें तत्पश्चात् पृष्ठ ५२ में लिखे प्रमाणे पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सन्मानार्थ उत्तम भोजन कराना तत्पश्चात् यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार करके विदा कर देवें तत्पश्चात् दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् २ स्थान में भूमि में विछौना करके तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे तत्पश्चात् चौथे दिवस विधि पूर्वक गर्भाधान संस्कार करें यदि चौथे दिवस कोई अड़चल आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्य व्रत में दृढ़ कर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और पृष्ठ ४१ में लिखे प्रमाणे गर्भाधान की रात्रि भी हो उस रात्रि में यथाविधि गर्भाधान करें तत्पश्चात् दूसरे वा तीसरे दिन प्रातःकाल वरपक्ष वाले लोग वधू और वर को रथ में बैठा के बड़े सन्मान से अपने घर में लावें और जो वधू अपने माता पिता के घर को छोड़ते समय आंख में अश्रु भर लावे तो—

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥

इस मन्त्र को वर बोले और रथ में बैठने समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे उस समय में वर—

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥१॥
सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्। आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥ २ ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे यदि वधू को वहां से अपने घर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोल के नौका पर बैठे—

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः॥

और नाव से उतरते समय—

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरे माभिवाजान्॥

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोल के नाव से उतरें पुनः इसी प्रकार मार्ग चार में मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र, चोर आदि से भय वा भयंकर स्थान, ऊंचे, नीचे, खाड़ा वाली पृथिवी बड़े २ वृक्षों का झुंड वा श्मशान भूमि आवे तो

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ती दम्पती । सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर जिस रथ में बैठ के जाते हों उस रथ का कोई अंग टूट जाय अथवा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खे हुए विवाहाग्नि को प्रगट करके उस में पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे ४ चार व्याहृति आज्याहुति देनी पश्चात् पृष्ठ २८—२९ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करना पश्चात् जब वधू वर का रथ वर के घर के आगे आ पहुंचे तब कुलीन पुत्रवती सौभाग्यवती वा कोई ब्राह्मणी वा अपने कुल की स्त्री आगे सामने आ कर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ रथ से नीचे उतारे और वर के साथ सभामण्डप में ले जावे सभामण्डप द्वारे आते ही वर वहां कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करके—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा। याथास्तं विपरेतन ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले और आये हुए लोग—

ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु ॥

इस प्रकार आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वर—

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को सभामण्डप में ले जावे तत्पश्चात् वधू वर पूर्व स्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें उस समय वर

ओं इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्र दक्षिणोपि पूषा निषीदतु ॥

इस मन्त्र को बोल के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे तत्पश्चात् पृष्ठ २१ में लि०

ओं अमृतोपस्तरणमसि ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ करके तीन २ आचमन करें तत्पश्चात् पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे कुंड में यथाविधि समिधाचयन अग्न्याधान करे जब उसी कुंड में अग्निप्रज्वलित हो तब उस पर घृत सिद्ध करके पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे समिदाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि में पृष्ठ २५-२७ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार अष्टाज्याहुति ८ आठ सब मिल के १६ सोलह आज्याहुति वधू वर करके प्रधान होम का प्रारम्भ निम्नलिखित मन्त्रों से करें ॥

ओं इह धृतिः स्वाहा। इदमिह धृत्यै । इदन्न मम। ओं इह स्वधृतिस्स्वाहा । इदमिह स्वधृत्यै । इदन्न मम। ओं इह रन्तिः स्वाहा । इदमिह रन्त्यै । इदन्न मम । ओं इह रमस्व स्वाहा । इदमिह रमाय । इदन्न मम। ओं मयि धृतिः स्वाहा। इदं मयि धृत्यै, इदन्न मम। ओं मयि स्वधृतिः स्वाहा। इदं मयि स्वधृत्यै। इदन्न मम । ओं मयि रमः स्वाहा । इदं मयि रमाय । इदन्न मम । ओं मयि रमस्व स्वाहा । इदं मयि रमाय। इदन्न मम ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके ८ आठ आज्याहुति दे के

ओं आ नंः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविंश शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे *

* हे वधू (अर्यमा) न्यायकारी दयालु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाय) जरावस्था पर्यन्त जीने के लिये (नः) हमारी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को शुभगुण कर्म और स्वभाव से (आजनयतु) प्रसिद्ध करे (समनक्तु) उस ही उत्तम सुख को प्राप्त करे और तू शुभगुण युक्त (मंगलीः) स्त्री लोग सब कुटुम्बियों को आनन्द (अदुः) देवें उन में से एक तू हे वरानने (पतिलोकम्) पति के घर वा सुख को (आविश) प्रवेश वा प्राप्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों के लिये (शम्) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) गौ आदि को (शम्) सुखकर्त्री (भव) हो ॥

स्वाहा। इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा * इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु। दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि † स्वाहा। इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ‡ स्वाहा ॥

इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ ४ ॥

इन ४ चार मन्त्रों से एक २ से एक २ करके ४ चार आज्याहुति दे के पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे स्विष्टकृत होमाहुति १ एक व्याहृति आज्याहुति ४ चार और प्राजापत्याहुति १ एक ये सब मिल के ६ छः आज्याहुति दे कर—

* इस मन्त्र का अर्थ पृष्ठ १२५ में लिखे प्रमाणे जानना ॥

† ईश्वर पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करने हारे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त इस वधू के स्वामिन् (त्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुन्दर सौभाग्य भोग वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों को (आ, धेहि) उत्पन्न कर अधिक नहीं और हे स्त्री तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दशपुत्र और (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पति को प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर यदि इस से आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त होजावोगे इस लिये अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना तथा (पतिमेकादशं, कृधि) इस पाद का अर्थ नियोग में दूसरा होगा अर्थात् जैसे पुरुष को विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा परमात्मा की है वैसी ही आज्ञा स्त्री को भी है कि दश पुत्र तक चाहे विवाहित पति से अथवा विधवा हुए पश्चात् नियोग से करें करावें वैसे ही एक स्त्री के लिये एक पति से एक बार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही बार विवाह करने की आज्ञा है जैसे विधवा हुए पश्चात् स्त्री नियोग से सन्तानोत्पत्ति करके पुत्रवती होवे वैसे पुरुष भी विगतस्त्री होवे तो नियोग से पुत्रवान् होवे ॥

‡ हे वरानने तू (श्वशुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वशुर है उस में प्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (भव) हो (श्वश्र्वाम्) मेरी माता जो कि तेरी सासु है उस में प्रेमयुक्त हो के उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर (ननान्दरि) जो मेरी बहिन और तेरी ननन्द है उस में भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाई जो तेरे देवर और ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उन में भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधि,भव) अधिकारयुक्त हो अर्थात् सब से अविरोध पूर्वक प्रीति से वर्ता कर॥

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ * ॥

इस मन्त्र को बोल के दोनों दधिप्राशन करें तत्पश्चात्

अहं भो अभिवादयामि † ।

इस वाक्य को बोल के दोनों वधू वर, वर की माता पिता आदि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें पश्चात् सुभूषित हो कर शुभासन पर बैठ के पृष्ठ १८–१९ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करके उसी समय पृष्ठ ४–८ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करनी उस समय कार्यार्थ आये हुए सब स्त्री पुरुष ध्याना-वस्थित हो कर परमेश्वर का ध्यान करें तथा वधू वर पिता आचार्य और पुरो-हित आदि को कहें कि—

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ।

आप लोग स्वस्तिवाचन करें तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित जो विद्वान् हों अथवा इन के अभाव में यदि वधू वर विद्वान् वेदवित् हों तो वे ही दोनों पृ० ८–११ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें पाठ हुए पश्चात् कार्यार्थ आये हुए स्त्री पुरुष सब—

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति

इस वाक्य को बोलें तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को तथा माता, चाची, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार करके विदा करें तत्पश्चात् यदि किसी विशेष कारण से श्वसुर गृह में गर्भाधान संस्कार न हो सके तो वधू वर क्षार आहार और विषय तृष्णा रहित व्रतस्थ हो के पृ० ३०–४३ में लिखे प्रमाणे विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो किसी दूसरे दिन गर्भ स्थापन करें और जो वर दूसरे देश से विवाह के लिये आया हो तो वह जहां जिस स्थान में विवाह

* इस मन्त्र का अर्थ पृष्ठ १२४ में लि० समझ लेना ।

† इस से उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये नित्यप्रति स्त्री पुरुष पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि के लिये है प्रातः सायं अपूर्व समागम में जब २ मिलें तब २ इसी वाक्य से परस्पर वंदन करें ॥

करने के लिये जा कर उनरा हो उसी स्थान में गर्भाधान करे पुनः अपने घर आ के पति सासु श्वशुर ननन्द देवर देवराणी ज्येष्ठ जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्त्तें और मधुर वाणी वस्त्र आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को राखें तथा वधू सब को प्रसन्न रक्खे, और वर उस वधू के साथ पत्नी व्रतादि सद्धर्म से वर्तें तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पति की आज्ञा में नत्पर और उत्सुक रहे तथा वर भी स्त्री की सेवा प्रसन्नता में तत्पर रहे ॥

इति विवाहसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ गृहाश्रमसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

गृहाश्रम संस्कार उस को कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुख-प्राप्ति के लिये विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म में ही अपना तन मन धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करनी ॥

अत्र प्रमाणानि—सोमो॑ वधूयुर॑भवद॒श्विना॑स्तामु॒भा व॒रा । सू॒र्यां यत्पत्ये॒ शंस॑न्तीं॒ मन॑सा सवि॒ता द॑दात् ॥ १ ॥ इ॒हैव स्तं॒ मा वियौ॑ष्टं॒ विश्व॒मायु॒र्व्य॑श्नुतम् । क्रीड॑न्तौ पु॒त्रैर्नप्तृ॑भि॒र्मोद॑मानौ स्व॒स्तकौ॑ ॥ २ ॥

अर्थः—(सोमः) सुकुमार शुभ गुण युक्त (वधूयुः) वधू की कामना करने हारा पति तथा वधू पति की कामना करने हारी (अश्विना) दोनों ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त (अभवत्) होवें और (उभा) दोनों (वरा) श्रेष्ठ तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले (आस्ताम्) होवें ऐसी (यत्) जो (सूर्याम्) सूर्य की किरणवत् सौन्दर्य गुण युक्त (पत्ये) पति के लिये (मनसा) मन से (शंसन्तीम्) गुण कीर्त्तन करने वाली वधू है उस को पुरुष और इसी प्रकार के पुरुष को स्त्री (सविता) सकल जगत् का उत्पादक परमात्मा (ददात्) देता है अर्थात् बड़े भाग्य से दोनों स्त्री पुरुषों का जो कि तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले जोड़ा मिलना है ॥ १ ॥ हे स्त्रि और पुरुष मैं परमेश्वर आज्ञा देता हूं कि जो तुम्हारे लिये पूर्व विवाह में प्रतिज्ञा हो चुकी है जिस को तुम दोनों ने स्वीकार किया है (इहैव) इसी में (स्तम्) तत्पर रहो (मा, वियौष्टम्) इस प्रतिज्ञा से वियुक्त मत होओ (विश्वमायुर्व्यश्नुतम्) ऋतुगामी हो के वीर्य का अधिक नाश न करके संपूर्ण आयु जो १०० सौ वर्षों से कम नहीं है उस को प्राप्त होओ और पूर्वोक्त धर्म रीति से (पुत्रैः) पुत्रों और (नप्तृभिः) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीड़ा करते हुए (स्वस्तकौ) उत्तम गृह वाले (मोदमानौ) आनन्दित हो कर गृहाश्रम में प्रीति पूर्वक वास करो ॥ २ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः । स्योना श्वश्र्वै प्रगृहान् विशेमान् ॥ ३ ॥ स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्यै गृहेभ्यः । स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ ४ ॥ या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि । वर्चोन्वस्यै संदत्ताथास्तं विपरेतन ॥ ५ ॥ आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्यै अस्मै । इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ६ ॥

अर्थः—हे वरानने ! तू (सुमङ्गली) अच्छे मङ्गलाचरण करने तथा (प्रतरणी) दोष और शोकादि से पृथक् रहने हारी (गृहाणाम्) गृह कार्यों में चतुर और तत्पर रह कर (सुशेवा) उत्तम सुखयुक्त हो के (पत्ये) पति (श्वशुराय) श्वशुर और (श्वश्र्वै) सासु के लिये (शम्भूः) सुख कर्त्री और (स्योना) स्वयं प्रसन्न हुई (इमान्) इन (गृहान्) घरों में सुखपूर्वक (प्रविश) प्रवेश कर ॥ ३ ॥ हे वधू तू (श्वशुरेभ्यः) श्वशुरादि के लिये (स्योना) सुखदाता (पत्ये) पति के लिये (स्योना) सुखदाता और (गृहेभ्यः) गृहस्थ सम्बन्धियों के लिये (स्योना) सुखदायक (भव) हो और (अस्यै) इस (सर्वस्यै) सब (विशे) प्रजा के अर्थ (स्योना) सुखप्रद और (एषाम्) इन के (पुष्टाय) पोषण के अर्थ तत्पर (भव) हो ॥ ४ ॥ (याः) जो (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाली अर्थात् दुष्टात्मा (युवतयः) ज्वान स्त्रियां (च) और (याः) जो (इह) इस स्थान में (जरतीः) बुड्ढी वृद्ध दुष्ट स्त्रियां हों वे (अपि) भी (अस्यै) इस वधू को (नु) शीघ्र (वर्चः) तेज (सं, दत्त) देवें (अथ) इस के पश्चात् (अस्तम्) अपने २ घर को (विपरेतन) चली जावें और फिर इस के पास कभी न आवें ॥ ५ ॥ हे वरानने तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्त हो कर (तल्पम्) पर्यङ्क पर (आरोह) चढ़ के शयन कर और (इह) इस गृहाश्रम में स्थिर रह कर (अस्मै) इस (पत्ये) पति के लिये (प्रजां, जनय) प्रजा को उत्पन्न कर (सुबुधा) सुन्दर ज्ञानी (बुध्यमाना) उत्तम शिक्षा को प्राप्त

(इन्द्राणीव) सूर्य की कांति के समान तू (उषसः) उषःकाल से (अग्रा) पहिली (ज्योतिः) ज्योति के तुल्य (प्रति, जागरासि) प्रत्यक्ष सब कामों में जागती रह ॥ ६ ॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः । सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या संभवेह ॥ ७ ॥ संपितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः । मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ८ ॥ तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति । या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ९ ॥

अर्थः—हे सौभाग्यप्रदे (नारि) तू जैसे (इह) इस गृहाश्रम में (अग्रे) प्रथम (देवाः) विद्वान् लोग (पत्नीः) उत्तम स्त्रियों को (न्यपद्यन्त) प्राप्त होते हैं और (तनूभिः) शरीरों से (तन्वः) शरीरों को (समस्पृशन्त) स्पर्श करते हैं वैसे (विश्वरूपा) विविध सुन्दर रूप को धारण करने हारी (महित्वा) सत्कार को प्राप्त हो के (सूर्येव) सूर्य की कान्ति के समान (पत्या) अपने स्वामी के साथ मिल के (प्रजावती) प्रजा को प्राप्त होने हारी (संभव) अच्छे प्रकार हो ॥ ७ ॥ हे स्त्री पुरुषो तुम (पितरौ) बालकों के जनक (ऋत्विये) ऋतु समय में सन्तानों को (संसृजेथाम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो (माता) जननी (च) और (पिता) जनक दोनों (रेतसः) वीर्य को मिला कर गर्भाधान करने हारे (भवाथः) हूजिये । हे पुरुष (एनाम्) इस (योषाम्) अपनी स्त्री को (मर्य इव) प्राप्त होने वाले पति के समान (अधि, रोहय) सन्तानों से बढ़ा और दोनों (इह) इस गृहाश्रम में मिल के (प्रजाम्) प्रजा को (कृण्वाथाम्) उत्पन्न करो (पुष्यतम्) पालन पोषण करो और पुरुषार्थ से (रयिम्) धन को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥ हे (पूषन्) वृद्धिकारक पुरुष (यस्याम्) जिस में (मनुष्याः) मनुष्य लोग (बीजम्) वीर्य को (वपन्ति) बोते हैं (या) जो (नः) हमारी (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) ऊरू को सुन्दरता से (विश्रयाति) विशेष कर आश्रय करती है (यस्याम्) जिस में (उशन्तः) सन्तानों की

कामना करते हुए हम (शेपः) उपस्थेन्द्रिय का (प्रहरेम) प्रहरण करते हैं (ताम्) उस (शिवतमाम्) अतिशय कल्याण करने हारी स्त्री को सन्तानोत्पत्ति के लिये (एरयस्व) प्रेम से प्रेरणा कर ॥ ९ ॥

स्योनाद्योनेरधिबुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ । सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ १० ॥ इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती । प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ११ ॥ जनियन्ति नावग्रवः पुत्रीयन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ १२ ॥

अर्थः—हे स्त्रि और पुरुष जैसे सूर्य (विभातीः) सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) प्रभात वेला को प्राप्त होता है वैसे (स्योनात्) सुख से (योनेः) घर के मध्य में (अधि, बुध्यमानौ) सन्तानोत्पत्ति आदि की क्रिया को अच्छे प्रकार जानने हारे सदा (हसामुदौ) हास्य और आनन्दयुक्त (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) अत्यन्त प्रसन्न हुए (सुगू) उत्तम चाल चलने से धर्म युक्त व्यवहार में अच्छे प्रकार चलने हारे (सुपुत्रौ) उत्तम पुत्र वाले (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृहादि सामग्री युक्त (जीवौ) उत्तम प्रकार जीवों को धारण करते हुए (तराथः) गृहाश्रम के व्यवहारों के पार होओ ॥ १० ॥ हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् राजन् आप (इह) इस संसार में (इमौ) इन स्त्री पुरुषों को समय पर विवाह करने की आज्ञा और ऐसी व्यवस्था दीजिये कि जिस से कोई स्त्री पुरुष पृ० ८९—९२ में लिखे प्रमाण से पूर्व वा अन्यथा विवाह न कर सकें वैसे (संनुद) सब को प्रसिद्धि से प्रेरणा कीजिये जिस से ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा को पाके (दम्पती) जाया और पति (चक्रवाकेव) चकवा चकवी के समान एक दूसरे से प्रेमबद्ध रहें और गर्भाधान संस्कारोक्तविधि से (प्रजया) उत्पन्न हुई प्रजा से (एनौ) ये दोनों (स्वस्तकौ) सुखयुक्त हो के (विश्वम्) सम्पूर्ण १०० वर्ष पर्यन्त (आयुः) आयु को (व्यश्नुताम्) प्राप्त होवें ॥११॥ हे मनुष्यो जैसे (सुदानवः) विद्यादि उत्तम गुणों के दान करने हारे (अग्रवः) उत्तम स्त्री पुरुष (जनियन्ति) पुत्रोत्पत्ति करते और (पुत्रीयन्ति) पुत्र की कामना करते हैं वैसे (नौ) हमारे भी सन्तान उत्तम होवें तथा (अरिष्टासू) बल प्राण का नाश न करने हारे

हो कर (बृहते) बड़े (वाजसातये) परोपकार के अर्थ विज्ञान और अन्न आदि के दान के लिये (सचेवहि) कटिबद्ध सदा रहें जिस से हमारे सन्तान भी उत्तम होवें ॥ १२ ॥

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय। गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु॥१३॥

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १४ ॥

अर्थः—हे पत्नी तू (शतशारदाय) शतवर्ष पर्यन्त (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ काल जीने के लिये (सुबुधा) उत्तम बुद्धि युक्त (बुध्यमाना) सज्ञान हो कर (गृहान्) मेरे घरों को (गच्छ) प्राप्त हो और (गृहपत्नी) मुझ घर के स्वामी की स्त्री (यथा) जैसे (ते) तेरा (दीर्घम्) दीर्घ काल पर्यन्त (आयुः) जीवन (आसः) होवे वैसे (प्रबुध्यस्व) प्रकृष्ट ज्ञान और उत्तम व्यवहार को यथावत् जान इस अपनी आशा को (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति और संपूर्ण ऐश्वर्य को देने हारा परमात्मा (कृणोतु) अपनी कृपा से सदा सिद्ध करे जिस से तू और मैं सदा उन्नतिशील हो कर आनन्द में रहें ॥ १३ ॥ हे गृहस्थो मैं ईश्वर तुम को जैसी आज्ञा देता हूं वैसा ही वर्त्तमान करो जिस से तुम को अक्षय सुख हो अर्थात् (वः) तुम्हारा (सहृदयम्) जैसी अपने लिये सुख की इच्छा करते और दुःख नहीं चाहते हो वैसे माता पिता संतान स्त्री पुरुष भृत्य मित्र पड़ोसी और अन्य सब से समान हृदय रहो (सांमनस्यम्) मन से सम्यक् प्रसन्नता और (अविद्वेषम्) वैर विरोधादि रहित व्यवहार को तुम्हारे लिये (कृणोमि) स्थिर करता हूं तुम (अघ्न्या) हनन न करने योग्य गाय (वत्सं, जातमिव) उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्यभाव से जैसे वर्तती है वैसे (अन्योऽन्यम्) एक दूसरे से (अभि, हर्यत) प्रेमपूर्वक कामना से वर्ता करो ॥ १४ ॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवान् ॥१५॥ मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ १६ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो जैसे तुम्हारा (पुत्रः) पुत्र (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) प्रीतियुक्त मन वाला (अनुव्रतः) अनुकूल आचरणयुक्त (पितुः) और पिता के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का प्रेम वाला (भवतु) होवे वैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्त्ता करो जैसे (जाया) स्त्री (पत्ये) पति की प्रसन्नता के लिये (मधुमतीम्) माधुर्य गुणयुक्त (वाचम्) वाणी को (वदतु) कहे वैसे पति भी (शन्तिवान्) शान्त हो कर अपनी पत्नी से सदा मधुर भाषण किया करे ॥ १५ ॥ हे गृहस्थो तुम्हारे में (भ्राता) भाई (भ्रातरम्) भाई के साथ (मा, द्विक्षन्) द्वेष कभी न करे (उत) और (स्वसा) बहिन (स्वसारम्) बहिन से द्वेष कभी (मा) न करे तथा बहिन भाई भी परस्पर द्वेष मत करो किन्तु (सम्यञ्चः) सम्यक् प्रेमादि गुणों से युक्त (सव्रताः) समान गुण कर्म स्वभाव वाले (भूत्वा) हो कर (भद्रया) मङ्गलकारक रीति से एक दूसरे के साथ (वाचम्) सुखदायक वाणी को (वदत) बोला करो ॥ १६ ॥

येन॑ दे॒वा न वि॒यन्ति॒ नो च॑ विद्वि॒षते॑ मि॒थः । तत्कृ॑ण्मो ब्रह्म॑ वो गृहे सं॒ज्ञानं॒ पुरु॑षेभ्यः ॥ १७ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो मैं ईश्वर (येन) जिस प्रकार के व्यवहार से (देवाः) विद्वान् लोग (मिथः) परस्पर (न, वियन्ति) पृथक्भाव वाले नहीं होते (च) और (नो विद्विषते) परस्पर में द्वेष कभी नहीं करते (तत्) वही कर्म (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (कृण्मः) निश्चित करता हूं (पुरुषेभ्यः) पुरुषों को (संज्ञानम्) अच्छे प्रकार चिताता हूं कि तुम लोग परस्पर प्रीति से वर्त्त कर बड़े (ब्रह्म) धनैश्वर्य को प्राप्त होओ ॥ १७ ॥

ज्याय॑स्वन्तश्चि॒त्तिनो॒ मा वि यौ॑ष्ट संरा॒धय॑न्तः सधु॑रा॒श्चर॑न्तः । अ॒न्यो अ॒न्यस्मै॑ व॒ल्गु वद॑न्त॒ एत॑ सध्री॒चीना॑न्वः समन॑सस्कृणोमि ॥ १८ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो तुम (ज्यायस्वन्तः) उत्तम विद्यादि गुणयुक्त (चित्तिनः) विद्वान् सज्ञान (सधुराः) धुरंधर होकर (चरन्तः) विचरते और (संराधयन्तः) परस्पर मिल के धन धान्य राज्य समृद्धि को प्राप्त होते हुए

(मा, वियौष्ट) विरोधी वा पृथक् २ भाव मत करो (अन्यः) एक (अन्यस्मै) दूसरे के लिये (वल्गु) सत्य मधुर भाषण (वदन्तः) कहते हुए एक दूसरे को (एत) प्राप्त होओ इसी लिये (सध्रीचीनान्)समान लाभाऽलाभ में एक दूसरे के सहायक (संमनसः) ऐकमत्य वाले (वः) तुम को (कृणोमि) करता हूं अर्थात् मैं ईश्वर तुम को जो आज्ञा देता हूं इस को आलस्य छोड़ कर किया करो ॥१८॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागःसमाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ १९ ॥ सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्सं वननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वोअस्तु ॥ २० ॥ अथर्व० कां० ३ । वर्ग० ३० । मं० १ । ७ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मुझ ईश्वर की आज्ञा से तुम्हारा (प्रपा) जलपान स्नानादि का स्थान आदि व्यवहार (समानी) एकसा हो (वः) तुम्हारा (अन्नभागः) खान पान (सह) साथ हुआ करो (वः) तुम्हारे (समाने) एक से (योक्त्रे) अश्वादि यान के जोते (सह) संगी हों और तुम को मैं धर्मादि व्यवहार में भी एकीभूत करके (युनज्मि) नियुक्त करता हूं जैसे (आराः) चक्र के आरे (अभितः) चारों ओर से (नाभिमिव) बीच के नालरूप काष्ठ में लगे रहते हैं अथवा जैसे ऋत्विज् लोग और यजमान यज्ञ में मिल के (अग्निम्) अग्नि आदि के सेवन से जगत् का उपकार करते हैं वैसे (सम्यञ्चः) सम्यक् प्राप्ति वाले तुम मिल के धर्मयुक्त कर्मों को (सपर्यत) एक दूसरे का हित सिद्ध किया करो ॥ १९ ॥ हे गृहस्थादि मनुष्यो मैं ईश्वर (वः) तुम को (सध्रीचीनान्) सहवर्तमान (संमनसः) परस्पर के लिये हितैषी (एकश्नुष्टीन्) एक ही धर्मकृत्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाले (सर्वान्) सब को (संवननेन) धर्मकृत्य के सेवन के साथ एक दूसरे के उपकार में नियुक्त (कृणोमि) करता हूं तुम (देवाइव) विद्वानों के समान (अमृतम्) व्यावहारिक वा पारमार्थिक सुख की (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए (सायं प्रातः) संध्या और प्रातःकाल अर्थात् सब समय में एक दूसरे से प्रेमपूर्वक मिला करो ऐसे करते हुए (वः) तुम्हारा (सौमनसः) मन का आनन्दयुक्त शुद्धभाव (अस्तु) सदा बना रहे ॥ २० ॥

श्रमे॑ण॒ तप॑सा सृ॒ष्टा ब्रह्म॑णा वि॒त्त ऋ॒ते श्रि॒ताः ॥२१॥ स॒त्ये-
नावृ॑ताः श्रि॒या प्रावृ॑ता य॒शसा॒ परी॑वृताः ॥२२॥ स्व॒धया॒ परि॑हिता
श्र॒द्धया॒ पर्यू॑ढा दी॒क्षया॑ गु॒प्ता य॒ज्ञे प्रति॑ष्ठिता लो॒को नि॒धन॑म् ॥२३॥

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो ! मैं ईश्वर तुम को आज्ञा देता हूं कि तुम सब गृहस्थ मनुष्य लोग (श्रमेण) परिश्रम तथा (तपसा) प्राणायाम से (सृष्टाः) संयुक्त (ब्रह्मणा) वेदविद्या परमात्मा और धनादि से (वित्ते) भोगने योग्य धनादि के प्रयत्न में और (ऋते) यथार्थ पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म में (श्रिताः) चलने हारे सदा बने रहो ॥२१॥ (सत्येन) सत्यभाषणादि कर्मों से (आवृताः) चारों ओर से युक्त (श्रिया) शोभा तथा लक्ष्मी से (प्रावृताः) युक्त (यशसा) कीर्त्ति और धन से (परीवृताः) सब ओर से संयुक्त रहा करो ॥२२॥ (स्वधया) अपने ही अन्नादि पदार्थ के धारण से (परिहिताः) सब के हितकारी (श्रद्धया) सत्य धारण में श्रद्धा से (पर्यूढाः) सब ओर से सब को सत्याचरण प्राप्त कराने हारे (दीक्षया) नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य्य, सत्यभाषणादि व्रत धारण से (गुप्ताः) सुरक्षित (यज्ञे) विद्वानों के सत्कार, शिल्पविद्या और शुभ गुणों के दान में (प्रतिष्ठिताः) प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ करो और इन्हीं कर्मों से (निधनं,-लोकः) इस मनुष्य लोक को प्राप्त हो के मृत्यु पर्य्यन्त सदा आनन्द में रहो ॥२३॥

ओज॑श्च॒ तेज॑श्च॒ सह॑श्च॒ बलं॑च॒ वाक् चे॑न्द्रि॒यं च॒ श्रीश्च॒
धर्म॑श्च ॥ २४ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो तुम जो (ओजः) पराक्रम (च) और इस की सामग्री (तेजः) तेजस्वीपन (च) और इस की सामग्री (सहः) स्तुति निन्दा हानि लाभ तथा शोकादि का सहन (च) और इस के साधन (बलञ्च) बल और इस के साधन (वाक् , च) सत्य प्रिय वाणी और इस के अनुकूल व्यवहार (इन्द्रियञ्च) शान्त धर्मयुक्त अन्तःकरण और शुद्धात्मा तथा जितेन्द्रियता (श्रीश्च) लक्ष्मी संपत्ति और इस की प्राप्ति का धर्म युक्त उद्योग (धर्मश्च) पक्षपात रहित न्यायाचरण वेदोक्त धर्म और जो इस के साधन वा लक्षण हैं उन को तुम प्राप्त हो के इन्हीं में सदा वर्त्ता करो ॥ २४ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ २५ ॥ आयुश्च रूपं च नाम च कीर्त्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रञ्च ॥२६॥ पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्त्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ २७ ॥ अथर्व कां० १२ । अ० ५ । व० ॥ १–२ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो तुम को योग्य है कि (ब्रह्म, च) पूर्ण विद्यादि शुभ गुण युक्त मनुष्य और सब के उपकारक शम दमादि गुण युक्त ब्रह्मकुल (क्षत्रञ्च) विद्यादि उत्तम गुण युक्त तथा विनय और शौर्यादि गुणों से युक्त क्षत्रिय कुल (राष्ट्रञ्च) राज्य और उस का न्याय से पालन (विशश्च) उत्तम प्रजा और उस की उन्नति (त्विषिश्च) सद्विद्यादि से तेज आरोग्य शरीर और आत्मा के बल से प्रकाशमान और इस की उन्नति से (यशश्च) कीर्ति युक्त तथा इस के साधनों को प्राप्त हुआ करो (वर्चश्च) पढ़ी हुई विद्या का विचार और उस का नित्य पढ़ना (द्रविणञ्च) द्रव्योपार्जन उस की रक्षा और धर्मयुक्त परोपकार में व्यय करने आदि कर्मों को सदा किया करो ॥ २५ ॥ हे स्त्री पुरुषो तुम अपना (आयुः) जीवन बढ़ाओ, (च) और सब जीवन में धर्मयुक्त उत्तम कर्म ही किया करो (रूपञ्च) विषयासक्ति कुपथ्य रोग और अधर्माचरण को छोड़ के अपने स्वरूप को अच्छा रक्खो और वस्त्राभूषण भी धारण किया करो (नाम, च) नामकरण के पृष्ठ ५८—६१ में लिखे प्रमाणे शास्त्रोक्त संज्ञा धारण और उस के नियमों को भी (कीर्तिश्च) सत्याचरण से प्रशंसा का धारण और गुणों में दोषारोपणरूप निन्दा को छोड़ दो (प्राणश्च) चिरकाल पर्यन्त जीवन का धारण और उस के युक्ताहार विहारादि साधन (अपानश्च) सब दुःख दूर करने का उपाय और उस की सामग्री (चक्षुश्च) प्रत्यक्ष और अनुमान उपमान (श्रोत्रञ्च) शब्द प्रमाण और उस की सामग्री को धारण किया करो ॥ २६ ॥ हे गृहस्थ लोगो (पयश्च) उत्तम जल दूध और इस का शोधन और युक्ति से सेवन (रसश्च) घृत दूध मधु आदि और इस का युक्ति से आहार विहार (अन्नञ्च) उत्तम चावल आदि अन्न और उस के उत्तम संस्कार किये (अन्नाद्यञ्च) खाने के योग्य पदार्थ और उस के साथ

उत्तम दाल शाक कढ़ी आदि (ऋतञ्च) सत्य मानना और सत्य मनवाना (सत्यञ्च) सत्य बोलना और बुलवाना (इष्टञ्च) यज्ञ करना और कराना (पूर्त्तञ्च) यज्ञ की सामग्री पूरी करना तथा जलाशय और आराम वाटिका आदि का बनाना और बनवाना (प्रजा,च) प्रजा की उत्पत्ति पालन और उन्नति सदा करनी तथा करानी (पशवश्च) गाय आदि पशुओं का पालन और उन्नति सदा करनी तथा करानी चाहिये ॥ २७ ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ १ ॥ य० अ० ४०। मं० २ ॥

अर्थः—मैं परमात्मा सब मनुष्यों के लिये आज्ञा देता हूं कि प्रत्येक मनुष्य (इह) इस संसार में शरीर से समर्थ हो के (कर्माणि) सत्कर्मों को (कुर्वन्नेव) करता ही करता (शतं, समाः) १०० सौवर्ष पर्यन्त (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे आलसी और प्रमादी कभी न होवे (एवम्) इस प्रकार उत्तम कर्म करते हुए (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्य में (इतः) इस हेतु से (अन्यथा) उलटापनरूप (कर्म) दुःखद कर्म (न, लिप्यते) लिप्यमान कभी नहीं होता और तुम पापरूप कर्म में लिप्त कभी मत होओ इस उत्तम कर्म से कुछ भी दुःख (नास्ति) नहीं होता इस लिये तुम स्त्री पुरुष सदा पुरुषार्थी हो कर उत्तम कर्मों से अपनी और दूसरों की सदा उन्नति किया करो ॥ १ ॥ पुनः स्त्री पुरुष सदा निम्नलिखित मन्त्रों के अनुकूल इच्छा और आचरण किया करें। वे मन्त्र ये हैं—

भूर्भुवः स्वः । सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः । नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्यपशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥ २ ॥ गृहामा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि । ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ३ ॥ य० । अ० ३ । मं० ३७ । ४१ ॥

अर्थः—हे स्त्री वा पुरुष मैं तेरा वा अपने के सम्बन्ध से (भूर्भुवः स्वः) शारीरिक वाचिक और मानस अर्थात् त्रिविध सुख से युक्त हो के (प्रजाभिः) मनुष्यादि उत्तम प्रजाओं के साथ (सुप्रजाः) उत्तम प्रजा युक्त (स्याम्) होऊं

(वीरैः) उत्तम पुत्र बन्धु सम्बन्धी और भृत्यों से सह वर्तमान (सुवीरः) उत्तम वीरों से सहित होऊं (पोषैः) उत्तम पुष्टि कारक व्यवहारों से (सुपोषः) उत्तम पुष्टि युक्त होऊं हे (नर्य) मनुष्यों में सज्जन वीर स्वामिन् (मे) मेरी (प्रजाम्) प्रजा की (पाहि) रक्षा कीजिये हे (शंस्य) प्रशंसा करने योग्य स्वामिन् आप (मे) मेरे (पशून्) पशुओं की (पाहि) रक्षा कीजिये हे (अथर्य) अहिंसक दयालो स्वामिन् (मे) मेरे (पितुम्) अन्न आदि की (पाहि) रक्षा कीजिये वैसे हे नारि प्रशंसनीय गुण युक्त तू मेरी प्रजा मेरे पशु और मेरे अन्न की सदा रक्षा किया कर ॥ १ ॥ हे (गृहाः) गृहस्थ लोगो तुम विधिपूर्वक गृहाश्रम में प्रवेश करने से (मा, बिभीत) मत डरो (मा, वेपध्वम्) मत कंपायमान होओ (ऊर्जम्) अन्न, पराक्रम तथा विद्यादि शुभ गुण से युक्त हो कर गृहाश्रम को (बिभ्रतः) धारण करते हुए तुम लोगों को हम सत्योपदेशक विद्वान् लोग (एमसि) प्राप्त होते और सत्योपदेश करते हैं और अन्न पानाच्छादन स्थान से तुम्हीं हमारा निर्वाह करते हो इस लिये तुम्हारा गृहाश्रम व्यवहार में निवास सर्वोत्कृष्ट है। हे वरानने जैसे मैं तेरा पति (मनसा) अन्तःकरण से (मोदमानः) आनन्दित (सुमनाः) प्रसन्न मन (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि से युक्त मुझ को और हे मेरे पूजनीयतम पिता आदि लोगो (वः) तुम्हारे लिये (ऊर्जम्) पराक्रम तथा अन्नादि ऐश्वर्य को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ तुम (गृहान्) गृहस्थों को (आ, एमि) सब प्रकार से प्राप्त होता हूं उसी प्रकार तुम लोग भी मुझ से प्रसन्न हो के वर्ता करो ॥ ३ ॥

एषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः। गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४ ॥ उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शं योः शं योः ॥५॥ यजु० अध्या० ३। मं०। ४२। ४३।

अर्थः—हे गृहस्थो (प्रवसन्) परदेश जो गया हुआ मनुष्य (एषाम्) इन का (अध्येति) स्मरण करता है (येषु) जिन गृहस्थों में (बहुः) बहुत (सौमनसः) प्रीति होती है उन (गृहान्) गृहस्थों को हम विद्वान् लोग (उप, ह्वयामहे)

प्रशंसा करने और प्रीति से समीपस्थ बुलाते हैं (ते) वे गृहस्थ लोग (जानन्तः) उन को जानने वाले (नः) हम लोगों को (जानन्तु) सुहृद जानें वैसे तुम गृहस्थ और हम संन्यासी लोग आपस में मिल के पुरुषार्थ से व्यवहार और परमार्थ की उन्नति सदा किया करें ॥ ४ ॥ हे गृहस्थो (नः) अपने (गृहेषु) घरों में जिस प्रकार (गावः) गौ आदि उत्तम पशु (उपहूताः) समीपस्थ हों तथा (अजावयः) बकरी भेड आदि दूध देने वाले पशु (उपहूताः) समीपस्थ हों (अथो) इस के अनन्तर (अन्नस्य) अन्नादि पदार्थों के मध्य में उत्तम (कीलालः) अन्नादि पदार्थ (उपहूतः) प्राप्त होवे हम लोग वैसा प्रयत्न किया करें । हे गृहस्थो मैं उपदेशक या राजा (इह) इस गृहाश्रम में (वः) तुम्हारे (क्षेमाय) रक्षण तथा (शान्त्यै) निरुपद्रवता करने के लिये (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं मैं और आप लोग प्रीति से मिल के (शिवम्) कल्याण (शग्मम्) व्यावहारिक सुख और (शंयोः,शंयोः) पारमार्थिक सुख को प्राप्त हो के अन्य सब लोगों को सदा सुख दिया करें ॥ ५ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ १ ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ २ ॥ मनु०

अर्थः—हे गृहस्थो जिस कुल में भार्या से प्रसन्न पति और पति से भार्या सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है और दोनों परस्पर अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य कलह वास करता है ॥१॥ यदि स्त्री पुरुष पर रुचि न रक्खे वा पुरुष को प्रहर्षित न करे तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में कामोत्पत्ति कभी न हो के सन्तान नहीं होते और यदि होते हैं तो दुष्ट होते हैं ॥ २ ॥

स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वन्तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ३ ॥ मनु०

अर्थः—और जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता तो उस स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल भर अप्रसन्न शोकातुर रहता है और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है तब सब कुल आनन्दरूप दीखता है ॥ ३ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ४ ॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५ ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ ६ ॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्या हतानीव विनश्यन्ति समंततः ॥ ७ ॥ मनु०

अर्थः—पिता, भ्राता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहिन स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण भोजन वस्त्र आभूषण आदि से प्रसन्न रक्खें जिन को कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को क्लेश कभी न देवें ॥ ४ ॥ जिस कुल में नारियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है उस कुल में दिव्य गुण दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहां जानो उन की सब क्रिया निष्फल हैं ॥ ५ ॥ जिस कुल में स्त्रीलोग अपने २ पुरुषों के वेश्यागमन वा व्यभिचारादि दोषों से शोकातुर रहती हैं वह कुल शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाता है और जिस कुल में स्त्रीजन पुरुषों के उत्तमाचरणों से प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ६ ॥ जिन कुल और घरों में अपूजित अर्थात् सत्कार को न प्राप्त हो कर स्त्री लोग जिन गृहस्थों को शाप देती हैं वे कुल तथा गृहस्थ जैसे विष देकर बहुतों को एक बार नाश कर देवें वैसे चारों ओर से नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ८ ॥ मनु०

अर्थः—इस कारण ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले पुरुषों को योग्य है कि इन स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र, खान, पान आदि से सदा पूजा अर्थात् सत्कार युक्त प्रसन्न रक्खें ॥ ८ ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ९ ॥ मनु०

अर्थः—स्त्री को योग्य है कि सदा आनन्दित होके चतुरता से गृहाकार्यों में वर्त्तमान रहे तथा अन्नादि के उत्तम संस्कार पात्र वस्त्र गृह आदि के संस्कार और घर के भोजनादि में जितना नित्य धन आदि लगे उस के यथायोग्य करने में सदा प्रसन्न रहे ॥ ९ ॥

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैःस्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ १० ॥

अर्थः—यदि स्त्रियां दुष्टाचारयुक्त भी हों तथापि इस संसार में बहुत स्त्रियां अपने २ पतियों के शुभ गुणों से उत्कृष्ट हो गईं, होती हैं और होंगी भी इस लिये यदि पुरुष श्रेष्ठ हों तो स्त्रियां श्रेष्ठ और दुष्ट हों तो दुष्ट हो जाती हैं इस से प्रथम मनुष्यों को उत्तम हो के अपनी स्त्रियों को उत्तम करना चाहिये ॥ १० ॥

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ ११ ॥
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ १२ ॥
अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ १३ ॥
यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ १४ ॥ मनु०

अर्थः—हे पुरुषो सन्तानोत्पत्ति के लिये महाभाग्योदय करने हारी पूजा के योग्य गृहाश्रम को प्रकाश करती सन्तानोत्पत्ति करने कराने हारी घरों में स्त्रियां हैं वे श्री अर्थात् लक्ष्मी स्वरूप होती हैं क्योंकि लक्ष्मी शोभा धन और स्त्रियों में कुछ भेद नहीं है ॥ ११ ॥ हे पुरुषो अपत्यों की उत्पत्ति उत्पन्न का पालन

करने आदि लोकव्यवहार को नित्य प्रति जो कि गृहाश्रम का कार्य होता है उस का निबन्ध करने वाली प्रत्यक्ष स्त्री है ॥ १२ ॥ सन्तानोत्पत्ति धर्म कार्य उत्तम सेवा और रति तथा अपना और पितरों का जितना सुख है वह सब स्त्री ही के आधीन होता है ॥ १३ ॥ जैसे वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्तमान सिद्ध होता है वैसे ही गृहस्थ के आश्रय से ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात् सब आश्रमों का निर्वाह गृहस्थ के आश्रय से होता है ॥१४॥

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ १५ ॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ १६ ॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्त्ति हि ॥ १७ ॥

अर्थः—जिस से ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीन आश्रमियों को अन्न वस्त्रादि दान से नित्यप्रति गृहस्थ धारण पोषण करता है इस लिये व्यवहार में गृहाश्रम सब से बड़ा है ॥ १५ ॥ हे स्त्रीपुरुषो ! जो तुम अक्षय * मुक्ति सुख और इस संसार के सुख की इच्छा रखते हो तो जो दुर्बलेन्द्रिय और निर्बुद्धि पुरुषों के धारण करने योग्य नहीं है उस गृहाश्रम को नित्य प्रयत्न से धारण करो ॥ १६ ॥ वेद और स्मृति के प्रमाण से सब आश्रमों के बीच में गृहाश्रम श्रेष्ठ है क्योंकि यही आश्रम ब्रह्मचारी आदि तीनों आश्रमों का धारण और पालन करता है ॥ १७ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १८ ॥
उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ १९ ॥

* अक्षय इतना ही मात्र है कि जितना समय मुक्ति का है उतने समय में दुःख का संयोग जैसा विषयेन्द्रिय के संयोगजन्य सुख में होता है वैसा नहीं होता ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीनं हीने समे समम् ॥ २० ॥
पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ २१ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो जैसे सब बड़े २ नद और नदी सागर में जा कर स्थिर होते हैं वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ ही को प्राप्त हो के स्थिर होते हैं ॥१८॥ यदि गृहस्थ हो के पराये घर में भोजनादि की इच्छा करते हैं तो वे बुद्धिहीन गृहस्थ अन्य से प्रतिग्रहरूप पाप करके जन्मान्तर में अन्नादि के दाताओं के पशु बनते हैं क्योंकि अन्य से अन्नादि का ग्रहण करना अतिथियों का काम है गृहस्थों का नहीं ॥१९॥ जब गृहस्थ के समीप अतिथि आवें तब आसन निवास शय्या पश्चात् गमन और समीप में बैठना आदि सत्कार जैसे का वैसा अर्थात् उत्तम का उत्तम, मध्यम का मध्यम और निकृष्ट का निकृष्ट करे ऐसा न हो कि कभी न समझें ॥२०॥ किन्तु जो पाषण्डी वेदनिन्दक नास्तिक ईश्वर वेद और धर्म को न मानें अधर्माचरण करने हारे हिंसक शठ मिथ्याभिमानी कुतर्की और बकवृत्ति अर्थात् पराये पदार्थ हरने वा बहकाने में बगुले के समान अतिथि वेषधारी बन के आवें उन का वचनमात्र से भी सत्कार गृहस्थ कभी न करे ॥२१॥

दशसूना समं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमो वेषो दशवेषसमो नृपः ॥ २२ ॥
न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम् ॥ २३ ॥
सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयुतः ॥ २४ ॥
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ २५ ॥ मनु०

अर्थः—दश हत्या के समान चक्र अर्थात् कुम्हार, गाड़ी से जीविका करने हारे, दश चक्र के समान ध्वज अर्थात् धोबी, मद्य को निकाल कर बेचने

हारे, दुशध्वज के समान वेष, अर्थात् वेश्या, भडुआ, भांड, दूसरे की नकल अर्थात् पाषाण मूर्त्तियों के पूजक (पुजारी) आदि और दुशवेष के समान जो अन्यायकारी राजा होता है उन के अन्न आदि का ग्रहण अतिथि लोग कभी न करें ॥ २२ ॥ गृहस्थ जीविका के लिये भी कभी शास्त्रविरुद्ध लोकाचार का वर्त्ताव न वर्त्ते किन्तु जिस में किसी प्रकार की कुटिलता मूर्खता मिथ्यापन वा अधर्म न हो उस वेदोक्त कर्मसम्बन्धी जीविका को करे ॥ २३ ॥ किन्तु सत्य, धर्म आर्य अर्थात् आप्त पुरुषों के व्यवहार और शौच पवित्रता ही में सदा गृहस्थ लोग प्रवृत्त रहें और सत्यवाणी भोजनादि के लोभरहित हस्तपादादि की कुचेष्टा छोड़ कर धर्म से शिष्यों और सन्तानों को उत्तम शिक्षा सदा किया करें ॥ २४ ॥ यदि बहुतसा धन राज्य और अपनी कामना अधर्म से सिद्ध होती हो तो भी अधर्म सर्वथा छोड़ देवें और वेदविरुद्ध धर्माभास जिस के करने से उत्तर काल में दुःख और संसार की उन्नति का नाश हो वैसा नाममात्र धर्म और कर्म कभी न किया करें ॥ २५ ॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥ २६ ॥

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥ २७ ॥

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ २८ ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ २९ ॥

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ ३० ॥

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्य कारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ ३१ ॥ मनु०

अर्थः—जो धर्म ही से पदार्थों का संचय करना है वही सब पवित्रताओं में उत्तम पवित्रता अर्थात् जो अन्याय से किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं करता वही पवित्र है किन्तु जल मृत्तिकादि से जो पवित्रता होती है वह धर्म के सदृश उत्तम नहीं है ॥ २६ ॥ विद्वान् लोग क्षमा से दुष्टकर्मकारी सत्संग और विद्यादि शुभगुणों के दान से गुप्त पाप करने हारे विचार से त्याग कर और ब्रह्मचर्य तथा सत्यभाषणादि से वेदवित् उत्तम विद्वान् शुद्ध होते हैं ॥२७॥ किन्तु जल से ऊपर के अंग पवित्र होते हैं आत्मा और मन नहीं, मन तो सत्य मानने सत्य बोलने और सत्य करने से शुद्ध और जीवात्मा विद्या योगाभ्यास और धर्माचरण ही से पवित्र तथा बुद्धि ज्ञान से ही शुद्ध होती है जल मृत्तिकादि से नहीं ॥२८॥ गृहस्थ लोग छोटों बड़ों वा राजकार्यों के सिद्ध करने में कम से कम १० दश अर्थात् ऋग्वेदज्ञ, यजुर्वेदज्ञ, सामवेदज्ञ, हैतुक, (नैयायिक) तर्ककर्त्ता, नैरुक्त—निरुक्त-शास्त्रज्ञ, धर्माध्यापक, ब्रह्मचारी, स्नातक और वानप्रस्थ विद्वानों अथवा अतिन्यूनता करें तो तीन वेदवित् (ऋग्वेदज्ञ, यजुर्वेदज्ञ, और सामवेदज्ञ,) विद्वानों की सभा से कर्त्तव्याकर्त्तव्य धर्म और अधर्म का जैसा निश्चय हो वैसा ही आचरण किया करें ॥ २९ ॥ और जैसा विद्वान् लोग दण्ड ही को धर्म जानते हैं वैसा सब लोग जानें, क्योंकि दण्ड ही प्रजा का शासन अर्थात् नियम में रखने वाला दंड ही सब का सब ओर से रक्षक और दंड ही सोते हुओं में जागता है चोरादि दुष्ट भी दंड ही के भय से पाप कर्म नहीं कर सकते ॥३०॥ उस दंड को अच्छे प्रकार चलाने हारे उस राजा को कहते हैं कि जो सत्यवादी विचार ही करके कार्य का कर्त्ता बुद्धिमान् विद्वान् धर्म काम और अर्थ का यथावत् जानने हारा हो ॥ ३१ ॥

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३२ ॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा ।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३३ ॥
अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ ३४ ॥

अर्थः—जो राजा उत्तम सहाय रहित मूढ़, लोभी जिस ने ब्रह्मचर्यादि उत्तम कर्मों से विद्या और बुद्धि की उन्नति नहीं की विषयों में फंसा हुआ है उस से वह दण्ड कभी न्यायपूर्वक नहीं चल सकता ॥ ३२ ॥ इस लिये जो पवित्र सत्पुरुषों का संगी राजनीति शास्त्र के अनुकूल चलने हारा, धार्मिक पुरुषों के सहाय से युक्त, बुद्धिमान्, राजा हो वही इस दण्ड को धारण करके चला सकता है ॥ ३३ ॥ जो राजा अनपराधियों को दण्ड देता और अपराधियों को दण्ड नहीं देता है वह इस जन्म में बड़ी अपकीर्त्ति को प्राप्त होता और मरे पश्चात् नरक अर्थात् महादुःख को पाता है ॥ ३४ ॥

मृगयाक्षा दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ३५ ॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ३६ ॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ३७ ॥

अर्थः—मृगया अर्थात् शिकार खेलना, द्यूत और प्रसन्नता के लिये भी चौपड़ आदि खेलना, दिन में सोना, हंसी ठट्ठा मिथ्यावाद करना, स्त्रियों के साथ सदा अधिक निवास में मोहित होना, मद्यपानादि नशाओं का करना, गाना, बजाना, नांचना वा इन का देखना और वृथा इधर उधर घूमने फिरना ये दश दुर्गुण काम से होते हैं ॥ ३५ ॥ और चुगलीखाना, विना विचारे काम कर बैठना, जिस किसी से वृथा वैर बांधना, दूसरे की स्तुति सुन वा बढ़ती देख के हृदय में जला करना, दूसरों के गुणों में दोष और दोषों में गुण स्थापन करना, बुरे कामों में धन का लगाना, क्रूर वाणी और विना विचारे पक्षपात से किसी को करड़ा दण्ड देना ये आठ दोष क्रोधी पुरुष में उत्पन्न होते हैं ये १८ अठारह दुर्गुण हैं इन को राजा अवश्य छोड़ देवे ॥ ३६ ॥ और जो इन कामज और क्रोधज १८ अठारह दोषों के मूल जिस लोभ को सब विद्वान् लोग जानते हैं उस को प्रयत्न से राजा जीते क्योंकि लोभ ही से पूर्वोक्त १८ अठारह और अन्य दोष भी बहुत से होते हैं इस लिये हे गृहस्थ लोगो ! चाहें वह राजा का

ज्येष्ठ पुत्र क्यों न हो परन्तु ऐसे दोष वाले मनुष्य को राजा कभी न करना यदि भूल से हुआ हो तो उस को राज्य से च्युत करके किसी योग्य पुरुष को जो कि राजा के कुल का हो राज्याधिकारी करना तभी प्रजा में आनन्द मङ्गल सदा बढ़ता रहेगा ॥ ३७ ॥

सैन्यापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ३८ ॥
मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् ।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ३९ ॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान् सुपरीक्षितान् ॥ ४० ॥

अर्थः—जो वेद शास्त्रवित् धर्मात्मा जितेन्द्रिय न्यायकारी और आत्मा के बल से युक्त पुरुष होवे उसी को सेना, राज्य, दंडनीति और प्रधान पद का अधिकार देना अन्य क्षुद्राशयों को नहीं ॥ ३८ ॥ और जो अपने राज्य में उत्पन्न, शास्त्रों के जानने हारे, शूरवीर, जिन का विचार निष्फल न होवे, कुलीन, धर्मात्मा, स्वराज्य भक्त हों उन ७ सात वा ८ आठ पुरुषों को अच्छी प्रकार परीक्षा करके मन्त्री करे और इन्हीं की सभा में आठवां वा नववां राजा हो ये सब मिल के कर्त्तव्याकर्त्तव्य कामों का विचार किया करें ॥ ३९ ॥ इसी प्रकार अन्य भी राज्य और सेना के अधिकारी जितने पुरुषों से राज्यकार्य सिद्ध हो सके उतने ही पवित्र धार्मिक विद्वान् चतुर स्थिरबुद्धि पुरुषों को राज्य सामग्री के वर्धक नियत करे ॥ ४० ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ४१ ॥
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ ४२ ॥ मनु०

अर्थः—तथा जो सब शास्त्र में निपुण नेत्रादि के संकेत, स्वरूप तथा चेष्टा से दूसरे के हृदय की बात को जानने हारा शुद्ध बडा स्मृतिमान् देश काल जानने हारा सुन्दर जिस का स्वरूप बडा वक्ता और अपने कुल में मुख्य हो उस और

स्वराज्य और परराज्य के समाचार देने हारे अन्य दूतों को भी नियत करे ॥४१॥ तथा राजादि राजपुरुष अलब्ध राज्य की इच्छा दण्ड से और प्राप्त राज्य की रक्षा संभाल से रक्षित राज्य और धन को व्यापार और व्याज से बढ़ा और सुपात्रों के द्वारा सत्य विद्या और सत्य धर्म के प्रचार आदि उत्तम व्यवहारों में बढ़े हुए धन आदि पदार्थों का व्यय करके सब की उन्नति सदा किया करें ॥४२॥

विधिः—सदा स्त्री पुरुष १० दश बजे शयन और रात्रि के पिछले प्रहर वा ४ बजे उठ के प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म और अर्थ का विचार किया करें और धर्म और अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्मयुक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिये युक्त आहार विहार औषध सेवन सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य कर्म की सिद्धि के लिये ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना भी किया करें कि जिस परमेश्वर की कृपा दृष्टि और सहाय से महा कठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सकें इस के लिये निम्नलिखित मन्त्र हैं—

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम * ॥ १ ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता । आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह † ॥ २ ॥

* हे स्त्री पुरुषो जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभात वेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त (प्रातः) (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिस ने उत्पन्न किया है उस परमात्मा को (हवामहे) स्तुति करते हैं और (प्रातः) (भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक वेद और ब्रह्मांड के पालन करने हारे (प्रातः) (सोमम्) अन्तर्यामि प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और सर्वरोग नाशक जगदीश्वर की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं वैसे प्रातः समय में तुम लोग भी किया करो ॥ १ ॥

† (प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करने हारे और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों का (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारण कर्त्ता (यं, चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरश्चित्) दुष्टों को भी दंड दाता और (राजा) सब का प्रकाशक है (यम्) जिस (भगम्) भजनीयस्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूं और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सब को (आह) उपदेश करता है कि तुम जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूं उस मेरी उपासना किया और मेरी आज्ञा में चला करो इस से (वयम्) हमलोग उस को (हुवेम) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम * ॥ ३ ॥ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम † ॥ ४ ॥ भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ‡ ॥ ५ ॥ ऋ० मं० ७ सू० ४१ ॥

इस प्रकार परमेश्वर की प्रार्थना उपासना करनी तत्पश्चात् शौच दन्तधावन मुखप्रक्षालन करके स्नान करें पश्चात् एक कोश वा डेढ़ कोश एकान्त जंगल में जा के योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना कर सूर्योदय पर्यन्त अथवा घड़ी आध घड़ी दिन चढ़े तक घर में आ के सन्ध्योपासनादि नित्य कर्म नीचे लिखे प्रमाणे यथाविधि उचित समय में किया करें इन नित्य करने के योग्य कर्मों में लिखे हुए मन्त्रों का अर्थ और प्रमाण पञ्चमहायज्ञविधि में देख लेवें । प्रथम शरीर शुद्धि अर्थात् स्नान पर्यन्त कर्म करके सन्ध्योपासन का आरम्भ करे आरम्भ में दक्षिण हस्त में जल ले के—

* हे (भग) भजनीयस्वरूप (प्रणेतः) सब के उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को देने हारे (भग) सत्याचरण करने हारों को ऐश्वर्य दाता आप परमेश्वर (नः) हम को (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये और उस के दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्य श्री को (नः) हमारे लिये (प्रजनय) प्रगट कीजिये हे (भग) आप की कृपा से हमलोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्य वाले (प्र,स्याम) अच्छे प्रकार होवें ॥ १ ॥

† हे भगवन् आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इसी समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्य युक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें (उत) और हे (मघवन्) परम पूजित असंख्य धन देने हारे (सूर्यस्य) सूर्य लोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥ ४ ॥

‡ हे (भग) सकलैश्वर्यसंपन्न जगदीश्वर जिस से (तम्) उस (त्वा) आप की (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्यप्रद (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुरएता) अग्रगामी और आगे २ सत्य कर्मों में बढ़ाने हारे (भव) हूजिये और जिस से (भगएव) संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता के होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीय देव (अस्तु) हूजिये (तेन) उसी हेतु से (देवाः,वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्यसंपन्न हो के सब संसार के उपकार में तन मन धन से प्रवृत्त (स्याम) होवें ॥ ५ ॥

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों में से एक १ से एक २ आचमन कर दोनों हाथ धो, कान आंख नासिका आदि का शुद्ध जल से स्पर्श करके शुद्ध देश पवित्रासन पर जिधर की ओर का वायु हो उधर को मुख करके नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के यथाशक्ति रोके पश्चात् धीरे २ भीतर ले के भीतर थोड़ा सा रोके यह एक प्राणायाम हुआ इसी प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करे नासिका को हाथ से पकड़े। इस समय परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना हृदय में करके—

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभि-स्रवन्तु नः ॥ यजुः० अ० ३६ ॥

इस मन्त्र को एक वार पढ़ के तीन आचमन करे पश्चात् पात्र में से मध्यमा अनामिका अंगुलियों से जलस्पर्श करके प्रथम दक्षिण और पश्चात् वाम निम्न लिखित मन्त्रों से स्पर्श करे

ओं वाक् वाक् ॥

इस मन्त्र से मुख का दक्षिण और वाम पार्श्व

ओं प्राणः प्राणः ॥

इस से दक्षिण और वाम नासिका के छिद्र

ओं चक्षुश्चक्षुः ॥

इस से दक्षिण और वाम नेत्र

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् ॥

इस से दक्षिण और वाम श्रोत्र

ओं नाभिः ॥

इस से नाभि

ओं हृदयम् ॥

इस से हृदय

ओं कण्ठः ॥

इस से कण्ठ

ओं शिरः ॥

इस से मस्तक

ओं बाहुभ्यां यशो बलम् ॥

इस से दोनों भुजाओं के मूल स्कन्ध और

ओं करतलकरपृष्ठे ॥

इस से दोनों हाथों के ऊपर तले स्पर्श करके मार्जन करे ॥

ओं भूः पुनातु शिरसि ॥

इस मन्त्र से शिर पर

ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः ॥

इस मन्त्र से दोनों नेत्रों पर

ओं स्वः पुनातु कण्ठे ॥

इस मन्त्र से कण्ठ पर

ओं महः पुनातु हृदये ॥

इस मन्त्र से हृदय पर

ओं जनः पुनातु नाभ्याम् ॥

इस से नाभी पर

ओं तपः पुनातु पादयोः ॥

इस से दोनों पगों पर

ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ॥

इस से पुनः मस्तक पर

ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

इस मन्त्र से सब अङ्गों पर छींटा देवे। पुनः पूर्वोक्त रीति से प्राणायाम की क्रिया करता जावे। और नीचे लिखे मन्त्र का जप भी करता जाय ॥

ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम् ॥

इसी रीति से कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ इक्कीस प्राणायाम करे तत्पश्चात् सृष्टिकर्ता परमात्मा और सृष्टिक्रम का विचार नीचे लिखित मन्त्रों से करे और जगदीश्वर को सर्वव्यापक न्यायकारी सर्वत्र सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मान के पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने देवे किन्तु सदा धर्म युक्त कर्मों में वर्त्तमान रक्खे ॥

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १९० ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पुनः (शन्नो देवी०) इस मन्त्र से तीन आचमन करके निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करे ॥

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ १॥ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो०।० ॥ २ ॥ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो० । ० ॥ ३ ॥ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो० । ० ॥ ४ ॥ ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो० । ० ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो०।० ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० २७ । मं० १—६ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहर भीतर परमात्मा को पूर्ण जान कर निर्भय निश्शंक उत्साही आनन्दित पुरुषार्थी रहना तत्पश्चात् परमात्मा का उपस्थान अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे अति-निकट परमात्मा है ऐसी बुद्धि करके करे—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ ऋ० मं० १ । सू० ९९ । मं० १ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥ य० अ० १३ । मं० ४६ ॥ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥ य० अ० ३३ । मं० ३१ । उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ३ ॥ य० अ० ३५ । मं० १४ । तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥ यजुः० । अ० ३६ । मं० २४ ॥

इन मन्त्रों से परमात्मा का उपस्थान करके पुनः (शन्नो देवी०) इस से तीन आचमन कर के पृष्ठ ८२ में लिखे० अथवा पंचमहायज्ञविधि में लि० गायत्री मन्त्र का अर्थ विचारपूर्वक परमात्मा की स्तुति प्रार्थनोपासना करे पुनः हे परमेश्वर दयानिधे ! आप की कृपा से जपोपासनादि कर्मों को करके हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को शीघ्र प्राप्त होवें पुनः—

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ५ ॥ यजुः० अ० १६ । मं० ४१ ॥

इस से परमात्मा को नमस्कार करके (शन्नो देवी०) इस मन्त्र से तीन आचमन करके अग्निहोत्र का आरम्भ करे—

इति सङ्क्षेपतः सन्ध्योपासनविधिः समाप्तः ॥ १ ॥

अथाग्निहोत्रम् ॥

जैसे सायं प्रातः दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासन करें इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष * अग्निहोत्र भी दोनों समय में नित्य किया करें पृष्ठ २२-२३ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान और पृष्ठ २४ में लिखे०

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ।

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से यथाविधि कुण्ड के चारों ओर जलप्रोक्षण करके शुद्ध किये हुए सुगन्ध्यादि युक्त घी को तपा के पात्र में ले के कुण्ड से पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ २५ में लि० आघारावाज्यभागाहुति चार दे के नीचे लिखे हुए मन्त्रों से प्रातःकाल अग्निहोत्र करे—

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥ ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ३ ॥ ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥

अब नीचे लिखे हुए मन्त्र सायंकाल में अग्निहोत्र के जानो ।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥ ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

इस मन्त्र को मन से उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी ।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्नि-र्वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥

* किसी विशेष कारण से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक ही स्त्री वा पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवे अर्थात् एक २ मंत्र को दो २ वार पढ़ के दो २ आहुति करे ॥

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं आहुति देना चाहिये ॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये, प्राणाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय, व्यानाय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः, प्राणापानव्यानेभ्यः, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ५ ॥ ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ ६ ॥ य० अ० ३२ । मन्त्र १४ ॥ ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥ य० । अ० ३० । मं० ३ । ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ८ ॥ य० अ० ४० मन्त्र० १६ ॥

इन आठ मन्त्रों से एक २ मन्त्र करके एक २ आहुति ऐसे आठ आहुति देके

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक २ बार पढ़ के एक २ करके तीन आहुति देवे ।

इत्यग्निहोत्रविधिः सङ्क्षेपतः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ पितृयज्ञः ॥

अग्निहोत्रविधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे अर्थात् जीते हुए माता पिता आदि की यथावत् सेवा करनी पितृयज्ञ कहाता है ॥ ३ ॥

अथ बलिवैश्वदेवविधिः ॥

ओं अग्नये स्वाहा । ओं सोमाय स्वाहा । ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ओं धन्वन्तरये स्वाहा । ओं कुह्वै स्वाहा । ओमनुमत्यै स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा । ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । ओं स्विष्टकृते स्वाहा ।

इन दश मन्त्रों से घृतमिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़ के जो कुछ पाक में बना हो उसी की दश आहुति करे तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बलिदान करे—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ।

इस से पूर्व ।

ओं सानुगाय यमाय नमः ।

इस से दक्षिण ।

ओं सानुगाय वरुणाय नमः ।

इस से पश्चिम ।

ओं सानुगाय सोमाय नमः ।

इस से उत्तर ।

ओं मरुद्भ्यो नमः ।

इस से द्वार ।

ओं अद्भ्यो नमः ।

इस से जल ।

ओं वनस्पतिभ्यो नमः ।

इस से मुसल और ऊखल ।

ओं श्रियै नमः ।

इस से ईशान ।

ओं भद्रकाल्यै नमः ।

इस से नैर्ऋत्य ।

ओं ब्रह्मपतये नमः । ओं वास्तुपतये नमः ।

इस से मध्य ।

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।

इन से ऊपर ।

ओं सर्वात्मभूतये नमः ।

इस से पृष्ठ ।

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ।

इस से दक्षिण । इन मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आजाय तो उसी को दे देना नहीं तो अग्नि में धर देना तत्पश्चात् घृत सहित लवणान्न लेके

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥ १ ॥

अर्थः—कुत्ता, पतित, चांडल, पापरोगी, काक, और कृमी इन छः नामों से छः भाग पृथिवी में धरे और वे छः भाग जिस २ के नाम हैं उस २ को देना चाहिये ॥ ४ ॥

अथातिथियज्ञः ॥

पांचवां—जो धार्मिक परोपकारी सत्योपदेशक पक्षपातरहित शान्त सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त होना अतिथियज्ञ कहाता है उस को नित्य किया करें इस प्रकार पञ्चमहायज्ञों को स्त्री पुरुष प्रतिदिन करते रहें ॥ ५ ॥

इस के पश्चात् पक्षयज्ञ अर्थात् पौर्णमासी और अमावास्या के दिन नैत्तिक अग्निहोत्र की आहुति दिये पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार पृष्ठ १६ में लिखे प्रमाणे स्थालीपाक बना के निम्नलिखित मन्त्रों से विशेष आहुति करें ॥

ओं अग्नये स्वाहा ॥ ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विष्णवे स्वाहा ॥

इन तीन मन्त्रों से स्थालीपाक की तीन आहुति देनी तत्पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आज्याहुति ४ देनी परन्तु इस में इतना भेद है—कि अमावास्या के दिन :—

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥

इस मन्त्र के बदले।

ओं इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा ॥

इस मन्त्र को बोल के स्थालीपाक की आहुति देवे। इस प्रकार पक्षयाग अर्थात् जिस के घर में अभाग्य से अग्निहोत्र न होता हो तो सर्वत्र पक्षयागादि में पृष्ठ १५—१८ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड, यज्ञसामग्री, यज्ञमण्डप, पृष्ठ २२—२३ में लि० अग्न्याधान, समिदाधान पृष्ठ २५ में लि० आघारावाज्यभागाहुति और पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे वेदी के चारों ओर जल सेचन करके पृ० ४—१४ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण भी यथायोग्य करें और जब २ नवान्न आवे तब २ नवशस्येष्टि और संवत्सर के आरम्भ में निम्नलिखित विधि करें, अर्थात् जब २ नवीन अन्न आवे तब २ शस्येष्टि करके नवीन अन्न के भोजन का आरम्भ करे—

नवशस्येष्टि और संवत्सरेष्टि करना हो तो जिस दिन प्रसन्नता हो वही शुभ दिन जाने, ग्राम और शहर के बाहर किसी शुद्ध खेत में यज्ञमंडप करके पृष्ठ ४—२९ तक लिखे प्रमाणे सब विधि करके प्रथम आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार, तथा अष्टाज्याहुति ८ आठ ये सोलह आज्याहुति करके कार्यकर्ता—

ओं पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः। तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन्। तन्मे सर्वꣳ समृध्यतां जीवतः शरदः शतꣳ स्वाहा ॥ २ ॥ ओं सम्पतिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा, इदमिन्द्राय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं यस्या भावे वैदिकलौकिकानां

भूतिर्भवति कर्मणाम् । इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीताꣳ सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा, इदमिन्द्रपत्न्यै, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्त्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता । खलामालिनी मुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवाꣳ सा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा, इदं सीतायै, इदन्न मम ॥ ५ ॥

इन मन्त्रों से प्रधान होम की ५ पांच आज्याहुति करके—

ओं सीतायै स्वाहा । ओं प्रजायै स्वाहा । ओं शमायै स्वाहा । ओं भूत्यै स्वाहा ॥

इन ४ चार मन्त्रों से ४ चार और पृष्ठ १५ में लिखे (यदस्य०) मन्त्र से स्विष्टकृत् होमाहुति एक, ऐसे ५ पांच स्थालीपाक की आहुति दे के पश्चात् पृष्ठ २६—२७ में लिखे प्रमाणे अष्टाज्याहुति व्याहृति आहुति ४ चार ऐसे १२ बारह आज्याहुति देके पृष्ठ २८—२९ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके यज्ञ की समाप्ति करें ॥

अथ शालाकर्मविधिं वक्ष्यामः ॥

शाला उस को कहते हैं जो मनुष्य और पश्वादि के रहने अथवा पदार्थ रखने के अर्थ गृह वा स्थान विशेष बनाते हैं। इस के दो विषय हैं एक प्रमाण और दूसरा विधि, उस में से प्रथम प्रमाण और पश्चात् विधि लिखें गे ॥

अत्र प्रमाणानि—उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत । शालाया विश्ववाराया नद्धानि विचृतामसि ॥ १ ॥ हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः । सदो देवानामसि देवि शाले ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्यों को योग्य है जो कोई किसी प्रकार का घर बनावे तो वह (उपमिताम्) सब प्रकार की उत्तम उपमायुक्त कि जिस को देख के विद्वान् लोग सराहना करें (प्रतिमिताम्) प्रतिमान अर्थात् एक द्वार के सामने दूसरा

द्वार कोण और कक्षा भी सन्मुख हों (अथो) इस के अनन्तर (परिमिताम्) वह शाला चारों ओर के परिमाण से सम चौरस हो (उत) और (शालायाः) शाला (विश्ववारायाः) अर्थात् उस घर के द्वार चारों ओर के वायु को स्वीकार करने वाले हों (नद्धानि) उस के बन्धन और चिनाई दृढ़ हों हे मनुष्यो ऐसी शाला को जैसे हम शिल्पी लोग (विचृतामसि) अच्छे प्रकार ग्रन्थित अर्थात् बन्धनयुक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ १ ॥ उस घर में एक (हविर्धानम्) होम करने के पदार्थ रखने का स्थान (अग्निशालम्) अग्निहोत्र का स्थान (पत्नीनाम्) स्त्रियों के (सदनम्) रहने का (सदः) स्थान और (देवानाम्) पुरुषों और विद्वानों के रहने बैठने मेल मिलाप करने और सभा का (सदः) स्थान तथा स्नान भोजन ध्यान आदि का भी पृथक् २ एक २ घर बनावे इस प्रकार की (देवि) दिव्य कमनीय (शाले) बनाई हुई शाला (असि) सुखदायक होती है ॥ २ ॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रतिगृह्णामि त इमाम्। यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः। तेन शालां प्रतिगृह्णामि तस्मै ॥ ३ ॥ ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता। विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ ४ ॥

अर्थः—उस शाला में (अन्तरा) भिन्न २ (पृथिवीम्) शुद्ध भूमि अर्थात् चारों ओर स्थान शुद्ध हों (च) और (द्याम्) जिस में सूर्य का प्रतिभास आवे वैसी प्रकाश स्वरूप भूमि के समान दृढ़ शाला बनावे (च) और (यत्) जो (व्यचः) उस की व्याप्ति अर्थात् विस्तार है स्त्री (ते) तेरे लिये है (तेन) उसी से युक्त (इमाम्) इस (शालाम्) घर को बनाता हूं तू इस में निवास कर और मैं भी निवास के लिये इस को (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं (यत्) जो उस के बीच में (अन्तरिक्षम्) पुष्कल अवकाश और (रजसः) उस घर का (विमानम्) विशेष मान परिमाण युक्त लंबी ऊंची छत्त और (उदरम्) भीतर का प्रसार विस्तार युक्त होवे (तत्) उस को (शेवधिभ्यः) सुख के आधाररूप अनेक कक्षाओं से सुशोभित (अहम्) मैं (कृण्वे) करता हूं

(तेन) उस पूर्वोक्त लक्षणमात्र से युक्त (शालाम्) शाला को (तस्मै) उस गृहाश्रम के सब व्यवहारों के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥३॥ जो (शाले) शाला (ऊर्जस्वती) बहुत बलारोग्य पराक्रम को बढ़ाने वाली और धन धान्य से पूरित सम्बन्ध वाली (पयस्वती) जल दूध रसादि से परिपूर्ण (पृथिव्याम्) पृथिवी में (मिता) परिमाणयुक्त (निमिता) निर्मित की हुई (विश्वान्नम्) संपूर्ण अन्नादि ऐश्वर्य्य को (बिभ्रती) धारण करती हुई (प्रतिगृह्णतः) ग्रहण करने हारों को रोगादि से (मा,हिंसीः) पीड़ित न करें वैसा घर बनाना चाहिये ॥

ब्रह्मणा शालां निर्मितां कविभिर्निर्मितां मिताम् । इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ ५ ॥

अर्थः—(अमृतौ) स्वरूप से नाश रहित (इन्द्राग्नी) वायु और पावक (कविभिः) उत्तम विद्वान् शिल्पियों ने (मिताम्) प्रमाण युक्त अर्थात् माप में ठीक जैसी चाहिये वैसी (निमिताम्) बनाई हुई (शालाम्) शाला को और (ब्रह्मणा) चारों वेदों के जानने हारे विद्वान् ने सब ऋतुओं में सुख देने हारी (निमिताम्) बनाई (शालाम्) शाला को प्राप्त हो कर रहने वालों की (रक्षताम्) रक्षा करें अर्थात् चारों ओर का शुद्ध वायु आ के अशुद्ध वायु को निकालता रहे और जिस में सुगन्ध्यादि घृत का होम किया जाय वह अग्नि दुर्गन्ध को निकाल सुगन्ध को स्थापन करे वह (सोम्यम्) ऐश्वर्य आरोग्य सर्वदा सुखदायक (सदः) रहने के लिये उत्तम घर है उसी को निवास के लिये ग्रहण करे ॥ ५ ॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते । अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवाशये ॥ ६ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो (या) जो (द्विपक्षा) दो पक्ष अर्थात् मध्य में एक और पूर्व पश्चिम में एक २ शालायुक्त घर अथवा (चतुष्पक्षा) जिस के पूर्व पश्चिम दक्षिण और उत्तर में एक २ शाला और इन के मध्य में पांचवीं बड़ी शाला वा (षट्पक्षा) एक बीच में बड़ी शाला और दो २ पूर्व पश्चिम तथा एक २ उत्तर दक्षिण में शाला हों (या) जो ऐसी शाला (निमीयते) बनाई जाती

है वह उत्तम होता है और इस में भी जो (अष्टापक्षाम्) चारों ओर दो २ शाला और उन के बीच में एक नवमी शाला हो अथवा (दशपक्षाम्) जिस के मध्य में दो शाला और उन के चारों दिशाओं में, दो २ शाला हों उस (मानस्य) परिमाण के योग से बनाई हुई (शालाम्) शाला को जैसे (पत्नीम्) पत्नी को प्राप्त हो के (अग्निः) अग्निमय आर्त्तव और वीर्य्य (गर्भ इव) गर्भ रूप हो के (आशये) गर्भाशय में ठहरता है वैसे सब शालाओं के द्वार दो२ हाथ पर सूधे बराबर हों और जिस की चारों ओर को शालाओं का परिमाण तीन २ गज और मध्य की शालाओं का छः २ गज से परिमाण न्यून न हो, और चार २ गज चारों दिशाओं की ओर आठ २ गज मध्य की शालाओं का परिमाण हो अथवा मध्य की शालाओं का दश २ गज अर्थात् बीस २ हाथ से विस्तार अधिक नहो बना कर गृहस्थों को रहना चाहिये यदि वह सभा का स्थान हो तो बाहर की ओर द्वारों में चारों ओर कपाट और मध्य में गोल२ स्तम्भे बना कर चारों ओर खुला बनाना चाहिये कि जिस के कपाट खोलने से चारों ओर का वायु उस में आवे और सब घरों के चारों ओर वायु आने के लिये अवकाश तथा वृक्ष फल और पुष्करणी कुंड भी होने चाहिये वैसे घरों में सब लोग रहें ॥ ६ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् । अग्निर्ह्य१-न्तरापश्च ऋतस्य प्रथमा द्वाः ॥ ७ ॥

अर्थः—जो (शाले) शालागृह (प्रतीचीनः) पूर्वाभिमुख तथा जो गृह (प्रतीचीम्) पश्चिम द्वार युक्त (अहिंसतीम्) हिंसादि दोष रहित अर्थात् पश्चिम द्वार के संमुख पूर्व द्वार जिस में (हि) निश्चय कर (अन्तः) बीच में (अग्निः) अग्नि का घर (च) और (आपः) जल का स्थान (ऋतस्य) और सत्य के ध्यान के लिये एक स्थान (प्रथमा) प्रथम (द्वाः) द्वार है मैं (त्वा) उस शाला को (प्रैमि) प्रकर्षता से प्राप्त होता हूं ॥ ७ ॥

मा नः पाशं प्रतिमुचो गुरुर्भारो लघुर्भव । वधूमिव त्वा शाले यत्र कामं भरामसि ॥ ८ ॥ अथर्व० कां० ९ अ० २ । व० ३ ॥

अर्थः—हे शिल्पि लोगो जैसे (नः) हमारी (शाले) शाला अर्थात् गृह (पाशम्) बन्धन को (मा, प्रतीमुचः) कभी न छोड़े जिस में (गुरुभारः) बड़ा भार (लघुर्भव) छोटा होवे वैसी बनाओ (त्वा) उस शाला को (यत्र, कामम्) जहां जैसी कामना हो वहां वैसी हम लोग (वधूमिव) स्त्री के समान (भरामसि) स्वीकार करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ ८ ॥

इस प्रकार प्रमाणों के अनुसार जब घर बन चुके तब प्रवेश करते समय क्या २ विधि करना सो नीचे लिखे प्रमाणे जानो ॥

अथ विधिः—जब घर बन चुके तब उस की शुद्धि अच्छे प्रकार करा, चारों दिशाओं के बाहरले द्वारों में चार वेदी और एक वेदी घर के मध्य बनावे अथवा तांबे का वेदी के समान कुण्ड बनवा लेवे कि जिस से सब ठिकाने एक कुण्ड ही में काम हो जावे सब प्रकार की सामग्री अर्थात् पृष्ठ १५–१६ में लिखे प्रमाणों समिधा घृत चावल मिष्ट सुगन्ध पुष्टिकारक द्रव्यों को ले के शोधन कर प्रथम दिन रख लेवे जिस दिन गृहपति का चित्त प्रसन्न होवे उसी शुभ दिन में गृहप्रतिष्ठा करे वहां ऋत्विज्, होता, अध्वर्यु और ब्रह्मा का वर्ण करे जो कि धर्मात्मा विद्वान् हों उन में से होता का आसन पश्चिम और उस पर वह पूर्वाभिमुख, अध्वर्यु का आसन उत्तर में उस पर वह दक्षिणाभिमुख, उद्गाता का पूर्व दिशा में आसन उस पर वह पश्चिमाभिमुख और ब्रह्मा का दक्षिण दिशा में उत्तमासन बिछा कर उत्तराभिमुख, इस प्रकार चारों आसनों पर चारों पुरुषों को बैठावे और गृहपति सर्वत्र पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठा करे ऐसे ही घर के मध्य वेदी के चारों ओर दूसरे आसन बिछा रक्खे, पश्चात् निष्क्रम्यद्वार जिस द्वार से मुख्य करके घर से निकलना और प्रवेश करना होवे अर्थात् जो मुख्य द्वार हो उसी द्वार के समीप ब्रह्मा सहित बाहर ठहर कर—

ओं अच्युताय भौमाय स्वाहा ॥

इस से एक आहुति दे कर ध्वजा का स्तम्भ जिस में ध्वजा लगाई हो खड़ा करे और घर के ऊपर चारों कोणों पर चार ध्वजा खड़ी करे तथा कार्य कर्त्ता गृहपतिस्तम्भ खड़ा करके उस के मूल में जल से सेचन करे जिस से वह दृढ़ रहे। पुनः द्वार के सामने बाहर जाकर नीचे लिखे चार मन्त्रों से जल सेचन करे ॥

ओं इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम् । इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुच्छ्रयमाणा ॥ १ ॥

इस मन्त्र से पूर्व द्वार के सामने जल छिटकावे

अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय । आ त्वा शिशुराक्रन्दन्त्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः ॥ २ ॥

इस मन्त्र से दक्षिण द्वार

आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह । आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ आदध्नः कलशैरुप क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासः रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

इस मन्त्र से पश्चिम द्वार

अश्वावद्गोमदूर्जस्वत्पर्णं वनस्पतेरिव । अभि नः पूर्यतां रयिरिदमनुश्रेयो वसानः ॥ ४ ॥

इस मन्त्र से उत्तर द्वार के सामने जल छिटकावे । तत्पश्चात् सब द्वारों पर पुष्प और पल्लव तथा कदली स्तम्भ वा कदली के पत्ते भी द्वारों की शोभा के लिये लगा कर पश्चात् गृहपति—

हे ब्रह्मन् प्रविशामीति ॥

ऐसा वाक्य बोले और ब्रह्मा

वरं भवान् प्रविशतु ॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवे और ब्रह्मा की अनुमति से

ओं ऋचं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये ॥

इस वाक्य को बोल के भीतर प्रवेश करे और जो घृत गरम कर छान सुगन्ध मिला कर रक्खा हो उस को पात्र में ले के जिस द्वार से प्रथम प्रवेश करे उसी द्वार से प्रवेश करके पृष्ठ २२—२३ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान जलप्रोक्षण आचमन करके पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे घृत की आघारावाज्य-

भागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार नवमी स्विष्टकृत् आज्याहुति एक अर्थात् दिशाओं की द्वारस्थवेदियों में अग्न्याधान से ले के स्विष्टकृत् आहुति पर्यन्त विधि करके पश्चात् पूर्व दिशाद्वारस्थ कुण्ड में

ओं प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन मन्त्रों से पूर्व द्वारस्थ वेदी में दो घृताहुती देवे । वैसे ही—

ओं दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा ॥ ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दक्षिणद्वारस्थ वेदी में एक२मन्त्र करके दो आज्याहुति और:—

ओं प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दो आज्याहुति पश्चिमदिशाद्वारस्थ कुण्ड में देवे

ओं उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से उत्तर दिशास्थ वेदी में दो आज्याहुति देवे, पुनः मध्यशालास्थ वेदी के समीप जाके स्व २ दिशा में बैठ के—

ओं ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से मध्यवेदी में दो आज्याहुति

ओं ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से भी दो आहुति मध्यवेदी में और

ओं दिशो दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से भी दो आज्याहुति मध्यस्थ वेदी में देके पुनः पूर्व दिशास्थ द्वारस्थ वेदी में अग्नि को प्रज्वलित करके वेदी से दक्षिण भाग में ब्रह्मासन तथा होता आदि के पूर्वोक्त प्रकार आसन बिछवा उसी वेदी के उत्तर भाग में एक कलश स्थापन कर पृष्ठ १६ में लिखे प्रमाणे स्थालीपाक बना के पृथक् निष्क्रम्य द्वार के समीप जा ठहर कर ब्रह्मादि सहित गृहपति मध्यशाला में प्रवेश करके ब्रह्मादि को दक्षिणादि आसन पर बैठा स्वयं पूर्वाभिमुख बैठ के संस्कृत घी अर्थात् जो गरम कर छान जिस में कस्तूरी आदि सुगन्ध मिलाया हो, पात्र में ले के सब के सामने एक २ पात्र भर के रक्खे और चमसा में ले के—

ओं वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः । यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ॥ १ ॥ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति तन्नो जुषस्व स्वाहा ॥ २ ॥ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या । पाहि क्षेमऽउत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ७ सू० ५४ ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः स्वाहा ॥ ४ ॥ ऋ० । मं० ७ । सू० ५५ । मं० १ ॥

इन चार मन्त्रों से चार ४ आज्याहुति देके जो स्थालीपाक अर्थात् भात बनाया हो उस को दूसरे कांसे के पात्र में ले के उस पर यथायोग्य घृत सेचन करके अपने २ सामने रक्खे और पृथक् २ थोड़ा २ लेकर—

ओं अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वाँश्च देवानुपह्वये । सरस्वतीञ्च वाजीञ्च वास्तु मे दत्तवाजिनः स्वाहा ॥ १ ॥ सर्पदेवजनान्त्सर्वान्हिमवन्तं सुदर्शनम् । वसूँश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह । एतान्त्सर्वान् प्रपद्ये हं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ २ ॥ पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ माध्यंदिना सह । प्रदोषमर्धरात्रं

च व्युष्टां देवीं महापथाम् । एतान् सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ ३ ॥ ओं कर्तारञ्च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधीश्च वनस्पतीन् । एतान्त्सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ ४ ॥ धातारं च विधातारं निधीनां च पतिं सह एतान् सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥५॥ स्योनꣳ शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती । सर्वाश्च देवताश्च स्वाहा ॥ ६ ॥

स्थालीपाक अर्थात् घृत युक्त भात की इन छः मंत्रों से छः आहुति देकर कांस्यपात्र में उदुम्बर, गूलर, पलाश, के पत्ते शाड्वल, तृण विशेष, गोमय, दही, मधु, घृत, कुशा और यव को लेके उन सब वस्तुओं को मिला कर

ओं श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे संधौ गोपायेताम् ॥

इस मन्त्र से पूर्व द्वार ।

यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे संधौ गोपायेताम् ॥

इस से दक्षिण द्वार ।

अन्नञ्च त्वा ब्राह्मणाश्च पश्चिमे संधौ गोपायेताम् ॥

इस से पश्चिम द्वार ।

ऊर्क् च त्वा सूनृता चोत्तरे संधौ गोपायेताम् ॥

इस से उत्तर द्वार के समीप उन को बखेरे और जलप्रोक्षण भी करे

केता च मां सुकेता च पुरस्ताद् गोपायेतामित्यग्निर्वै केताऽऽदित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद् गोपायेताम् ॥ १ ॥

इस से पूर्व दिशा में परमात्मा का उपस्थान कर के दक्षिण द्वार के सामने दक्षिणाभिमुख होके—

दक्षिणतो गोपायमानं च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमान॰ रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् ॥ २ ॥

इस प्रकार जगदीश का उपस्थान करके पश्चिम द्वार के सामने पश्चिमाभिमुख हो के—

दीदिविश्च माजागृविश्च पश्चाद् गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोस्तु तौ मा पश्चाद् गोपायेताम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार पश्चिम दिशा में सर्वरक्षक परमात्मा का उपस्थान करके उत्तर दिशा में उत्तर द्वार के सामने उत्तराभिमुख खड़े रह के—

अस्वप्नश्च मानवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेतामिति ॥ धर्मस्थूणा राज॰ श्रीसूर्य्यामहोरात्रे द्वारफलके इन्द्रस्य गृहावसुमतो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिस्सह यन्मे किञ्चिदस्त्युपहूतः सर्वगणाः सखायः साधुसंमतस्तां त्वा शाले अरिष्टवीरा गृहा नः सन्तु सर्वतः ॥

इस प्रकार उत्तर दिशा में सर्वाधिष्ठाता परमात्मा का उपस्थान करके सुपात्र वेदवित् धार्मिक होता आदि सपत्नीक ब्राह्मण तथा इष्ट मित्र और सम्बन्धियों को उत्तम भोजन करा के यथायोग्य सत्कार करके दक्षिणा दे पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्री प्रसन्नता पूर्वक विदा करें और वे जा॰ समय गृहपति और गृहपत्नी आदि को ॥

सर्वे भवन्तोऽत्रानन्दिताः सदा भूयासुः ॥

इस प्रकार आशीर्वाद दे के अपने २ घर को जावें । इसी प्रकार आराम आदि की भी प्रतिष्ठा करें इस में इतना ही विशेष है कि जिस ओर का वायु

बगीचे को जावे उसी ओर होम करे कि जिस का सुगन्ध वृक्ष आदि को सुगन्धित करे यदि उस में घर बना हो तो शाला के समान उस की भी प्रतिष्ठा करे ॥

इति शालादिसंस्कारविधिः ॥

इस प्रकार गृहादि की रचना करके गृहाश्रम में जो २ अपने २ वर्ण के अनुकूल कर्त्तव्य कर्म हैं उन २ को यथावत् करें ।

अथ ब्राह्मणस्वरूपलक्षणम् ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥१॥ मनुस्मृतौ ।
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ २ ॥ गीता०

अर्थः—१ एक—निष्कपट हो के प्रीति से पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को पढ़ावें । २ दो—पूर्ण विद्या पढ़ें । ३ तीन—अग्निहोत्रादि यज्ञ करें । ४ चौथा—यज्ञ करावें । ५ पांच—विद्या अथवा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देवें । ६ छठा—न्याय से धनोपार्जन करने वाले गृहस्थों से दान लेवे भी । इन में से ३ तीन कर्म पढ़ना, यज्ञकरना, दान देना,*धर्म में, और तीन कर्म पढ़ाना, यज्ञकराना, दानलेना, जीविका हैं परन्तु ॥

प्रतिग्रहःप्रत्यवरः ॥ मनु०

जो दान लेना है वह नीच कर्म है किन्तु पढ़ा के और यज्ञ करा के जीविका करनी उत्तम है ॥१॥ (शमः) मन को अधर्म में न जाने दे किन्तु अधर्म करने की इच्छा भी न उठने देवे (दमः) श्रोत्रादि इन्द्रियों को अधर्माचरण से सदा दूर रक्खे दूर रख के धर्म ही के बीच में प्रवृत्त रक्खे (तपः) ब्रह्मचर्य विद्या योगाभ्यास की सिद्धि के लिये शीत उष्ण निन्दा स्तुति क्षुधा तृषा मानापमान आदि द्वन्द्व का सहना (शौचम्) राग द्वेष मोहादि से मन और आत्मा को तथा जलादि से

* धर्म नाम न्यायाचरण न्याय पक्षपात छोड़ के वर्त्तना पक्षपात छोड़ना नाम सर्वदा अहिंसादि निर्वैरता सत्यभाषणादि में स्थिर रह कर हिंसा द्वेषादि और मिथ्याभाषणादि से सदा पृथक् रहना सब मनुष्यों का यही एक धर्म है किन्तु जो २ धर्म के लक्षण वर्ण कर्मों में पृथक् २ आते हैं इसी से चार वर्ण पृथक् २ गिने जाते हैं।

शरीर को सदा पवित्र रखना (क्षान्तिः) क्षमा अर्थात् कोई निन्दा स्तुति आदि से सतावें तो भी उन पर कृपालु रह कर क्रोधादि का न करना (आर्जवम्) निरभिमान रहना दम्भ स्वात्मश्लाघा अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करके नम्र सरल शुद्ध पवित्रभाव रखना (ज्ञानम्) सब शास्त्रों को पढ़ के विचार कर उन के शब्दार्थ सम्बन्धों को यथावत् जान कर पढ़ाने का पूर्ण सामर्थ्य करना (विज्ञानम्) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को जान और क्रिया कुशलता तथा योगाभ्यास से साक्षात् करके यथावत् उपकार ग्रहण करना कराना (आस्तिक्यम्) परमेश्वर, वेद, धर्म, परलोक, परजन्म, पूर्वजन्म, कर्म फल और मुक्ति से विमुख कभी न होना ये नव कर्म और गुण धर्म में समझना सब से उत्तम गुण कर्म स्वभाव को धारण करना ये गुण कर्म जिन व्यक्तियों में हों वे ब्राह्मण और ब्राह्मणी होवें विवाह भी इन्हीं वर्ण के गुण कर्म स्वभावों को मिला ही के करें मनुष्यमात्र में से इन्ही को ब्राह्मण वर्ण का अधिकार होवे ॥२॥

अथ क्षत्रियस्वरूपलक्षणम् ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ १ ॥ मनुः
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्मस्वभाजम् ॥ २ ॥ गीता

अर्थः—दीर्घ ब्रह्मचर्य से (अध्ययनम्) सांगोपांग वेदादि शास्त्रों को यथावत् पढ़ना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (दानम्) सुपात्रों को विद्या सुवर्ण आदि और प्रजा को अभयदान देना (प्रजानां,रक्षणम्) प्रजाओं का सब प्रकार से सर्वदा यथावत् पालन करना यह धर्म क्षत्रियों के धर्म के लक्षणों में और शस्त्रविद्या का पढ़ाना न्यायघर और सेना में जीविका करना क्षत्रियों की जीविका है (विषयेष्वप्रसक्तिः) विषयों में अनासक्त हो के सदा जितेन्द्रिय रहना लोभ व्यभिचार मद्यपानादि नशा आदि दुर्व्यसनों से पृथक् रह कर विनय सुशीलतादि शुभ कर्मों में सदा प्रवृत्त रहना (शौर्यम्) शस्त्र संग्राम मृत्यु और शस्त्रप्रहारादि से न डरना (तेजः) प्रगल्भता उत्तम प्रतापी हो कर किसी के सामने दीन वा भीरु न होना (धृतिः) चाहे कितनी ही आपत् विपत् क्लेश दुःख

प्राप्त हो तथापि धैर्य रख के कभी न घबराना (दाक्ष्यम्) संग्राम, वाग्युद्ध, दूतत्व, न्याय, विचार आदि सब में अतिचतुर बुद्धिमान् होना (युद्धे, चाप्यपलायनम्) युद्ध में सदा उद्यत रहना युद्ध से घबरा कर शत्रु के वश में कभी न होना (दानम्) इस का अर्थ प्रथम श्लोक में आ गया (ईश्वरभावः) जैसे परमेश्वर सब के ऊपर दया करके पितृवत् वर्त्तमान पक्षपात छोड़ कर धर्माऽधर्म करने वालों को यथायोग्य सुख दुःखरूप फल देता और अपने सर्वज्ञता आदि साधनों से सब का अन्तर्यामी होकर सब के अच्छे बुरे कर्मों को यथावत् देखता है वैसे प्रजा के साथ वर्त्तकर गुप्त दूत आदि से अपने को सब प्रजा वा राजपुरुषों के अच्छे बुरे कर्मों से सदा ज्ञात रखना रात दिन न्याय करने और प्रजा को यथावत् सुख देने श्रेष्ठों का मान और दुष्टों को दण्ड करने में सदा प्रवृत्त रहना और सब प्रकार से अपने शरीर को रोगरहित बलिष्ठ दृढ़ तेजस्वी दीर्घायु रख के आत्मा को न्याय धर्म में चला कर कृतकृत्य करना आदि गुण कर्मों का योग जिस व्यक्ति में हो वह क्षत्रिय और क्षत्रिया होवे इन का भी इन्हीं गुण कर्मों के मेल से विवाह करना और जैसे ब्राह्मण पुरुषों और ब्राह्मणी स्त्रियों को पढ़ावे वैसे ही राजा पुरुषों और राणी स्त्रियों का न्याय तथा उन्नति सदा किया करें जो क्षत्रिय, राजा न हों वे भी राज में ही यथाधिकार से नौकरी किया करें ॥

अथ वैश्यस्वरूपलक्षणम् ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ १ ॥ मनु॰

अर्थ—(अध्ययनम्) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (दानम्) अन्नादि का दान देना ये तीन धर्म के लक्षण और (पशूनां, रक्षणम्) गाय आदि पशुओं का पालन करना उन से दुग्धादि का बेंचना (वणिक्पथम्) नाना देशों की भाषा, हिसाब, भूगर्भ विद्या, भूमि, बीज आदि के गुण जानना और सब पदार्थों के भावाभाव समझना (कुसीदम्) ब्याज का लेना * (कृषिमेव च) खेती की विद्या का जानना अन्न आदि की रक्षा

* सवा रुपये सैकड़े से अधिक चार आने से न्यून ब्याज न लेवे न देवे जब दूना धन आजाय उस से आगे कौड़ी न लेवे न देवे जितना न्यून ब्याज लेवे गा उतना ही उस का धन बढ़े गा और कभी धन का नाश और कुसन्तान उस के कुल में न होंगे ॥

खात और भूमी की परीक्षा जानना बोना आदि व्यवहार का जानना ये चार कर्म वैश्य की जीविका, ये गुण कर्म जिस व्यक्ति में हों वह वैश्य, वैश्या। और इन्हीं की परस्पर परीक्षा और योग से विवाह होना चाहिये ॥ १ ॥

अथ शूद्रस्वरूपलक्षणम् ॥

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ १ ॥ मनु०

अर्थः—(प्रभुः) परमेश्वर ने (शूद्रस्य) जो विद्याहीन जिस को पढ़ने से भी विद्या न आ सके शरीर से पुष्ट सेवा में कुशल हो उस शूद्र के लिये (एतेषामेव वर्णानाम्) इन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों की (अनसूयया) निन्दा से रहित प्रीति से सेवा करना (एकमेव कर्म) यही एक कर्म (समादिशत्) करने की आज्ञा दी है ये मूर्खत्वादि गुण और सेवा आदि कर्म जिस व्यक्ति में हों वह शूद्र और शूद्रा है। इन्हीं की परीक्षा से इन का विवाह और इन को अधिकार भी ऐसा ही होना चाहिये। इन गुण कर्मों के योग ही से चारों वर्ण होवें तो उस कुल देश और मनुष्यसमुदाय की बड़ी उन्नति होवे और जिन का जन्म जिस वर्ण में हो उसी के सदृश गुण कर्म स्वभाव हों तो अतिविशेष है ॥ १ ॥

अब सब ब्राह्मणादि वर्ण वाले मनुष्य लोग अपने २ कर्मों में निम्नलिखित रीति से वर्त्तें ॥

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १ ॥
नेहेतार्थान् प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥ २ ॥

अर्थः—ब्राह्मणादि द्विज वेदोक्त अपने कर्म को आलस्य छोड़ के नित्य किया करें उस को अपने सामर्थ्य के अनुसार करते हुए, मुक्ति पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥१॥ गृहस्थ कभी किसी दुष्ट के प्रसंग से द्रव्यसंचय न करे न विरुद्ध

कर्म से, न विद्यमान पदार्थ होते हुए उन को गुप्त रख के दूसरे से छल करके और चाहे कितना ही दुःख पड़े तदपि अधर्म से द्रव्यसंचय कभी न करे ॥ २ ॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा सन्निवर्त्तयेत् ॥ ३ ॥

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथा तथाऽध्यापयंस्तु साह्यस्य कृतकृत्यता ॥ ४ ॥

अर्थः—इन्द्रियों के विषयों में काम से कभी न फंसे और विषयों की अत्यन्त प्रसक्ति अर्थात् प्रसंग को मन से अच्छे प्रकार दूर करता रहे॥३॥जो स्वाध्याय और धर्मविरोधी व्यवहार वा पदार्थ हैं उन सब को छोड़ देवे जिस किसी प्रकार से विद्या को पढ़ाते रहना ही गृहस्थ को कृतकृत्य होना है ॥ ४ ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ ५ ॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ ६ ॥

न संवसेच्च पतितैर्न चांडालैर्न पुल्कशैः।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७ ॥

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥ ८ ॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम जो धर्म धन और बुध्यादि को अत्यन्त शीघ्र बढ़ाने हारे हितकारी शास्त्र हैं उन को और वेद के भागों की विद्याओं को नित्य देखा करो ॥५॥ मनुष्य जैसे २ शास्त्र का विचार कर उस के यथार्थ भाव को प्राप्त होता है वैसे २ अधिक २ जानता जाता है और इस की प्रीति विज्ञान

ही में होती जाती है ॥ ६ ॥ सज्जन गृहस्थ लोगों को योग्य है कि जो पतित दुष्ट कर्म करने हारे हों न उन के न चांडल न कंजर न मूर्ख न मिथ्याभिमानी और न नीचनिश्चय वाले मनुष्यों के साथ कभी निवास करें ॥ ७ ॥ गृहस्थ लोग कभी प्रथम पुष्कल धनी हो के पश्चात् दरिद्र हो जायं उस से अपने आत्मा का अपमान न करें कि हाय हम निर्धनी हो गये इत्यादि विलाप भी न करें किन्तु मृत्युपर्यन्त लक्ष्मी की उन्नति में पुरुषार्थ किया करें और लक्ष्मी को दुर्लभ न समझें ॥ ८ ॥ मनुष्य सदैव सत्य बोलें और दूसरे का कल्याणकारक उपदेश करें काणे को काणा मूर्ख को मूर्ख आदि अप्रिय वचन उन के सन्मुख कभी न बोलें और जिस मिथ्याभाषण से दूसरा प्रसन्न होता हो उस को भी न बोलें यह सनातन धर्म है ॥ ९ ॥

अभिवादयेद्वृद्धाँश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १० ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ ११ ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १२ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ १३ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १४ ॥

अर्थः—सदा विद्यावृद्धों और वयोवृद्धों को नमस्ते अर्थात् उन का मान्य किया करे जब वे अपने समीप आवें तब उठ कर मान्य पूर्वक ले अपने आसन पर बैठावे और हाथ जोड़ के आप समीप बैठे पूछे वे उत्तर देवें और जब जाने लगें तब थोड़ी दूर पीछे २ जाकर नमस्ते कर विदा किया करे और वृद्ध लोग हरबार निकंमे जहां तहां न जाया करें ॥१०॥ गृहस्थ सदा आलस्य को

छोड़ कर वेद और मनुस्मृति में वेदानुकूल कहे हुए अपने कर्मों में निबद्ध और धर्म का मूल सदाचार अर्थात् सत्य और सत्पुरुष आप्त धर्मात्माओं का आचरण है उस का सेवन सदा किया करें ॥११॥ धर्माचरण ही से दीर्घायु उत्तम प्रजा और अक्षय धन को मनुष्य प्राप्त होता है और धर्माचार बुरे अधर्मयुक्त लक्षणों का नाश कर देता है ॥१२॥ और जो दुष्टाचारी पुरुष होता है वह सर्वत्र निन्दित दुःखभागी और व्याधि से अल्पायु सदा हो जाता है ॥१३॥ जो सब अच्छे लक्षणों से हीन भी हो कर सदाचारयुक्त सत्य में श्रद्धा और निन्दा आदि दोष रहित होता है वह सुख से सौ वर्ष पर्यन्त जीता है ॥ १४ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १५ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६ ॥
अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥ १७ ॥

अर्थः—मनुष्य जो २ पराधीन कर्म हो उस२ को प्रयत्न से सदा छोड़े और जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २ का सेवन प्रयत्न से किया करे ॥ १५ ॥ क्योंकि जितना परवश होना है वह सब दुःख और जितना स्वाधीन रहना है वह सब सुख कहाता है यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानो ॥ १६ ॥ जो अधार्मिक मनुष्य है और जिस का अधर्म से संचित किया हुआ धन है और जो सदा हिंसा में अर्थात् वैर में प्रवृत्त रहता है वह इस लोक और परलोक अर्थात् परजन्म में सुख को कभी नहीं प्राप्त हो सकता ॥ १७ ॥

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ १८ ॥
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ।
न त्वेवन्तु कृतोऽधर्मः कर्त्तुर्भवति निष्फलः ॥ १९ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।

शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयुतः ॥ २० ॥

अर्थः—मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता वैसे ही किये हुए अधर्म का फल भी शीघ्र नहीं होता किन्तु धीरे २ अधर्म कर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है ॥१८॥ यदि अधर्म का फल कर्त्ता की विद्यमानता में न हो तो पुत्रों और पुत्रों के समय में न हो तो नातियों के समय में अवश्य प्राप्त होता है किन्तु यह कभी नहीं हो सकता कि कर्त्ता का किया हुआ कर्म निष्फल होवे ॥१९॥ इस लिये मनुष्यों को योग्य है कि सत्य धर्म और (आर्य) अर्थात् उत्तम पुरुषों के आचरणों और भीतर बाहर की पवित्रता में सदा रमण करें अपनी वाणी बाहू उदर को नियम और सत्य धर्म के साथ वर्त्तमान रख के शिष्यों को सदा शिक्षा किया करें ॥२०॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।

धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ २१ ॥

धर्मं शनैस्संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।

परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २२ ॥

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह ।

निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥ २३ ॥

वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।

तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २४ ॥

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ २५ ॥ मनु०

अर्थः—जो धर्म से वर्जित धनादिपदार्थ और काम हों उन को सर्वथा शीघ्र छोड़ देवे और जो धर्माभास अर्थात् उत्तर काल में दुःखदायक कर्म हैं और जो लोगों को निन्दित कर्म में प्रवृत्त करने वाले कर्म हैं उन से भी दूर रहे ॥ २१ ॥

जैसे दीमक, धीरे २ बड़े भारी घर को बना लेती हैं वैसे मनुष्य परजन्म के सहाय के लिये सब प्राणियों को पीड़ा न देकर धर्म का संचय धीरे २ किया करे ॥ २२ ॥ जो मनुष्य अपने कुल को उत्तम करना चाहे वह नीच २ पुरुषों का सम्बन्ध छोड़ कर नित्य अच्छे २ पुरुषों से सम्बन्ध बढ़ाता जावे ॥२३॥ जिस वाणी में सब व्यवहार निश्चित वाणी ही जिन का मूल और जिस वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं जो मनुष्य उस वाणी को चोरता अर्थात् मिथ्या-भाषण करता है वह जानो सब चोरी आदि पाप ही को करता है इस लिये मिथ्याभाषण को छोड़ के सदा सत्यभाषण ही किया करे ॥ २४ ॥ मनुष्यों को चाहिये कि धर्म से वेदादि शास्त्रों का पठन, पाठन, गायत्री प्रणवादि का अर्थ विचार, ध्यान, अग्निहोत्रादि होम कर्मोपासना, ज्ञान,विद्या, पौर्णमास्यादि इष्टि, पंचमहायज्ञ, अग्निष्टोम आदि, न्याय से राज्यपालन, सत्योपदेश और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से इस शरीर को (ब्राह्मी) अर्थात् ब्रह्मसम्बन्धी करें ॥२५॥

अथ सभा०—जो २ विशेष बड़े २ काम हों जैसा कि राज्य, वे सब सभा से निश्चय करके किये जावें ॥

इस में प्रमाण०—तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १५ । सू० ९ । मं० २ ॥ सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ २ ॥ अथर्व० कां १९ । सू० ५५ । मं० ६ ॥ त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ३ । सू० ३८ । मं० ६ ॥

अर्थः—(तम्) जो कि संसार में धर्म के साथ राज्यपालनादि किया जाता है उस व्यवहार को सभा और संग्राम तथा सेना सब प्रकार संचित करे ॥१॥ हे सभ्य सभा के योग्य सभापते राजन् तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की (पाहि) रक्षा और उन्नति किया कर (ये, च) और जो (सभ्याः) सभा के योग्य धार्मिक आप्त (सभासदः) सभासद् विद्वान् लोग हैं वे भी सभा की योजना रक्षा और उस से सब की उन्नति किया करें ॥ २ ॥ जो (राजाना) राजा और प्रजा के भद्र पुरुषों के दोनों समुदाय हैं वे (विदथे) उत्तम ज्ञान और लाभदायक इस जगत् अथवा संग्रामादि कार्यों में (त्रीणि) राजसभा धर्मसभा

और विद्यासभा अर्थात् विद्यादि व्यवहारों की वृद्धि के लिये ये तीन प्रकार की (सदांसि) सभा नियत कर इन्हीं से संसार की सब प्रकार उन्नति करें ॥ ३ ॥

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुस्स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ १ ॥
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः स परिबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ २ ॥

अर्थः—हे गृहस्थ लोगो जो धर्मयुक्त व्यवहार मनुस्मृति आदि में प्रत्यक्ष न कहे हों यदि उन में शंका होवे तो तुम जिस को शिष्ट आप्त विद्वान् कहें उसी को शंकारहित कर्त्तव्य धर्म मानो ॥ १ ॥ शिष्ट सब मनुष्यमात्र नहीं होते किन्तु जिन्हों ने पूर्ण ब्रह्मचर्य और धर्म से साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़े हों जो श्रुति प्रमाण और प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही से विधि वा निषेध करने में समर्थ धार्मिक परोपकारी हों वे ही शिष्ट पुरुष होते हैं ॥ २ ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ३ ॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ ४ ॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ५ ॥
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ६ ॥

अर्थः—वैसे शिष्ट न्यून से न्यून १० दश पुरुषों की सभा होवे अथवा बड़े विद्वान् तीनों की भी सभा हो सकती है जो सभा से धर्म कर्म निश्चित हों उन का भी आचरण सब लोग करें ॥ ३ ॥ उन दशों में इस प्रकार के विद्वान् होवें ३ तीन वेदों के विद्वान् चौथा हैतुक अर्थात् कारण अकारण का ज्ञाता, पांचवां तर्की न्यायशास्त्रवित् छठा निरुक्त का जानने हारा, सातवां धर्मशास्त्रवित्

आठवां ब्रह्मचारी नववां गृहस्थ और दशवां वानप्रस्थ इन महात्माओं की सभा होवे ॥ ४ ॥ तथा ऋग्वेदवित् यजुर्वेदवित् और सामवेदवित् इन तीनों विद्वानों की भी सभा धर्मसंशय अर्थात् सब व्यवहारों के निर्णय के लिये होनी चाहिये, और जितने सभा में अधिक पुरुष हों उतनी ही उत्तमता है ॥ ५ ॥ द्विजों में उत्तम अर्थात् चतुर्थाश्रमी संन्यासी अकेला भी जिस धर्म व्यवहार के करने का निश्चय करे वही परम धर्म समझना किन्तु अज्ञानियों के सहस्रों लाखों और क्रोड़ह पुरुषों का कहा हुआ, धर्मव्यवहार कभी न मानना चाहिये किन्तु धर्मात्मा विद्वानों और विशेष परमविद्वान् संन्यासी का वेदादि प्रमाणों से कहा हुआ धर्म सब को मानने योग्य है ॥ ६ ॥

यदि सभा में मतभेद हो तो बहुपक्षानुसार मानना और सम पक्ष में उत्तमों की बात स्वीकार करनी और दोनों पक्ष वाले बराबर उत्तम हों तो वहां संन्यासियों की सम्मति लेनी, जिधर पक्षपातरहित सर्वहितैषी संन्यासियों की सम्मति होवे वही उत्तम समझनी चाहिये—

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ।
दशलक्षणको धर्मस्सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ७ ॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ८ ॥ मनु०

अर्थः—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी आदि सब मनुष्यों को योग्य है कि निम्नलिखित धर्म का सेवन और उस से विरुद्ध अधर्म का त्याग प्रयत्न से किया करें ॥ ७ ॥ धर्म, न्याय नाम पक्षपात छोड़ कर सत्य ही का आचरण और असत्य का सर्वदा परित्याग रखना इस धर्म के ग्यारह लक्षण हैं (अहिंसा) किसी से वैर बुद्धि करके उस के अनिष्ट करने में कभी न वर्त्तना (धृतिः) सुख दुःख हानि लाभ में भी व्याकुल होकर धर्म को न छोड़ना किन्तु धैर्य से धर्म ही में स्थिर रहना (क्षमा) निन्दा स्तुति मानापमान का सहन करके धर्म ही करना (दमः) मन को अधर्म से सदा हटाकर धर्म ही में प्रवृत्त रखना (अस्तेयम्) मन, कर्म, वचन से अन्याय और अधर्म से पराये द्रव्य का स्वीकार न करना (शौचम्) राग द्वेषादि त्याग से आत्मा और मन को

पवित्र और जलादि से शरीर को शुद्ध रखना (इन्द्रियनिग्रहः) श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को अधर्म से हटा के धर्म ही में चलाना (धीः) वेदादि सत्यविद्या ब्रह्मचर्य सत्संग करने और कुसंग दुर्व्यसन मद्यपानादि त्याग से बुद्धि को सदा बढ़ाते रहना (विद्या) जिस से भूमि से ले के परमेश्वर पर्यन्त का यथार्थ बोध होता है उस विद्या को प्राप्त होना (सत्यम्) सत्य मानना सत्य बोलना सत्य करना (अक्रोधः) क्रोधादि दोषों को छोड़ कर शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना धर्म कहाता है इस का ग्रहण और अन्याय पक्षपात सहित आचरण अधर्म जो कि हिंसा वैरबुद्धि अधैर्य असहन मन को अधर्म में चलाना चोरी करना अपवित्र रहना इन्द्रियों को न जीत कर अधर्म में चलाना कुसंग दुर्व्यसन मद्यपानादि से बुद्धि का नाश करना अविद्या जो कि अधर्माचरण अज्ञान है उस में फसना असत्य मानना असत्य बोलना क्रोधादि दोषों में फस कर अधर्मी दुष्टाचारी होना ये ग्यारह अधर्म के लक्षण हैं, इन से सदा दूर रहना चाहिये ॥८॥

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥
महाभारते० ॥ ९ ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥ १० ॥
धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ ११ ॥
विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥ १२ ॥

वह सभा नहीं है जिस में वृद्ध पुरुष न होवें वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्म ही की बात नहीं बोलते वह धर्म नहीं है जिस में सत्य नहीं और न वह सत्य है जो कि छल से युक्त हो ॥९॥ मनुष्य को योग्य है कि सभा में प्रवेश न करे यदि सभा में प्रवेश करे तो सत्य ही बोले यदि सभा में बैठा हुआ भी असत्य बात को सुन के मौन रहे अथवा सत्य के विरुद्ध बोले वह मनुष्य अति पापी

है ॥ १० ॥ अधर्म से धर्म घायल होकर जिस सभा में प्राप्त होवे उस के घाव को यदि सभासद् न पूर देवें तो निश्चय जानो कि उस सभा में सब सभासद् ही घायल पड़े हैं ॥ ११ ॥ जिस को सत्पुरुष राग द्वेष रहित विद्वान् अपने हृदय से अनुकूल जान कर सेवन करते हैं उसी पूर्वोक्त को तुम लोग धर्म जानो ॥ १२ ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १३ ॥
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १४ ॥

जो पुरुष धर्म का नाश करता है उसी का नाश धर्म कर देता है और जो धर्म की रक्षा करता है उस की धर्म भी रक्षा करता है इस लिये मारा हुआ धर्म कभी हम को न मार डाले इस भय से धर्म का हनन अर्थात् त्याग कभी न करना चाहिये ॥ १३ ॥ जो सुख की वृष्टि करने हारा सब ऐश्वर्य्य का दाता धर्म है उस का जो लोप करता है उस को विद्वान् लोग वृषल अर्थात् नीच समझते हैं ॥ १४ ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ १५ ॥
महाभारते ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १६ ॥ मनु०

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीस्समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ १७ ॥ भर्तृहरिः ॥

अर्थः—मनुष्यों को योग्य है कि काम से अर्थात् झूठ से कामना सिद्ध होने के कारण से वा निन्दा स्तुति आदि के भय से भी धर्म्म का त्याग कभी न करें

और न लोभ से चाहे झूठ अधर्म्म से चक्रवर्त्ति राज्य भी मिलता हो तथापि धर्म को छोड़ कर चक्रवर्त्ति राज्य को भी ग्रहण न करें चाहे भोजन छादन जल पान आदि की जीविका भी अधर्म से हो सके वा प्राण जाते हों परन्तु जीविका के लिये भी धर्म को कभी न छोड़ें क्योंकि जीव और धर्म नित्य हैं तथा सुख दुःख दोनों अनित्य हैं अनित्य के लिये नित्य का छोड़ना अतीव दुष्ट कर्म है इस धर्म का हेतु कि जिस शरीर आदि से धर्म होता है वह भी अनित्य है धन्य वे मनुष्य हैं जो अनित्य शरीर और सुख दुःखादि के व्यवहार में वर्त्तमान होकर नित्य धर्म का त्याग कभी नहीं करते ॥ १५ ॥ जिस सभा में बैठे हुए सभासदों के सामने अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य का हनन होता है उस सभा में सब सभासद् मरे से ही हैं ॥ १६ ॥ सब मनुष्यों को यह निश्चय जानना चाहिये कि चाहे सांसारिक अपने प्रयोजन की नीति में वर्त्तने हारे चतुर पुरुष निन्दा करें वा स्तुति करें लक्ष्मी प्राप्त होवे अथवा नष्ट हो जावे आज ही मरण होवे अथवा वर्षान्तर में मृत्यु प्राप्त होवे तथापि जो मनुष्य धर्म युक्त मार्ग से एक पग भी विरुद्ध नहीं चलते वे ही धीर पुरुष धन्य हैं ॥ १७ ॥

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १९१ । मं० २ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥२॥ यजु० अ० १९ । मं० ७७॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥ तै० अष्टमप्रपाठकः । प्रथमानुवाकः ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो तुम को मैं ईश्वर आज्ञा देता हूं कि (यथा) जैसे (पूर्वे) प्रथम अधीतविद्यायोगाभ्यासी (संजानानाः) सम्यक् जानने वाले (देवाः) विद्वान् लोग मिल के (भागम्) सत्य असत्य का निर्णय करके असत्य को छोड़ सत्य की (उपासते) उपासना करते हैं वैसे (सम्, जानताम्) आत्मा से

धर्माऽधर्म प्रियाऽप्रिय को सम्यक् जानने हारे (वः) तुम्हारे (मनांसि) मन एक दूसरे से अविरोधी होकर एक पूर्वोक्त धर्म्म में सम्मत होवें और तुम उसी धर्म्म को (संगच्छध्वम्) सम्यक् मिल के प्राप्त होओ जिस में तुम्हारी एक सम्मति होती है और विरुद्ध वाद अधर्म को छोड़ के (संवदध्वम्) सम्यक् संवाद प्रश्नोत्तर प्रीति से करके एक दूसरे की उन्नति किया करो ॥ १ ॥ (प्रजापतिः) सकल सृष्टि का उत्पत्ति और पालन करने हारा सर्वव्यापक सर्वज्ञ न्यायकारी अद्वितीय स्वामी परमात्मा (सत्यानृते) सत्य और अनृत (रूपे) भिन्न २ स्वरूप वाले धर्म अधर्म को (दृष्ट्वा) अपनी सर्वज्ञता से यथावत् देख के (व्याकरोत्) भिन्न २ निश्चित करता है (अनृते) मिथ्याभाषणादि अधर्म में (अश्रद्धाम्) अप्रीति करो और (प्रजापतिः) वही परमात्मा (सत्ये) सत्यभाषणादि लक्षण-युक्त न्याय पक्षपात रहित धर्म में तुम्हारी (श्रद्धाम्) प्रीति को (अदधात्) धारण कराता है वैसा ही तुम करो ॥२॥ हम स्त्री पुरुष सेवक स्वामी मित्र २ पिता पुत्रादि (सह) मिल के (नौ) हम दोनों प्रीति से (अवतु) एक दूसरे की रक्षा किया करें और (सह) प्रीति से मिल के एक दूसरे के (वीर्यम्) पराक्रम की बढ़ती (करवावहै) सदा किया करें (नौ) हमारा (अधीतम्) पढ़ा पढ़ाया (तेजस्वि) अतिप्रकाशमान (अस्तु) होवे और हम एक दूसरे से (मा,विद्विषावहै) कभी विद्वेष विरोध न करें किन्तु सदा मित्रभाव और एक दूसरे के साथ सत्य प्रेम से वर्त्त कर सब गृहस्थों के सद्व्यवहारों को बढ़ाते हुए सदा आनन्द में बढ़ते जावें जिस परमात्मा का यह "ओम्" नाम है उस की कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ से हमारे शरीर, मन और आत्मा का त्रिविध दुःख जो कि अपने दूसरे से होता है नष्ट हो जावे और हम लोग प्रीति से एक दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रह कर सब को आनन्द में रक्खें ॥

इति गृहाश्रमसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ वानप्रस्थसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

वानप्रस्थसंस्कार उस को कहते हैं जो विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र का भी एक सन्तान हो जाय अर्थात् जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब पुरुष वानप्रस्थाश्रम अर्थात् वन में जा कर निम्नलिखित सब बातें करे ॥

अत्र प्रमाणानि—ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥१॥ शतपथब्राह्मणे ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ २ ॥
यजुः० अ० १९ । मं० ३० ॥

अर्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति करके गृहस्थ होवें गृहस्थ होके वनी अर्थात् वानप्रस्थ होवें, और वानप्रस्थ होके संन्यास ग्रहण करें ॥१॥ जब मनुष्य ब्रह्मचर्यादि तथा सत्यभाषणादि व्रत अर्थात् नियम धारण करता है तब उस (व्रतेन) व्रत से उत्तम प्रतिष्ठारूप (दीक्षाम्) दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियम पालन से (दक्षिणाम्) सत्कारपूर्वक धनादि को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस सत्कार से (श्रद्धाम्) सत्यधारण में प्रीति को (आप्नोति) प्राप्त होता है और (श्रद्धया) सत्यधार्मिक जनों में प्रीति से (सत्यम्) सत्यविज्ञान वा सत्य पदार्थ मनुष्य को (आप्यते) प्राप्त होता है इस लिये श्रद्धा पूर्वक ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम का अनुष्ठान करके वानप्रस्थ आश्रम अवश्य करना चाहिये ॥ २ ॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम् ॥ ३ ॥ य० अ० २० । मं० २४ ॥

आ न॑यै॒तमा र॑भस्व सु॒कृतां॑ लो॒कमपि॑ गच्छतु प्रजा॒नन् । ती॒र्त्वा तमां॑सि बहु॒धा म॒हान्त्य॒जो नाक॒मा क्र॑मतां तृ॒तीय॑म् ॥ ४॥ अथर्व० कां० ९ । सू० ५ । मं० ॥ १ ॥

अर्थः—हे (व्रतपतेऽग्ने) नियमपालकेश्वर (दीक्षितः) दीक्षा को प्राप्त होता हुआ (अहम्) मैं (त्वयि) तुझ में स्थिर हो के (व्रतम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का धारण (च) और उस की सामग्री (श्रद्धाम्) सत्य की धारणा को (च) और उस के उपायों को (उपैमि) प्राप्त होता हूं इसी लिये अग्नि में जैसे (समिधम्) समिधा को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं वैसे विद्या और व्रत को धारण कर प्रज्वलित करता हूं और वैसे ही (त्वा) तुझ को अपने आत्मा में धारण करता और सदा (इन्धे) प्रकाशित करता हूं ॥३॥ हे गृहस्थ (प्रजानन्) प्रकर्षता से जानता हुआ तू (एतम्) इस वानप्रस्थाश्रम का (आरभस्व) आरम्भ कर (आनय) अपने मन को गृहाश्रम से इधर की ओर ला (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकमपि) देखने योग्य वानप्रस्थाश्रम को भी (गच्छतु) प्राप्त हो (बहुधा) बहुत प्रकार के (महान्ति) बड़े २ (तमांसि) अज्ञान दुःख आदि संसार के मोहों को (तीर्त्वा) तर के अर्थात् पृथक् हो कर (अजः) अपने आत्मा को अजर अमर जान (तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) दुःख रहित वानप्रस्थाश्रम को (आक्रमताम्) आक्रमण अर्थात् रीति पूर्वक आरूढ हो ॥४॥

भ॒द्रमि॒च्छन्त॒ ऋष॑यः स्व॒र्विद॒स्तपो॑ दी॒क्षामु॑प॒निषे॑दु॒रग्रे॑ । ततो॑ रा॒ष्ट्रं बल॒मोज॑श्च जा॒तं तद॑स्मै दे॒वा उ॑प॒संन॑मन्तु ॥५॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४१ । मं० १ ॥

मा नो॑ मे॒धां मा नो॑ दी॒क्षां मा नो॑ हिंसिष्टं॒ यत्तपः॑ । शि॒वा नः॑ सन्त्वायु॑षे शि॒वा भ॑वन्तु मा॒तरः॑ ॥६॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४० । मं० ३ ॥

अर्थः—हे विद्वान् मनुष्यो जैसे (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त होने वाले (ऋषयः) विद्वान् लोग (अग्रे) प्रथम (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों की दीक्षा उपदेश ले के (तपः) प्राणायाम और विद्याध्ययन जितेन्द्रियत्वादि शुभ लक्षणों को

(उप, निषेदुः) प्राप्त हो कर अनुष्ठान करते हैं वैसे हम (भद्रम्) कल्याण-कारक वानप्रस्थाश्रम की (इच्छन्तः) इच्छा करो जैसे राजकुमार ब्रह्मचर्याश्रम को करके (ततः) तदनन्तर (ओजः) पराक्रम (च) और (बलम्) बल को प्राप्त हो के (जातम्) प्रसिद्ध प्राप्त हुए (राष्ट्रम्) राज्य की इच्छा और रक्षा करते हैं और (अस्मै) न्यायकारी धार्मिक विद्वान् राजा को (देवाः) विद्वान् लोग नमन करते हैं (तत्) वैसे सब लोग वानप्रस्थाश्रम को किये हुए आप को (उप, सं, नमन्तु) समीप प्राप्त हो के नम्र होवें ॥५॥ संबन्धी जन (नः) हम वानप्रस्थाश्रमस्थों की (मेधाम्) प्रज्ञा को (मा, हिंसिष्ट) नष्ट मत करे (नः) हमारी (दीक्षाम्) दीक्षा को (मा) मत और (नः) हमारा (यत्) जो (तपः) प्राणायामादि उत्तम तप है उस को भी (मा) मत नाश करे (नः) हमारी दीक्षा और (आयुषे) जीवन के लिये सब प्रजा (शिवाः) कल्याण करने हारी (सन्तु) होवें जैसे हमारी (मातरः) माता पितामही प्रपितामही आदि (शिवाः) कल्याण करने हारी होती हैं वैसे सब लोग प्रसन्न हो कर मुझ को वानप्रस्थाश्रम की अनुमति देने हारे (भवन्तु) होवें ॥ ६ ॥

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां-ञ्चरन्तः । सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ७ ॥ मुण्डकोपनि॰ खं॰ । मं॰ ७ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (विद्वांसः) विद्वान् लोग (अरण्ये) जंगल में (शान्त्या) शान्ति के साथ (तपःश्रद्धे) योगाभ्यास और परमात्मा में प्रीति करके (उपवसन्ति) वनवासियों के समीप वसते हैं और (भैक्षचर्याम्) भिक्षा-चरण को (चरन्तः) करते हुए जंगल में निवास करते हैं (ते) वे (हि) ही (विरजाः) निर्दोष निष्पाप निर्मल होके (सूर्यद्वारेण) प्राण के द्वारा (यत्र) जहां (सः) सो (अमृतः) मरण जन्म से पृथक् (अव्ययात्मा) नाशरहित (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा विराजमान है (हि) वहीं (प्रयान्ति) जाते हैं इस लिये वानप्रस्थाश्रम करना अतिउत्तम है ॥ ७ ॥

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥
सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वञ्चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥

अर्थः—पूर्वोक्त प्रकार विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ के समावर्त्तन के समय स्नानविधि करने हारा द्विज—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जितेन्द्रिय जितात्मा होके यथावत् गृहाश्रम करके वन में बसे ॥१॥ गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमड़ा ढीला और श्वेत केश होते हुए देखें और पुत्र का भी पुत्र हो जाय तब वन का आश्रय लेवें ॥२॥ जब वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा लेवें तब ग्रामों में उत्पन्न हुए पदार्थों का आहार और घर के सब पदार्थों को छोड़ के पुत्रों में अपनी पत्नी को छोड़ अथवा संग में लेके वन को जावें ॥ ३ ॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

अर्थः—जब गृहस्थ वानप्रस्थ होने की इच्छा करे तब अग्निहोत्र को सामग्री सहित ले के ग्राम से निकल जंगल में जितेन्द्रिय हो कर निवास करे ॥ ४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ५ ॥
तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्ष्यमाहरेत् ।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ ६ ॥
एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥७॥ मनु० अ० ६ ॥

अर्थः—वहां जङ्गल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने पढ़ाने में नित्ययुक्त मन और इन्द्रियों को जीत कर यदि स्वस्त्री भी समीप हो तथापि उस से सेवा के सिवाय विषय सेवन अर्थात् प्रसङ्ग कभी न करे सब से मित्रभाव सावधान, नित्य देने हारा और किसी से कुछ भी न लेवे सब प्राणीमात्र पर अनुकंपा

कृपा रखने हारा होवे ॥५॥ जो जङ्गल में पढ़ाने और योगाभ्यास करने हारे तपस्वी धर्मात्मा विद्वान् लोग रहते हों जो कि गृहस्थ वा वानप्रस्थ वनवासी हों उन के घरों में से भिक्षा ग्रहण करे ॥६॥ और इस प्रकार वन में वसता हुआ इन और अन्य दीक्षाओं का सेवन करे और आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के लिये नाना प्रकार की उपनिषद् अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार किया करे इसी प्रकार जब तक संन्यास करने की इच्छा न हो तब तक वानप्रस्थ ही रहे ॥ ७ ॥

अथ विधिः—वानप्रस्थाश्रम करने का समय ५० वर्ष के उपरान्त है जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बंधु, पुत्रवधू, आदि को सब गृहाश्रम की शिक्षा करके वन की ओर यात्रा की तयारी करे यदि स्त्री चले तो साथ ले जावे नहीं तो ज्येष्ठ पुत्र को सौंप जावे कि इस की सेवा यथावत् किया करना और अपनी पत्नी को शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्र आदि को धर्म मार्ग में चलने के लिये और अधर्म से हटाने के लिये शिक्षा करती रहना तत् पश्चात् पृ० १४—१५ में लिखे प्रमाणे यज्ञशाला वेदि आदि सब बनावे पृ० १६ में लि० घृत आदि सब सामग्री जोड़ के पृ० २२ में लिखे प्रमाणे (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से अग्न्याधान और (अयन्त इध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान करके पृ० २५ में लिखे प्रमाणे ।

ओं अदितेनुमन्यस्व ॥

इत्यादिचारमंत्रों से कुण्ड के चारों ओर जल प्रोक्षण करके पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आज्याहुति ४ चार करके पृष्ठ ८—१४ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके स्थालीपाक बनाकर और उस पर घृत सेचन कर निम्न लिखित मंत्रों से आहुति देवे ॥

ओं काय स्वाहा । कस्मै स्वाहा। कतमस्मै स्वाहा। स्वाहा। आधिमाधीताय स्वाहा। मनः प्रजापतये स्वाहा। चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा । अदित्यै मह्यै स्वाहा । अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा । सरस्वत्यै स्वाहा । सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा । सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा । पूष्णे स्वाहा । पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा ।

पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा। त्वष्ट्रे स्वाहा। त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा। त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा। * भुवनस्य पतये स्वाहा। अधिपतये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा †। ओं आयुर्यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। प्राणो यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। अपानो यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। व्यानो यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। उदानो यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। समानो यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। चक्षुर्यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। श्रोत्रं यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। वाग्यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। मनो यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। आत्मा यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। ब्रह्मा यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। स्वर्यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। पृष्ठं यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा। यज्ञो यज्ञेन कल्पता᳖ स्वाहा ‡। एकस्मै स्वाहा। द्वाभ्यां स्वाहा। शताय स्वाहा। एकशताय स्वाहा। व्युष्ट्यै स्वाहा। स्वर्गाय स्वाहा × ॥

इन मन्त्रों से एक २ करके ४३ स्थालीपाक की आज्याहुति देके पुनः पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ चार देकर पृष्ठ २८–२९ में लिखे प्रमाणे सामगान करके सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिकों पर सब घर का भार धर के अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जाकर एकांत में निवास कर योगाभ्यास शास्त्रों का विचार महात्माओं का संग करके स्वात्मा और परमात्मा को साक्षात् करने में प्रयत्न किया करे ॥

इति वानप्रस्थसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

* यजुः अ० २२। मं० ३२।
† यजुः अ० २२। मं० ३२।
‡ यजुः अ० २२। मं० ३३।
× यजुः अ० २२। मं० ३४।

अथ संन्याससंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

—— :-*-: ——

संन्यास संस्कार उस को कहते हैं कि जो मोहादि आवरण पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थ विचरे अर्थात्

सम्यङ् न्यस्यन्त्यधर्माचरणानि येन वा सम्यङ् नित्यं सत्कर्मस्वास्त उपविशति स्थिरीभवति येन स संन्यासः, संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी ॥

कालः—प्रथम जो वानप्रस्थ की आदि में कह आये हैं कि ब्रह्मचर्य पूरा कर के गृहस्थ, और गृहस्थ हो के वनस्थ, वनस्थ हो के संन्यासी होवे, यह क्रम संन्यास अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करता २ वृद्धावस्था में जो संन्यास लेना है उसी को क्रम संन्यास कहते हैं ॥

द्वितीय प्रकार ॥

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ॥

यह ब्राह्मण ग्रन्थ का वाक्य है—

अर्थः—जिस दिन दृढ वैराग्य प्राप्त होवे उसी दिन चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो अथवा वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान न करके गृहाश्रम से ही संन्यासाश्रम ग्रहण करे क्योंकि संन्यास में दृढ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होना ही मुख्य कारण है ॥

तृतीय प्रकार ॥

ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् ॥

यह भी ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है। यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान विज्ञान को प्राप्त हो कर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् उठ जावे पक्षपात रहित हो कर सब के उपकार करने की इच्छा होवे और जिस को दृढ़ निश्चय हो जावे कि मैं मरण पर्यन्त यथावत् संन्यास धर्म का निर्वाह कर सकूंगा तो वह न गृहाश्रम करे न वानप्रस्थाश्रम, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण कर ही के संन्यासाश्रम को ग्रहण कर लेवे ॥

अत्र वेदप्रमाणानि

शर्य्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा। बलन्दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥ आपवस्व दिशांपत आर्जीकात् सोम मीढ्वः। ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

अर्थः—मैं ईश्वर संन्यास लेने हारे तुझ मनुष्य को उपदेश करता हूं कि जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाश करने हारा (इन्द्रः) सूर्य (शर्य्यणावति) हिंसनीय पदार्थों से युक्त भूमितल में स्थित (सोमम्) रस को पीता है वैसे संन्यास लेने वाला पुरुष उत्तम मूल फलों के रस को (पिबतु) पीवे और (आत्मनि) अपने आत्मा में (महत्) बड़े (वीर्यम्) सामर्थ्य को (करिष्यन्) करूंगा ऐसी इच्छा करता हुआ (बलं, दधानः) दिव्य बल को धारण करता हुआ (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये हे (इन्दो) चंद्रमा के तुल्य सब को आनन्द करने हारे पूर्ण विद्वान् तू संन्यास ले के सब पर (परि, स्रव) सत्योपदेश की वृष्टि कर ॥१॥ हे (सोम) सौम्यगुणसंपन्न (मीढ्वः) सत्य से सब के अन्तःकरण को सींचने हारे (दिशांपते) सब दिशाओं में स्थित मनुष्यों को सच्चा ज्ञान दे के पालन करने हारे (इन्दो) शमादि गुण युक्त संन्यासिन् तू (ऋतवाकेन) यथार्थ बोलने (सत्येन) सत्य भाषण करने से (श्रद्धया) सत्य के धारण में सच्ची प्रीति और (तपसा) प्राणायाम योगाभ्यास से (आर्जीकात्) सरलता से (सुतः) निष्पन्न होता हुआ तू अपने शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि को (आ, पवस्व) पवित्र कर (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त परमात्मा के लिये (परि, स्रव) सब ओर से गमन कर ॥ २ ॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन्। श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

अर्थः—हे (ऋतद्युम्न) सत्य धन और सत्य कीर्त्ति वाले यतिवर (ऋतं वदन्) पक्षपात छोड़ के यथार्थ बोलता हुआ हे (सत्यकर्मन्) सत्य वेदोक्त कर्म वाले संन्यासिन् (सत्यं,वदन्)सत्य बोलता हुआ (श्रद्धाम्) सत्य धारण में

प्रीति करने को (वदन्) उपदेश करता हुआ (सोम) सौम्य गुण संपन्न (राजन्) सब ओर से प्रकाशयुक्त आत्मा वाले (सोम) योगैश्वर्ययुक्त (इन्दो) सब को आनन्ददायक संन्यासिन् तू (धात्रा) सकल विश्व के धारण करने हारे परमात्मा से योगाभ्यास करके (परिष्कृत) शुद्ध होता हुआ (इन्द्राय) योग से उत्पन्न हुए परमैश्वर्य की सिद्धि के लिये (परि, स्रव) यथार्थ पुरुषार्थ कर ॥३॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां३ वाचं वदन्। ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ४ ॥

अर्थः—हे (छन्दस्याम्) स्वतन्त्रतायुक्त (वाचम्) वाणी को (वदन्) कहते हुए (सोमेन) विद्या, योगाभ्यास और परमेश्वर की भक्ति से (आनन्दम्) सब के लिये आनन्द को (जनयन्) प्रगट करते हुए (इन्दो) आनन्दप्रद (पवमान) पवित्रात्मन् पवित्र करने हार संन्यासिन् (यत्र) जिस (सोमे) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा में (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने हारा विद्वान् (महीयते) महत्त्व को प्राप्त होकर सत्कार को प्राप्त होता है जैसे (ग्राव्णा) मेघ से सब जगत् को आनन्द होता है वैसे तू सब को (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य युक्त मोक्ष का आनन्द देने के लिये सब साधनों को (परिस्रव) सब प्रकार से प्राप्त करा ॥ ४ ॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ५ ॥

अर्थः—हे (पवमान) अविद्यादि क्लेशों के नाश करने हारे पवित्रस्वरूप (इन्दो) सर्वानन्ददायक परमात्मन् (यत्र) जहां तेरे स्वरूप में (अजस्रम्) निरन्तर व्यापक तेरा (ज्योतिः) तेज है (यस्मिन्) जिस (लोके) ज्ञान से देखने योग्य तुझ में (स्वः) नित्य सुख (हितम्) स्थित है (तस्मिन्) उस (अमृते) जन्म मरण और (अक्षिते) नाश से रहित (लोके) द्रष्टव्य अपने स्वरूप में आप (मा) मुझ को (इन्द्राय) परमैश्वर्यप्राप्ति के लिये (धेहि) कृपा से धारण कीजिये और मुझ पर माता के समान कृपाभाव से (परिस्रव) आनन्द की वर्षा कीजिये ॥ ५ ॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः। यत्रामूर्यह्वतीराप-
स्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ६ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) आनन्दप्रद परमात्मन् (यत्र) जिस तुझ में (वैवस्वतः) सूर्य का प्रकाश (राजा) प्रकाशमान हो रहा है (यत्र) जिस आप में (दिवः) बिजुली अथवा बुरी कामना की (अवरोधनम्) रुकावट है (यत्र) जिस आप में (अमूः) वे कारण रूप (यह्वतीः) बड़े व्यापक आकाशस्थ (आपः) प्राणपद वायु हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (परिस्रव) आर्द्रभाव से आप मुझ को प्राप्त हूजिये ॥ ६ ॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः। लोका यत्र ज्योति-
ष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ७ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) परमात्मन् (यत्र) जिस आप में (अनुकामम्) इच्छा के अनुकूल स्वतन्त्र (चरणम्) विहरना है (यत्र) जिस (त्रिनाके) त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख से रहित (त्रिदिवे) तीन सूर्य विद्युत् और भौम्य अग्नि से प्रकाशित सुखस्वरूप में (दिवः) कामना करने योग्य शुद्ध कामना वाले (लोकाः) यथार्थ ज्ञानयुक्त (ज्योतिष्मन्तः) शुद्ध विज्ञान युक्त मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष विचरते हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये और (इन्द्राय) उस परम आनन्दैश्वर्य के लिये (परिस्रव) कृपा से प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्। स्वधा च यत्र
तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ८ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) निष्कामानन्दप्रद सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन् (यत्र) जिस आप में (कामाः) सब कामना (निकामाः) और अभिलाषा छूट जाती हैं (च) और (यत्र) जिस आप में (ब्रध्नस्य) सब से बड़े प्रकाशमान सूर्य का (विष्टपम्) विशिष्टसुख (च) और (यत्र) जिस आप में (स्वधा) अपना ही धारण (च) और जिस आप में (तृप्तिः) पूर्ण तृप्ति है (तत्र)

उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) प्राप्तमुक्तिवाला (कृधि) कीजिये तथा (इन्द्राय) सब दुःख विदारण के लिये आप मुझ पर (परिस्रव) करुणावृत्ति कीजिये ॥ ८ ॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते । कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ९ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर (यत्र) जिस आप में (आनन्दाः) सम्पूर्ण समृद्धि (च) और (मोदाः) सम्पूर्ण हर्ष (मुदः) सम्पूर्ण प्रसन्नता (च) और (प्रमुदः) प्रकृष्ट प्रसन्नता (आसते) स्थित हैं (यत्र) जिस आप में (कामस्य) अभिलाषी पुरुष की (कामाः) सब कामना (आप्ताः) प्राप्त होती हैं (तत्र) उसी अपने स्वरूप में (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (माम्) मुझ को (अमृतम्) जन्म मृत्यु के दुःख से रहित मोक्षप्राप्तयुक्त कि जिस के मुक्ति के समय के मध्य में संसार में नहीं आना पड़ता उस मुक्ति की प्राप्ति वाला (कृधि) कीजिये और इसी प्रकार सब जीवों को (परिस्रव) सब ओर से प्राप्त हूजिये ॥ ९ ॥

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आगूढमासूर्यमजभर्त्तन ॥ १० ॥ ऋ० मं० १० । सू० ७२ । मं० ७ ।

अर्थः—हे (देवाः) पूर्ण विद्वान् (यतयः) संन्यासी लोगो तुम (यथा) जैसे (अत्र) इस (समुद्रे) आकाश में (गूढम्) गुप्त (आसूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सूर्यादि का प्रकाशक परमात्मा है उस को (आ, अजभर्त्तन) चारों ओर से अपने आत्माओं में धारण करो और आनन्दित होओ वैसे (यत्) जो (भुवनानि) सब भुवनस्थ गृहस्थादि मनुष्य हैं उन को सदा (अपिन्वत) विद्या और उपदेश से संयुक्त किया करो यही तुम्हारा परम धर्म है ॥ १० ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुप निषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सन्नमन्तु ॥ ११ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४१ । मं० १ ॥

अर्थः—हे विद्वानो जो (ऋषयः) वेदार्थ विद्या को और (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त (अग्रे) प्रथम (तपः) ब्रह्मचर्य रूप आश्रम को पूर्णता से सेवन तथा यथावत् स्थिरता से प्राप्त होके (भद्रम्) कल्याण की (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (दीक्षाम्) संन्यास की दीक्षा को (उपनिषेदुः) ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त होवें उन का (देवाः) विद्वान् लोग (उप, सन्नमन्तु) यथावत् सत्कार किया करें (ततः) तदनन्तर (राष्ट्रम्) राज्य (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (जातम्) उत्पन्न होवे (तत्) उस से (अस्मै) इस संन्यासाश्रम के पालन के लिये यत्न किया करें ॥ ११ ॥

अथ मनुस्मृतेश्श्लोकाः—

वनेषु तु विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत् ॥ १ ॥

अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे नियोजयेत् ॥ २ ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ ३ ॥

यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ५ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
उपेक्षकोऽसङ्कुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ६ ॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ७ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ८ ॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ९ ॥
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ १० ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ११ ॥
दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ १२ ॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ १३ ॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ १४ ॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ १५ ॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ १६ ॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिरस्यान्तरात्मनः ॥ १७ ॥
सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥

अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ १९ ॥

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निष्पृहः ।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ २० ॥

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ्शनैः शनैः ।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ २१ ॥

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ।
इदमन्विच्छतां स्वर्ग्यमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ २२ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २३ ॥

अर्थः—इस प्रकार जंगलों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् अधिक से अधिक २५ पच्चीस वर्ष अथवा न्यून से न्यून १२ वर्ष तक विहार करके आयु के चौथे भाग अर्थात् ७० वर्ष के पश्चात् सब मोहादि संगों को छोड़ कर संन्यासी हो जावे ॥१॥ विधिपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम से सब वेदों को पढ़ गृहाश्रमी होकर धर्म से पुत्रोत्पत्ति कर वानप्रस्थ में सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ करके मोक्ष में अर्थात् संन्यासाश्रम में मन को लगावे ॥ २॥ प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त प्राजापत्येष्टि(कि जिस में यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग किया जाता है) कर आहवनीय गार्हपत्य और दाक्षिणात्य संज्ञक अग्नियों को आत्मा में समारोपित कर के ब्राह्मण विद्वान् गृहाश्रम से ही संन्यास लेवे ॥ ३ ॥ जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान सत्योपदेश दे कर गृहाश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर लेता है इस ब्रह्मवादी वेदोक्त सत्योपदेशक संन्यासी को मोक्ष लोक और सब लोक लोकान्तर तेजोमय (ज्ञान से प्रकाश मय) हो जाते हैं ॥ ४ ॥ जब सब कामों को जीत लेवे और उन की अपेक्षा न रहे पवित्रात्मा और पवित्रान्तःकरण मनन शील हो जावे तभी गृहाश्रम से निकल कर संन्यासाश्रम का ग्रहण करे अथवा ब्रह्मचर्य्य ही से संन्यास का ग्रहण कर लेवे ॥ ५ ॥ वह संन्यासी

(अनग्निः*) आहवनीयादि अग्नियों से रहित और कहीं अपना स्वाभिमत घर भी न बांधे और अन्न वस्त्रादि के लिये ग्राम का आश्रय लेवे बुरे मनुष्यों की उपेक्षा करता और स्थिर बुद्धि मननशील हो कर परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरे ॥ ६ ॥ न तो अपने जीवन में आनन्द और न अपने मृत्यु में दुःख माने किन्तु जैसे क्षुद्र भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा की बाट देखता रहता है वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे ॥ ७ ॥ चलते समय आगे २ देख के पग धरे सदा वस्त्र से छान कर जल पीवे सब से सत्य वाणी बोले अर्थात् सत्योपदेश ही किया करे जो कुछ व्यवहार करे वह सब मन की पवित्रता से आचरण करे ॥ ८ ॥ इस संसार में आत्मनिष्ठा में स्थित सर्वथा अपेक्षारहित मांस मद्यादि का त्यागी आत्मा के सहाय से ही सुखार्थी हो कर विचरा करे और सब को सत्योपदेश करता रहे ॥ ९ ॥ सब शिर के बाल डाढ़ी मूंछ और नखों को समय२ छेदन कराता रहे पात्री दण्डी और कुसुंभ के रंगे हुए† वस्त्रों का धारण किया करे सब भूत प्राणीमात्र को पीड़ा न देता हुआ दृढ़ात्मा हो कर नित्य विचरा करे ॥१०॥ जो संन्यासी बुरे कामों से इन्द्रियों के निरोध राग द्वेषादि दोषों के क्षय और निर्वैरता से सब प्राणियों का कल्याण करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ यदि संन्यासी को मूर्ख संसारी लोग निन्दा आदि से दूषित वा अपमान भी करें तथापि धर्म ही का आचरण करे ऐसे ही अन्य ब्रह्मचर्याश्रमादि के मनुष्यों को करना उचित है सब प्राणियों में पक्षपात रहित होकर सम बुद्धि रक्खे इत्यादि उत्तम काम करने ही के लिये संन्यासाश्रम का विधि है किन्तु केवल दण्डादि चिह्न धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है ॥ १२ ॥ यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल जल को शुद्ध करने वाला है तथापि उस के नामग्रहण मात्र से जल शुद्ध नहीं होता किन्तु उस को ले पीस जल में डालने ही से उस मनुष्य का जल शुद्ध होता है वैसे नाम मात्र आश्रम से कुछ भी नहीं होता किन्तु अपने २ आश्रम के धर्म युक्त कर्म करने ही से आश्रम धारण सफल होता है अन्यथा नहीं ॥ १३ ॥ इस पवित्र आश्रम को सफल करने के लिये संन्यासी पुरुष विधिवत् योग शास्त्र की रीति से

---

* इसी पद से भ्रान्ति में पड़ के संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि को नहीं छूते यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया यहां आहवनीयादि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है स्पर्श वा दाहकर्म छोड़ना नहीं है ।   † अथवा गेरू से रंगे हुए वस्त्रों को पहिने ।

सात व्याहृतियों के पूर्व सात प्रणव लगा के जैसा कि पृष्ठ १५९ में प्राणायाम का मन्त्र लिखा है उस को मन से जपता हुआ तीन भी प्राणायाम करे तो जानो अत्युत्कृष्ट तप करता है ॥१४॥ क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल छूट जाते हैं वैसे ही प्राण के निग्रह से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥ इस लिये संन्यासी लोग प्राणायामों से दोषों को, धारणाओं से अन्तः-करण के मैल को, प्रत्याहार से संग से हुए दोषों और ध्यान से अविद्या पक्षपात आदि अनीश्वरता के दोषों को छुड़ा के पक्षपातरहित आदि ईश्वर के गुणों को धारण कर सब दोषों को भस्म करदेवे ॥१६॥ बड़े छोटे प्राणी और अप्राणियों में जो अशुद्धात्माओं से देखने के योग्य नहीं है उस अन्तर्यामी परमात्मा की गति अर्थात् प्राप्ति को ध्यान योग से ही संन्यासी देखा करे ॥ १७ ॥ जो संन्यासी यथार्थ ज्ञान वा षड्दर्शनों से युक्त है वह दुष्ट कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान विद्या योगाभ्यास सत्सङ्ग धर्मानुष्ठान वा षड्दर्शनों से रहित विज्ञान हीन हो कर संन्यास लेता है वह संन्यास पदवी और मोक्ष को प्राप्त न हो कर जन्ममरणरूप संसार को प्राप्त होता है और ऐसे मूर्ख अधर्मी को संन्यास का लेना व्यर्थ और धिक्कार देने के योग्य है ॥ १८ ॥ और जो निर्वैर इन्द्रियों के विषयों के बन्धन से पृथक् वैदिक कर्माचरणों और प्राणायाम सत्यभाषणादि उत्तम उग्र कर्मों से सहित संन्यासी लोग होते हैं वे इसी जन्म इसी वर्तमान समय में परमेश्वर की प्राप्तिरूप पद को प्राप्त होते हैं उन का संन्यास लेना सफल और धन्यवाद के योग्य है ॥१९॥ जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भाव से निस्पृह होता है तभी इस लोक इस जन्म और मरण पा कर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त हो के निरन्तर * सुख को प्राप्त होता है ॥२०॥ इस विधि से धीरे २ सब संग से हुए दोषों को छोड़ के सब हर्ष शोकादि द्वन्द्वों से विशेष कर निर्मुक्त हो के विद्वान् संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है ॥२१॥ और जो विविदिषा अर्थात् जानने की इच्छा करके गौण संन्यास लेवे वह भी विद्या का अभ्यास सत्पुरुषों का संग योगाभ्यास और ओंकार का जप और उस के अर्थ परमेश्वर का विचार भी किया करे यही अज्ञानियों का शरण अर्थात् गौण संन्यासियों और यही विद्वान् संन्यासियों का यही सुख का खोज करने हार और यही अनन्त †

* निरन्तर शब्द का इतना ही अर्थ है कि मुक्ति के नियत समय के मध्य में दुःख आ कर विघ्न नहीं कर सकता ॥
† अनन्त इतना ही है कि मुक्ति सुख के समय में अन्त अर्थात् जिस का नाश न होवे ॥

सुख की इच्छा करने हारे मनुष्यों का आश्रय है ॥२२॥ इस क्रमानुसार संन्यास योग से जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य संन्यास ग्रहण करता है वह इस संसार और शरीर से सब पापों को छोड़ छुड़ा के परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥२३॥

विधिः—जो पुरुष संन्यास लेना चाहे वह जिस दिन सर्वथा प्रसन्नता हो उसी दिन नियम और व्रत अर्थात् तीन दिन तक दुग्ध पान करके उपवास और भूमि में शयन और प्राणायाम ध्यान तथा एकान्त देश में ओंकार का जप किया करे और पृष्ठ १४—१६ में लि० सभामंडप, वेदी, समिधा, घृतादि साकल्य, सामग्री, एक दिन पूर्व कर रखनी पश्चात् जिस चौथे दिन संन्यास लेना हो प्रहर रात्रि से उठ कर शौचस्नानादि आवश्यक कर्म करके प्राणायाम ध्यान और प्रणव का जप करता रहे सूर्योदय के समय उत्तम गृहस्थ धार्मिक विद्वानों का पृष्ठ २१ में लि० वरण कर पृष्ठ २२—२३ में लि० अग्न्याधान समिदाधान घृतप्रतपन और स्थालीपाक करके पृष्ठ ८—१४ में लि० स्वस्तिवाचन शान्तिकरण का पाठ कर पृष्ठ २५ में लि० वेदी के चारों ओर जलप्रोक्षण आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार तथा

ओं भुवनपतये स्वाहा। ओं भूतानां पतये स्वाहा। ओं प्रजापतये स्वाहा।

इन में से एक २ मन्त्र से एक २ करके ग्यारह आज्याहुति देके जो विधिपूर्वक भात बनाया हो उस में घृत सेचन करके यजमान जो कि संन्यास का लेने वाला है और दो ऋत्विज् निम्नलिखित स्वाहान्त मन्त्रों से भात का होम और शेष दो ऋत्विज् भी साथ २ घृताहुति करते जावें ॥

ओं ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञो ब्रह्मणा स्वरवोमिताः। अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः, स्वाहा ॥१॥ ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता। ब्रह्म यज्ञश्च सत्रं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः। शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥ अंहोमुचे प्रभरे मनीषा मा सुत्राम्णे सुमतिमावृणानः। इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा ॥ ३॥ अंहोमुचं वृषभं

यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्। अपां नपातमश्विना हुवे धियेन्द्रेण म इन्द्रियं दत्तमोजः स्वाहा ॥ ४ ॥ यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे। अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये, इदन्न मम ॥ ५ ॥ यत्र०। वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे। वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे, इदन्न मम ॥ ६ ॥ यत्र०। सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुस्सूर्यो दधातु मे। सूर्याय स्वाहा॥ इदं सूर्याय, इदन्न मम ॥७॥ यत्र०। चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा इदं चन्द्राय, इदन्न मम ॥ ८ ॥ यत्र०। सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा इदं सोमाय, इदन्न मम ॥ ९ ॥ यत्र०। इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे इन्द्राय, स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय, इदन्न मम ॥ १० ॥ यत्र०। आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोपतिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा ॥ इदमद्भ्यः, इदन्न मम ॥११॥ यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे। ब्रह्मणे स्वाहा॥ इदं ब्रह्मणे, इदन्न मम ॥ १२ ॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४२। ४३ ॥

ओं प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥ १ ॥ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पा मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥ २ ॥ शिरःपाणिपादपृष्ठोरूदरजंघाशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥ ३ ॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शुध्यन्ताम्।

ज्योति० ॥४॥ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ५ ॥ पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशा मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ६ ॥ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमया मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ७ ॥ विविष्ट्यै स्वाहा ॥ ८ ॥ कषोत्काय स्वाहा ॥ ९ ॥ उत्तिष्ठ पुरुष हरित लोहित पिङ्गलाक्षि देहि देहि ददापयिता मे शुध्यताम् । ज्योति० ॥ १० ॥ ओं स्वाहा मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥११॥ अव्यक्तभावैरहङ्कारैर्ज्योति० ॥१२॥ आत्मा मे शुध्यताम् । ज्योति० ॥१३॥ अन्तरात्मा मे शुध्यताम् । ज्योति० ॥१४॥ परमात्मा मे शुध्यताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा * ॥ १५ ॥

इन १५ मन्त्रों में से एक २ कर के भात की आहुति देनी पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से ३५ घृताहुति देवें ॥

ओं अग्नये स्वाहा ॥ १६ ॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥ ओं ध्रुवाय भूमाय स्वाहा ॥ १८ ॥ ओं ध्रुवक्षितये स्वाहा ॥ १९ ॥ ओं अच्युतक्षितये स्वाहा ॥२०॥ ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ २१ ॥ ओं धर्माय स्वाहा ॥ २२ ॥ ओं अधर्माय स्वाहा ॥ २३ ॥ ओं अद्भ्यः स्वाहा ॥ २४ ॥ ओं ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा ॥२५॥ ओं रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा ॥ २६ ॥ ओं गृह्याभ्यः स्वाहा ॥ २७ ॥ ओं अवसानेभ्यः

* (प्राणापान) इत्यादि से ले के (परमात्मा मे शुध्यताम्) इत्यन्त मन्त्रों से संन्यासी के लिये उपदेश है । अर्थात् जो संन्यासाश्रम ग्रहण करे वह धर्माचरण सत्योपदेश योगाभ्यास शम दम शान्ति सुशीलतादि विद्या-विज्ञानादि शुभ गुण कर्म स्वभावों से सहित हो कर परमात्मा को अपना सहायक मान कर अत्यन्त पुरुषार्थ से शरीर प्राण मन इन्द्रियादि को अशुद्ध व्यवहार से छुड़ा शुद्ध व्यवहार में चला के पक्षपात कपट अधर्म व्यवहारों को छोड़ अन्य के दोष छुड़ाने और उपदेश से छुड़ा कर स्वयं आनन्दित हो के सब मनुष्यों को आनन्द पहुंचाता रहे ।

स्वाहा ॥ २८ ॥ ओं अवसानपतिभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ ओं सर्वभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ ओं कामाय स्वाहा ॥ ३१ ॥ ओं अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३२ ॥ ओं पृथिव्यै स्वाहा ॥ ३३ ॥ ओं दिवे स्वाहा ॥ ३४ ॥ ओं सूर्याय स्वाहा ॥ ३५ ॥ ओं चन्द्रमसे स्वाहा ॥ ३६ ॥ ओं नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥ ३७ ॥ ओं इन्द्राय स्वाहा ॥ ३८ ॥ ओं बृहस्पतये स्वाहा ॥ ३९ ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ४० ॥ ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ४१ ॥ ओं देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥ ओं परमेष्ठिने स्वाहा ॥ ४३ ॥ ओं तद् ब्रह्म ॥ ४४ ॥ ओं तद्वायुः ॥ ४५ ॥ ओं तदात्मा ॥ ४६ ॥ ओं तत्सत्यम् ॥ ४७ ॥ ओं तत्सर्वम् ॥ ४८ ॥ ओं तत्पुरोर्नमः ॥ ४९ ॥ अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वꣳ रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्म। त्वं प्रजापतिः। त्वं तदाप आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरों स्वाहा * ॥ ५० ॥

इन ५० मन्त्रों से आज्याहुति दे के तदनन्तर संन्यास लेने वाला है वह पांच वा छः केशों को छोड़ कर पृष्ठ (६१—६२) में लि० डाढी मूंछ केश लोमों का छेदन अर्थात् क्षौर करा के यथावत् स्नान करे तदनन्तर संन्यास लेने वाला पुरुष अपने शिर पर पुरुषसूक्त के मन्त्रों से १०८ एक सौ आठ वार अभिषेक करे पुनः पृष्ठ २१ में लि० आचमन और प्राणायाम करके हाथ जोड़ वेदी के सामने नेत्रोन्मीलन कर मन से ॥

ओं ब्रह्मणे नमः। ओं इन्द्राय नमः। ओं सूर्याय नमः। ओं सोमाय नमः। ओं आत्मने नमः। ओं अन्तरात्मने नमः।

इन छः मन्त्रों को जप के—

* ये सब प्राणापानव्यान० आदि मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक दशम प्रपाठक अनुवाक ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६६ । ६७ । ६८ के हैं ॥

ओं आत्मने स्वाहा । ओं अन्तरात्मने स्वाहा । ओं परमात्मने स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

इन ४ चार मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति दे कर कार्यकर्त्ता संन्यास ग्रहण करने वाला पुरुष पृ० ११० में लि० मधुपर्क की क्रिया करे तदनन्तर प्राणायाम करके:—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् । ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि। ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्। ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

इन मन्त्रों को मन से जपे ॥

ओं अग्नये स्वाहा । ओं भूः प्रजापतये स्वाहा । ओं इन्द्राय स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा । ओं प्राणाय स्वाहा । ओं अपानाय स्वाहा। ओं व्यानाय स्वाहा। ओं उदानाय स्वाहा। ओं समानाय स्वाहा।

इन मन्त्रों से वेदी में आज्याहुति देके

ओं भूः स्वाहा ।

इस मन्त्र से पूर्णाहुति करके

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्चोत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति * । श० कां० १४ ।

पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया परित्यक्ता मत्तः सर्वभूतेभ्योऽभमयस्तु स्वाहा ॥

इस वाक्य को बोल के सब के सामने जल को भूमि में छोड़ देवे । पीछे नाभिमात्र जल में पूर्वाभिमुख खड़ा रह कर

* पुत्रादि के मोह, वित्तादि पदार्थों के मोह और लोकस्थ प्रतिष्ठा की इच्छा से मन को हटा कर परमात्मा में आत्मा को दृढ़ करके जो भिक्षाचरण करते हैं वे ही सब को सत्योपदेश से अभय दान देते हैं अर्थात् दहने हाथ में जल ले के मैं ने आज से पुत्रादि का तथा वित्त का मोह और लोक में प्रतिष्ठा की इच्छा करने का त्याग कर दिया और मुझ से सब भूत प्राणीमात्र को अभय प्राप्त होवे यह मेरी सत्य वाणी है ।

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् । ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि । ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ओं भूर्भुवःस्वः सावित्रीं प्रविशामि परो रजसे सावदोम् ॥

इस का मन से जप करके प्रणवार्थ परमात्मा का ध्यान करके पूर्वोक्त (पुत्रैषणायाश्च०) इस समग्र कण्डिका को बोल के प्रैष्य मन्त्रोच्चारण करे

ओं भूः संन्यस्तं मया । ओं भुवः संन्यस्तं मया । ओं स्वः संन्यस्तं मया ।

इस मन्त्र का मन से उच्चारण करे तत्पश्चात् जल से अंजली भर पूर्वाभिमुख हो कर संन्यास लेने वाला

ओं अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ॥

इस मन्त्र से दोनों हाथ की अंजली को पूर्व दिशा में छोड़ देवे ॥

येना॑ स॒हस्रं॒ वह॑सि॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम् । तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ वह॒ स्वर्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे* ॥ १ ॥ अथर्व० कां० ९ । सू० ५ । मं० १७ ॥

और इसी पर स्मृति है

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ १ ॥

इस श्लोक का अर्थ पहिले लिख दिया है ॥

इस के पश्चात् मौन करके शिखा के लिये जो पांच वा सात केश रक्खे थे उन को एक २ उखाड़ और यज्ञोपवीत उतार कर हाथ में ले जल की अंजली भर–

ओं आपो वै सर्वा देवताः स्वाहा ॥ ओं भूः स्वाहा ॥

इन मन्त्रों से शिखा के बाल और यज्ञोपवीत सहित जलांजली को जल में होम कर देवे उस के पश्चात् आचार्य शिष्य को जल से निकाल के काषाय वस्त्र की

* हे (अग्ने) विद्वन् (येन) जिस से (सहस्रम्) सब संसार का पालन धारण करता है और (येन) जिस से तू (सर्ववेदसम्) गृहाश्रमस्थ पदार्थमात्र यज्ञोपवीत और शिखा आदि को (वहसि) धारण करता है उन को छोड़ (तेन) उस त्याग से (नः) हम को (इमम्) यह संन्यासरूप (स्वाहा) सुख देने हारे (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों में (गन्तवे) जाने को (वह) प्राप्त हो ।

कौपीन कटिवस्त्र उपवस्त्र अङ्गोछा प्रीतिपूर्वक देवे और पृष्ठ ८३ में लि० (योमे दंड:०)इस मन्त्रसे दंडधारण करके आत्मा में आहवनीयादि अग्नियों का आरोपण करे॥

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् (१)॥१॥ सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः(२)॥२॥यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रति पश्यति देवयजनं प्रेक्षते (३) ॥ ३ ॥ यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्रणयति (४) ॥४॥ या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः (५)॥ ५ ॥ यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति (६) ॥ ६ ॥ यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् (७) ॥७॥ तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति (८) ॥८॥

(१) (यः) जो पुरुष (प्रत्यक्षम्) साक्षात्कारता से (ब्रह्म) परमात्मा को (विद्यात्) जाने (यस्य) जिस के (परूंषि) कठोर स्वभाव आदि (संभारा) होम करने के साकल्य और (यस्य) जिस के (ऋचः) यथार्थ सत्य भाषण सत्योपदेश और ऋग्वेद ही (अनूक्यम्) अनुकूलता से कहने के योग्य वचन है वही संन्यास ग्रहण करे ॥१॥

(२) (यस्य) जिस के (सामानि) सामवेद (लोमानि) लोम के समान (यजुः) यजुर्वेद जिस के (हृदयम्) हृदय के समान (उच्यते) कहा जाता है (परिस्तरणम्) जो सब ओर से शास्त्र आसन आदि सामग्री (हविरित्) होम करने योग्य के समान है वह संन्यास ग्रहण करने में योग्य होता है । २ ।

(३) (वा) वा (यत्) जो (अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करने हारा (अतिथीन्) अतिथियों के प्रति (प्रतिपश्यति) देखता है वही विद्वान् संन्यासियों में (देवयजनम्) विद्वानों के यजन करने के समान (प्रेक्षते) ज्ञानदृष्टि से देखता और संन्यास लेने का अधिकारी होता है । ३ ॥

(४) और (यत्) जो संन्यासी (अभिवदति) दूसरे के साथ संवाद वा दूसरे को अभिवादन करता है वह जानो (दीक्षाम्) दीक्षा को (उपैति) प्राप्त होता है (यत्) जो (उदकम्) जल को (याचति) याचना करता है वह जानो (अपः) प्रणीता आदि में जल को (प्रणयति) डालता है ॥ ४ ॥

(५) (यज्ञे) यज्ञ में (याः, एव) जिन्ही (आपः) जलों का (प्रणीयन्ते) प्रयोग किया जाता है (ता एव) वे ही (ताः) पात्र में रक्खे जल संन्यासी की यज्ञस्थ जलक्रिया है ॥ ५ ॥

(६) संन्यासी (यत्) जो (आवसथान्) निवास का स्थान (कल्पयन्ति) कल्पना करते हैं वे (सदः) यज्ञशाला (हविर्धानान्येव) हविष् के स्थापन करने के ही पात्र (तत्) वे (कल्पयन्ति) समर्थित करते हैं ॥६॥

(७) और (यत्) जो संन्यासी लोग (उपस्तृणन्ति) बिछौने आदि करते हैं (बर्हिरेव, तत्) वह कुशापिंजूली के समान है ॥ ७ ॥

(८) और जो (तेषाम्) उन (आसन्नानाम्) समीप बैठने हारों के निकट बैठा हुआ (अतिथिः) जिस की कोई नियत तिथी न हो वह भोजनादि करता है वह (आत्मने) जानो वेदीस्थ अग्नि में होम करने के समान आत्मा में (जुहोति) आहुतियां देता है । ८ ॥

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण (१) ॥ ९ ॥ एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः (२) ॥ १० ॥ प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति (३) ॥ ११ ॥ प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति (४) ॥ १२ ॥ योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः (५) ॥ १३ ॥ इष्टं च वा एष पूर्त्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति (६) ॥ १४ ॥ अथर्व० कां० ९ । सू० ६ ॥

---

(१) और जो संन्यासी (हस्तेन) हाथ से खाता है वह जानो (स्रुचा) चमसा आदि से वेदी में आहुति देता है जैसे (यूपे) स्तम्भ में अनेक प्रकार के पशु आदि को बांधते हैं वैसे वह संन्यासी (स्रुक्कारेण) स्रुचा के समान (वषट्कारेण) होमक्रिया के तुल्य (प्राणे) प्राण में मन और इन्द्रियों को बांधता है ॥ ८ ॥

(२) (एते, वै) ये ही (ऋत्विजः) समय २ में प्राप्त होने वाले (प्रियाः, च, अप्रियाः, च) प्रिय और अप्रिय भी संन्यासी जन (यत्) जिस कारण (अतिथयः) अतिथिरूप हैं इस से गृहस्थ को (स्वर्गं, लोकम्) दर्शनीय अत्यन्त सुख को (गमयन्ति) प्राप्त कराते हैं ॥ १० ॥

(३) (एतस्य) इस संन्यासी का (प्राजापत्यः) प्रजापति परमात्मा को जानने का आश्रम धर्मानुष्ठानरूप (यज्ञः) अच्छे प्रकार करने योग्य यतिधर्म (विततः) व्यापक है अर्थात् (यः) जो इस को सर्वोपरि (उपहरति) स्वीकार करता है (वै) वही संन्यासी होता है ॥ ११ ॥

(४) (यः) जो (एषः) यह संन्यासी (प्रजापतेः) परमेश्वर के जानने रूप संन्यासाश्रम के (विक्रमान्) सत्याचारों को (अनुविक्रमते) अनुकूलता से क्रिया करता है (वै) वही सब शुभ गुणों का (उपहरति) स्वीकार करता है ॥ १२ ॥

(५) (यः) जो (अतिथीनाम्) अतिथि अर्थात् उत्तम संन्यासियों का सङ्ग है (सः) वह संन्यासी के लिये (आहवनीयः) आहवनीय अग्नि अर्थात् जिस में ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी होम करता है और (यः) जो संन्यासी का (वेश्मनि) घर में अर्थात् स्थान में निवास है (सः) वह उस के लिये (गार्हपत्यः) गृहस्थ सम्बन्धी अग्नि है और संन्यासी (यस्मिन्) जिस जाठराग्नि में अन्नादि को (पचन्ति) पकाते हैं (सः) वह (दक्षिणाग्निः) वानप्रस्थ सम्बन्धी अग्नि है इस प्रकार आत्मा में सब अग्नियों का आरोपण करे ॥ १३ ॥

(६) (यः) जो गृहस्थ (अतिथेः) संन्यासी से (पूर्वः) प्रथम (अश्नाति) भोजन करता है (एषः) यह जानो (गृहाणाम्) गृहस्थों के (इष्टम्) इष्ट सुख (च) और उस की सामग्री (पूर्त्तम्) तथा जो ऐश्वर्यादि की पूर्णता (च) और उस के साधनों का (वै) निश्चय करके (अश्नाति) भक्षण अर्थात् नाश करता है इस लिये जिस गृहस्थ के समीप अतिथि उपस्थित होवे उस को पूर्व जिमा कर पश्चात् भोजन करना उचित है ॥ १४ ॥

तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हिर्वेदः शिखा हृदयं यूपः काम आज्यं मन्युः पशुस्तपोऽग्निर्दमः शमयिता दक्षिणा वाग्घोता * प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युर्मनो ब्रह्मा श्रोत्रमग्नीत् । यावद् ध्रियते सा दीक्षा यदश्नाति तद्धविर्यत्पिबति तदस्य सोमपानम् । यद्रमते तदुपसदो यत्सञ्चरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च स प्रवर्ग्यो यन्मुखं तदाहवनीयो या व्याहृतिराहुतिर्यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति यत्सायं प्रातरत्ति तत्समिधं यत्प्रातर्मध्यन्दिनꣳ सायं च तानि सवनानि । ये अहोरात्रे ते दर्शपौर्णमासौ येऽर्द्धमासाश्च मासाश्च ते

---

* इस के आगे तैत्तिरीय आरण्यक का अर्थ करते हैं (एवम्) इस प्रकार संन्यास ग्रहण किये हुए (तस्य) उस (विदुषः) विद्वान् संन्यासी के संन्यासाश्रमरूप (यज्ञस्य) अच्छे प्रकार अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ का (यजमानः) पति (आत्मा) स्वस्वरूप है और जो ईश्वर वेद और सत्यधर्माचरण परोपकार में (श्रद्धा) सत्य का धारणरूप दृढ़ प्रीति है वह उस की (पत्नी) स्त्री है और जो संन्यासी का (शरीरम्) शरीर है वह (इध्मम्) यज्ञ के लिये इन्धन है और जो उस का (उरः) वक्षःस्थल है वह (वेदिः) कुण्ड और जो उस के शरीर पर (लोमानि) रोम हैं वे (बर्हिः) कुशा हैं और जो (वेदः) वेद और उन का शब्दार्थ सम्बन्ध जान कर आचरण करना है वह संन्यासी की (शिखा) चोटी है और जो संन्यासी का (हृदयम्) हृदय है वह (यूपः) यज्ञ का स्तम्भ है और जो इस के शरीर में (कामः) काम है वह (आज्यम्) ज्ञान अग्नि में होम करने का पदार्थ है और जो (मन्युः) संन्यासी में क्रोध है वह (पशुः) निवृत्त करने अर्थात् शरीर के मलवत् छोड़ने के योग्य है और जो संन्यासी (तपः) सत्यधर्मानुष्ठान प्राणायामादि योगाभ्यास करता है वह (अग्निः) जानो वेदी का अग्नि है जो संन्यासी (दमः) अधर्माचरण से इन्द्रियों को रोक के धर्माचरण में स्थिर रख के चलाता है वह (शमयिता) जानो दुष्टों को दण्ड देने वाला सभ्य है और जो संन्यासी की (वाक्) सत्योपदेश करने के लिये वाणी है वह जानो सब मनुष्यों को (दक्षिणा) अभय दान देना है जो संन्यासी के शरीर में (प्राणः) प्राण है वह (होता) होता के समान जो (चक्षुः) चक्षु है वह (उद्गाता) उद्गाता के तुल्य जो (मनः) मन है वह (अध्वर्युः) अध्वर्यु के समान जो (श्रोत्रम्) श्रोत्र है वह (ब्रह्मा) ब्रह्मा और (अग्नीत्) अग्नि लाने वाले के तुल्य (यावत्, ध्रियते) जितना कुछ संन्यासी धारण करता है (सा) वह (दीक्षा) दीक्षाग्रहण और (यत्) जो संन्यासी (अश्नाति) खाता है (तद्धविः) वह घृतादि साकल्य के समान (यत्, पिबति) और जो वह जल दुग्धादि पीता है (तदस्य, सोमपानम्) वह इस का सोमपान है और (यद्रमते) वह जो इधर उधर भ्रमण करता है (तदुपसदः) वह उपसद् उपसामग्री (यत्सञ्चरत्युपविशत्युत्तिष्ठते) जो वह गमन करता बैठता और उठता है (स, प्रवर्ग्यः) वह इस का प्रवर्ग्य है (यन्मुखम्) जो इस का मुख है (तदाहवनीयः) वह संन्यासी की आहवनीय अग्नि के समान (या व्याहृतिराहुतिर्यदस्य विज्ञानम्) जो संन्यासी का व्याहृति का उच्चारण करना वा जो इस का विज्ञान आहुतिरूप है (तज्जुहोति) वह जानो होम कर रहा है (यत्सायं प्रातरत्ति) संन्यासी जो सायं और प्रातःकाल भोजन करता है (तत्समिधम्) वे समिधा हैं (यत्प्रातर्मध्यन्दिनꣳ सायं च) जो संन्यासी प्रातः मध्याह्न और सायंकाल में कर्म करता है (तानि सवनानि) वे तीन सवन (ये, अहोरात्रे) जो दिन और रात्रि हैं (ते दर्शपौर्णमासौ) वे संन्यासी के पौर्णमासेष्टि और अमावास्येष्टि हैं (येऽर्धमासाश्च, मासाश्च) जो कृष्ण शुक्ल पक्ष और महीने हैं

चातुर्मास्यानि य ऋतवस्ते पशुबन्धा ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च तेऽहर्गणाः सर्ववेदसं वा एतत्सत्रं यन्मरणं तदवभृथः। एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रꣳ सत्रं य एवं विद्वानुदगयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं गत्वादित्यस्य सायुज्यं गच्छत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितॄणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः सायुज्यं सलोकतामाप्नोत्येतौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वानभिजयति तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत् । तैत्ति० प्रपा० । १० । अनु० ६४ ॥

अथ संन्यासे पुनः प्रमाणानि ॥

न्यास * इत्याहुर्मनीषिणो ब्रह्माणम् । ब्रह्मा विश्वः कतमः स्वयम्भूः प्रजापतिः संवत्सर इति । संवत्सरोऽसावादित्यो यऽ एष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा । याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति पर्जन्येनौषधिवनस्पतयः प्रजायन्त ओषधिवनस्पतिभिरन्नं भवत्यन्नेन प्राणाः प्राणैर्बलं बलेन तपस्तपसा श्रद्धा श्रद्धया मेधा मेधया मनीषा मनीषया मनो

(तेचातुर्मास्यानि) वे संन्यासी के चातुर्मास्य याग हैं (य ऋतवः) जो वसन्तादि ऋतु हैं (ते पशुबन्धः) वे भानों संन्यासी के पशुबन्ध अर्थात् ६ पशुओं का बांधना रखना है (ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च) जो संवत्सर और परिवत्सर अर्थात् वर्ष वर्षान्तर हैं (तेऽहर्गणाः) वे संन्यासी के अहर्गण दो रात्रि वा तीन रात्रि आदि के व्रत हैं जो (सर्ववेदसं वै) सर्वस्व दक्षिणा अर्थात् शिखा सूत्र यज्ञोपवीत आदि पूर्वाश्रम चिन्हों का त्याग करना है (एतत्सत्रम्) यह सब से बड़ा यज्ञ है (यन्मरणम्) जो संन्यासी का मृत्यु है (तदवभृथः) वह यज्ञान्तस्नान है (एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रꣳ सत्रम्) यही जरावस्था और मृत्यु पर्यन्त अर्थात् यावत् जीवन है तावत्सत्योपदेश योगाभ्यासादि संन्यास के धर्म का अनुष्ठान अग्निहोत्ररूप बड़ा दीर्घ यज्ञ है (य एवं विद्वानुदगयने०) जो इस प्रकार विद्वान् संन्यास ले कर विज्ञान योगाभ्यास करके शरीर छोड़ता है वह विद्वानों ही के महिमा को प्राप्त होकर स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा के संग को प्राप्त होता है और जो योग विज्ञान से रहित है सो सांसारिक दक्षिणायनरूप व्यवहार में मृत्यु को प्राप्त होता है वह पुनः २ माता पिताओं ही के महिमा को प्राप्त होकर चन्द्रलोक के समान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है और जो इन दोनों के महिमाओं को विद्वान् ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी जीत लेता है वह उस से परे परमात्मा के महिमा को प्राप्त होकर मुक्ति के समयपर्यन्त मोक्ष सुख को भोगता है ॥

* (न्यास इत्याहुर्मनीषिणः) इस अनुवाक का अर्थ सुगम है इस लिये भावार्थ कहते हैं न्यास अर्थात् जो संन्यास शब्द का अर्थ पूर्व कह आये उस रीति से जो संन्यासी होता है वह परमात्मा का उपासक है वह परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्याप्त और पूर्ण है कि जिस के प्रताप से सूर्य तपता है उस तपने से वर्षा वर्षा से ओषधी वनस्पति की उत्पत्ति उन से अन्न अन्न से प्राण प्राण से बल बल से तप अर्थात् प्राणायाम योगाभ्यास उस से श्रद्धा सत्यधारण में प्रीति उस से बुद्धि बुद्धि से विचार शक्ति उस से ज्ञान ज्ञान से शान्ति शान्ति से चेतनता चित्त से स्मृति स्मृति से पूर्वापर का ज्ञान उस से विज्ञान और विज्ञान से आत्मा को संन्यासी जानता और जनाता है

मनसा शान्तिः शान्त्या चित्तं चित्तेन स्मृतिँ स्मृत्या स्मारँ स्मारेण विज्ञानं विज्ञानेनात्मानं वेदयति तस्माद्न्नं ददन्त्सर्वाण्येतानि ददात्यन्नात् प्राणा भवन्ति भूतानाम् । प्राणैर्मनो मनसश्च विज्ञानं विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः । स वा एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवी चान्तरिक्षंच द्यौश्च दिशश्चावान्तरदिशाश्च स वै सर्वमिदं जगत् स भूतँ स भव्यं जिज्ञासक्लृप्त ऋतजा रयिष्ठाः श्रद्धा सत्यो महस्वांस्तमसोवरिष्ठात् । ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च भूयो न मृत्युमुपयाहि विद्वान् । तस्मान् न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः । वसुरण्वो विभूरसि प्राणे त्वमसि संधाता ब्रह्मंस्त्वमसि विश्वसृत्तेजोदास्त्वमस्यग्नेरसि वर्चोदास्त्वमसि सूर्यस्य द्युम्नोदास्त्वमसि चन्द्रमस उपयाम गृहीतोसि ब्रह्मणे त्वा महसे । ओमित्यात्मानं युञ्जीत । एतद्वै महोपनिषदं देवानां गुह्यम् । य एवं वेद ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद्ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत् । तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० ६३ ॥

संन्यासी का कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य ॥

दृते दृँह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १ ॥ यजु० अ० ३६ । मं० १८ ॥

इस लिये अन्नदान श्रेष्ठ जिस से प्राण बल विज्ञानादि होते हैं जो प्राणों का आत्मा जिस में यह सब जगत् ओतप्रोत व्याप्त हो रहा है वह सब जगत् का कर्त्ता वही पूर्व कल्प और उत्तर कल्प में भी जगत् को बनाता है उस के जानने की इच्छा हो उस को जान कर हे संन्यासिन् तू पुनः २ मृत्यु को प्राप्त मत हो किन्तु मुक्ति के पूर्ण सुख को प्राप्त हो इस लिये सब तपों का तप सब से पृथक् उत्तम संन्यास को कहते हैं । हे परमेश्वर जो तू सब में वास करता कृपा विभु है तू प्राण का प्राण सब का सन्धान करने हारा विश्व का स्रष्टा धर्त्ता सूर्यादि को तेजदाता है तू ही अग्नि से तेजस्वी तू ही विद्यादाता तू ही सूर्य का कर्त्ता तू ही चन्द्रमा के प्रकाश का प्रकाशक है वह सब से बड़ा पूजनीय देव है (ओं) इस मन्त्र का मन से उच्चारण करके परमात्मा में आत्मा को युक्त करे जो इस विद्वानों के ग्राह्य महोत्तम विद्या को उक्त प्रकार से जानता है वह संन्यासी परमात्मा के महिमा को प्राप्त होकर आनन्द में रहता है ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम ॥ २ ॥ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ ३ ॥ यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ४ ॥ यजु० अ० ४० । मं० १६ । ६ । ७ ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥ ५ ॥ य० । अ० ३२ । मं० ११ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ६ ॥ ऋ० । मंड० १ । सू० १६४ । मं० ३९ ॥

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् । न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥ १७ ॥ कठवल्ली ॥

अर्थः—हे (दृते) सर्वदुःखविदारक परमात्मन् तू (मा) मुझ को संन्यासमार्ग में (दृंह) बढ़ा । हे सर्वमित्र तू (मित्रस्य) सर्व सुहृद् आप्त पुरुष की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझ को सब का मित्र बना जिस से (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणिमात्र मुझ को मित्र की दृष्टि से (समीक्षन्ताम्) देखें और (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि, भूतानि) सब जीवों को (समीक्षे) देखूं इस प्रकार आप की कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग एक दूसरे को (मित्रस्य, चक्षुषा) सुहृद्भाव की दृष्टि से (समीक्षामहे) देखते रहें ॥ १ ॥ हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप सब दुःखों के दाहक (देव) सब सुखों के दाता परमेश्वर (विद्वान्) आप (राये) योग विज्ञानरूप धन की प्राप्ति के

लिये (सुपथा) वेदोक्त धर्ममार्ग से (अस्मान्) हम को (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्मों को (नय) कृपा से प्राप्त कीजिये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल पक्षपात सहित (एनः) अपराध पाप कर्म को (युयोधि) दूर रखिये और इस अधर्माचरण से हम को सदा दूर रखिये इसीलिये (ते) आप ही की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार (नमउक्तिम्) नमस्कार पूर्वक प्रशंसा को नित्य (विधेम) किया करें ॥ २ ॥ (यः) जो संन्यासी (तु) पुनः (आत्मन्नेव) आत्मा अर्थात् परमेश्वर ही में तथा अपने आत्मा के तुल्य (सर्वाणि, भूतानि) सम्पूर्ण जीव और जगतस्थ पदार्थों को (अनुपश्यति) अनुकूलता से देखता है (च) और (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणी अप्राणियों में (आत्मानम्) परमात्मा को देखता है (ततः) इस कारण वह किसी व्यवहार में (न, विचिकित्सति) संशय को प्राप्त नहीं होता अर्थात् परमेश्वर को सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी सर्वसाक्षी जान के अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणिमात्र को हानि लाभ सुखदुःखादि व्यवस्था में देखे वही उत्तम संन्यासधर्म को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ (विजानतः) विज्ञानयुक्त संन्यासी का (यस्मिन्) जिस पक्षपातरहित धर्मयुक्त संन्यास में (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणीमात्र (आत्मैव) आत्मा ही के तुल्य जानना अर्थात् जैसा अपना आत्मा अपने को प्रिय है उसी प्रकार का निश्चय (अभूत्) होता है (तत्र) उस संन्यासाश्रम में (एकत्वमनुपश्यतः) आत्मा के एकभाव को देखने वाले संन्यासी को (को,मोहः) कौनसा मोह और (कः शोकः) कौनसा शोक होता है अर्थात् न उस को किसी से कभी मोह और न शोक होता है इस लिये संन्यासी मोहशोकादि दोषों से रहित होकर सदा सब का उपकार करता रहे ॥ ४ ॥ इस प्रकार परमात्मा की स्तुति प्रार्थना और धर्म में दृढ़ निष्ठा करके जो (भूतानि) संपूर्ण पृथिव्यादि भूतों में (परीत्य) व्याप्त (लोकान्) संपूर्ण लोकों में (परीत्य) पूर्ण हो और (सर्वाः) सब (प्रदिशो, दिशश्च) दिशा और उपदिशाओं में (परीत्य) व्यापक हो के स्थित है (ऋतस्य) सत्य कारण के योग से (प्रथमजाम्) सब महत्तत्त्वादि सृष्टि को धारण करके पालन कर रहा है उस (आत्मानम्) परमात्मा को संन्यासी (आत्मना) स्वात्मा से (उपस्थाय) समीप स्थित हो कर उस में (अभिसंविवेश) प्रतिदिन समाधियोग से प्रवेश किया करे ॥ ५ ॥ हे संन्यासी लोगो (यस्मिन्) जिस (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) आकाशवत् व्यापक

(अक्षरे) नाश रहित परमात्मा में (ऋचः) ऋग्वेदादि वेद और (विश्वे) सब (देवाः) पृथिव्यादि लोक और समस्त विद्वान् (अधिनिषेदुः) स्थित हुए और होते हैं (यः) जो जन (तत्) उस व्यापक परमात्मा को (न,वेद) नहीं जानता वह (ऋचा) वेदादि शास्त्र पढ़ने से (किं करिष्यति) क्या सुख वा लाभ कर लेगा अर्थात् विद्या के विना परमेश्वर का ज्ञान कभी नहीं होता और विद्या पढ़ के भी जो परमेश्वर को नहीं जानता और न उस की आज्ञा में चलता है वह मनुष्य शरीरधारण करके निष्फल चला जाता है और (ये) जो विद्वान् लोग (तत्) उस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते,इमे,इत्) वे ये ही उस परमात्मा में (समासते) अच्छे प्रकार समाधियोग से स्थिर होते हैं ॥६॥ (समाधिनिर्धूतमलस्य) समाधियोग से निर्मल (चेतसः) चित्त के सम्बन्ध से (आत्मनि) परमात्मा में (निवेशितस्य) निश्चल प्रवेश कराये हुए जीव को (यत्) जो (सुखम्) सुख (भवेत्) होवे वह (गिरा) वाणी से (वर्णयितुम् , न, शक्यते) कहा नहीं जा सकता क्योंकि (तदा) तब वह समाधि में स्वयं स्थित जीवात्मा (तत्) उस ब्रह्म को (अन्तःकरणेन) शुद्ध अन्तःकरण से (गृह्यते) ग्रहण करता है वह वर्णन करने में पूर्णरीति से कभी नहीं आ सकता इसलिये संन्यासी लोग परमात्मा में स्थित रहें और उस की आज्ञा अर्थात् पक्षपात रहित न्याय धर्म में स्थित हो कर सत्योपदेशसत्यविद्या के प्रचार से सब मनुष्यों को सुख पहुंचाता रहे ॥

संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १ ॥
यमान् सेवेत सततं न नियमान्केवलान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥ २ ॥

अर्थः—संन्यासी जगत् के सन्मान से विष के तुल्य डरता रहे और अमृत के समान अपमान की चांहना करता रहे क्योंकि जो अपमान से डरता और मान की इच्छा करता है वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित होजाता है इस लिये चाहे निन्दा, चाहे प्रशंसा, चाहे मान्य,चाहे अपमान,चाहे जीना, चाहे मृत्यु, चाहे हानि, चाहे लाभ हो, चाहे कोई प्रीति करे, चाहे वैर बांधे, चाहे अन्न पान वस्त्र उत्तम स्थान न मिले वा मिले, चाहे शीत उष्ण कितना

हीं क्यों न हो इत्यादि सब का सहन करे और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता रहे इस से परे उत्तम धर्म दूसरे किसी को न माने परमेश्वर से भिन्न किसी की उपासना न करे न वेद विरुद्ध कुछ माने परमेश्वर के स्थान में सूक्ष्म वा स्थूल तथा जड़ और जीव को भी कभी न माने आप सदा परमेश्वर को अपना स्वामी माने और आप सेवक बना रहे वैसा ही उपदेश अन्य को भी किया करे जिस २ कर्म से गृहस्थों की उन्नति हो वा माता पिता पुत्र स्त्री पति बन्धु बहिन मित्र पड़ोसी नौकर बड़े और छोटों में विरोध छूट कर प्रेम बढ़े उस २ का उपदेश करे जो वेद से विरुद्ध मतमतान्तर के ग्रंथ बायबिल कुरान पुरान मिथ्याभिलाप तथा काव्यालङ्कार कि जिन के पढ़ने सुनने से मनुष्य विषयी और पतित हो जाते हैं उन सब का निषेध करता रहे विद्वानों और परमेश्वर से भिन्न न किसी को देव, तथा विद्या, योगाभ्यास, सत्संग और सत्यभाषणादि से भिन्न न किसी को तीर्थ और विद्वानों की मूर्त्तियों से भिन्न पाषाणादि मूर्त्तियों को न माने, न मनवावे वैसे ही गृहस्थों को माता पिता आचार्य अतिथि स्त्री के लिये विवाहित पुरुष और पुरुष के लिये विवाहित स्त्री की मूर्त्ति से भिन्न किसी की मूर्त्ति को पूज्य न समझावे किन्तु वैदिकमत की उन्नति और वेदविरुद्ध पाखंडमतों के खंडन करने में सदा तत्पर रहे वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और तद्विरुद्ध ग्रन्थों वा मतों में अश्रद्धा किया कराया करे आप शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त हो कर सब को इसी प्रकार के करने में प्रयत्न किया करे और जो पूर्वोक्त उपदेश लिखे हैं उन २ अपने संन्यासाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों को किया करे खंडनीय कर्मों का खंडन करना कभी न छोड़े आसुर अर्थात् अपने को ईश्वर ब्रह्म मानने वालों का भी यथावत् खंडन करता रहे परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव और न्याय आदि गुणों का प्रकाश करता रहे इस प्रकार कर्म करता हुआ स्वयं आनन्द में रह कर सब को आनन्द में रक्खे, सर्वदा (अहिंसा) निर्वैरता (सत्यम्) सत्य बोलना सत्य मानना सत्य करना (अस्तेयम्) मन कर्म वचन से अन्याय करके परपदार्थ का ग्रहण न करना चाहिये न किसी को करने का उपदेश करे (ब्रह्मचर्यम्) सदा जितेन्द्रिय होकर अष्टविध मैथुन का त्याग रख के वीर्य की रक्षा और उन्नति करके चिरंजीवि हो कर सब का उपकार करता रहे (अपरिग्रहः) अभिमानादि दोष रहित किसी संसार के धनादि पदार्थों में मोहित हो कर कभी न फंसे इन ५

पांच यमों का सेवन सदा किया करे और इन के साथ ५ पांच नियम अर्थात् (शौच) बाहर भीतर से पवित्र रहना (सन्तोष) पुरुषार्थ करते जाना और हानि लाभ में प्रसन्न और अप्रसन्न न होना (तपः) सदा पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म का सेवन प्राणायामादि योगाभ्यास करना (स्वाध्याय) सदा प्रणव का जप अर्थात् मन में चिन्तन और उस के अर्थ ईश्वर का विचार करते रहना (ईश्वरप्रणिधान) अर्थात् अपने आत्मा को वेदोक्त परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित करके परमानन्द परमेश्वर के सुख को जीता हुआ भोग कर शरीर छोड़ के सर्वानन्दयुक्त मोक्ष को प्राप्त होना संन्यासियों के मुख्यकर्म हैं। हे जगदीश्वर सर्वशक्तिमन् सर्वान्तर्यामिन् दयालो न्यायकारिन् सच्चिदानन्दानन्त नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव अजर अमर पवित्र परमात्मन् आप अपनी कृपा से संन्यासियों को पूर्वोक्त कर्मों में प्रवृत्त रख के परम मुक्ति सुख को प्राप्त कराते रहिये॥

इति संन्याससंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथान्त्येष्टिकर्मविधिं वक्ष्यामः ॥

अन्त्येष्टि कर्म उस को कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है जिस के आगे उस शरीर के लिये कोई भी अन्य संस्कार नहीं है इसी को नरमेध पुरुषमेध नरयाग पुरुषयाग भी कहते हैं ॥

भस्मान्तꣳ शरीरम् ॥ य० अ० ४० । मं० १५ ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ मनु० ॥

अर्थः—इस शरीर का संस्कार (भस्मान्तम्) अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है ॥ १ ॥ शरीर का आरम्भ ऋतुदान और अन्त में श्मशान अर्थात् मृतक कर्म है ॥ २ ॥ (प्रश्न) जो गरुड़पुराण आदि में दशगात्र एकादशाह द्वादशाह सपिंडी कर्म मासिक वार्षिक गयाश्राद्ध आदि क्रिया लिखी हैं क्या ये सब असत्य हैं (उत्तर) हां अवश्य मिथ्या हैं क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है इसलिये अकर्त्तव्य हैं और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न इन जीते हुए सम्बन्धियों का, वह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है (प्रश्न) मरण के पीछे जीव कहां जाता है (उत्तर) यमालय को (प्रश्न) यमालय किस को कहते हैं (उत्तर) वाय्वालय को (प्रश्न) वाय्वालय किस को कहते हैं (उत्तर) अन्तरिक्ष को जो कि यह पोल है (प्रश्न) क्या ! गरुड़पुराण आदि में यमलोक लिखा है वह झूठा है (उत्तर) अवश्य मिथ्या है (प्रश्न) पुनः संसार क्यों मानता है (उत्तर) वेद के अज्ञान और उपदेश के न होने से जो यम की कथा लिख रक्खी है वह सब मिथ्या है क्योंकि यम इतने पदार्थों का नाम है ॥

षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति। ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० १५॥

शकेम वाजिनो यमम् । ऋ० मं० २ । सू० ५ । मं० १॥

यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरं-कृतः । ऋ० मं० १० । सू० १४ । मं० १३ ॥

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः । य० अ० ८ । मं० ५७ ॥

वाजिनं यमम् । ऋ० मं० ८ । सू० २४ । मं० २२ ॥

यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० ४६ ॥

अर्थः—यहां ऋतुओं का यम नाम ॥ १ ॥ यहां परमेश्वर का नाम ॥ २ ॥ यहां अग्नि का नाम ॥ ३ ॥ यहां वायु, विद्युत्, सूर्य के यम नाम हैं ॥ ४ ॥ यहां भी वेग वाला होने से वायु का नाम यम है ॥ ५ ॥ यहां परमेश्वर का नाम यम है। इत्यादि पदार्थों का नाम यम है इस लिये पुराण आदि की सब कल्पना झूठी हैं ॥ ६ ॥

विधिः—संस्थिते भूमिभागं खानयेद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि दक्षिणापरस्यां वा ॥१॥ दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग् दक्षिणाप्रवणमित्येके ॥ २ ॥ यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदायामम् ॥ ३ ॥ वितस्त्यर्वाक् ॥ ४ ॥ केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्तं पुरस्तात् ॥ ५ ॥ द्विगुल्फं बर्हिराज्यं च ॥ ६ ॥ दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत् पित्र्यं पृषदाज्यम् ॥७॥ अथैतां दिशमग्नीन्नयन्ति यज्ञपात्राणि च ॥ ८ ॥

अर्थः—जब कोई मर जावे तब यदि पुरुष हो तो पुरुष और स्त्री हो तो स्त्रियां उसको स्नान करावें चन्दनादि सुगन्ध लेपन और नवीनवस्त्रधारण करावें जितना उस के शरीर का भार हो उतना घृत यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक लेवें और जो महादरिद्र भिक्षुक हो कि जिस के पास कुछ भी नहीं है उस को कोई श्रीमान् वा पंच बन के आध मन से कम घी न देवें और श्रीमान् लोग शरीर के बराबर तोल के चन्दन सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केसर एक २ मण घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और घृत में चन्दन का चूरा भी यथाशक्ति डाल कपूर पलाश आदि के पूर्ण काष्ठ शरीर के भार से

दूनी सामग्री श्मशान में पहुंचावे तत्पश्चात् मृतक को वहां श्मशान में ले जाय यदि प्राचीन वेदी बनी हुई न हो तो नवीन वेदी भूमि में खोदे वह श्मशान का स्थान बस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैर्ऋत्य कोण में हो वहां भूमि को खोदे मृतक के पग दक्षिण नैर्ऋत्य अथवा आग्नेय कोण में रहें शिर उत्तर ईशान वा वायव्य कोण में रहे ॥ १ ॥ मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊंचा रहे ॥ २ ॥ उस वेदी का परिमाण पुरुष खड़ा हो कर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लंबी और दोनों हाथों को लंबे उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे ॥ ३ ॥ और नीचे आध हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे उस वेदी में थोड़ा २ जल छिटकावे यदि गोमय उपस्थित हो तो लेपन भी कर दे उस में नीचे से आधी वेदी तक लकड़ियां चिने जैसे कि भित्ती में ईंटें चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमा कर लकड़ियां धरे लकड़ियों के बीच में थोड़ा २ कपूर थोड़ी २ दूर पर रक्खे उस के ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे अर्थात् चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे और पश्चात् चारों ओर और ऊपर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियां चिने जब तक यह क्रिया होवे तब तक अलग चूल्हा बना, अग्नि जला, घृत तपा और छान कर पात्रों में रक्खे उस में कस्तूरी आदि सब पदार्थ मिलावे लंबी२ लकड़ियों में चार चमसों को चाहे वे लकड़ी के हों वा चांदी सोने के अथवा लोहे के हों जिस चमसा में एक छटांक भर से अधिक और आधी छटांक भर से न्यून घृत न आवे खूब दृढ़ बंधनों से डंडों के साथ बांधे पश्चात् घृत का दीपक करके कपूर में लगा कर शिर से आरम्भ कर पाद पर्यन्त मध्य २ में अग्निप्रवेश करावे अग्निप्रवेश कराके—

ओं अग्नये स्वाहा । ओं सोमाय स्वाहा । ओं लोकाय स्वाहा ।
ओं अनुमतये स्वाहा । ओं स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ।

इन पांच मन्त्रों से आहुतियां देके अग्नि को प्रदीप्त होने देवे तत्पश्चात् चार मनुष्य पृथक् २ खड़े रह कर वेदों के मन्त्रों से आहुति देते जांय जहां स्वाहा आवे वहां आहुति छोड़ देवे ॥

अथ वेदमन्त्राः ॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः । यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकं स्वाहा ॥२॥ अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः। आयुर्वसान उपवेतु शेषः संगच्छतां तन्वा जातवेदः स्वाहा ॥ ३ ॥ अग्नेर्वर्म परिगोभिर्व्ययस्व सम्प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च । नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते स्वाहा ॥ ४ ॥ यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः । कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा स्वाहा ॥ ५ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १६ । मं० ३ । ४ । ५ । ७ । १३ ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् । वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य स्वाहा ॥६॥ यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनुस्वाः स्वाहा ॥७॥ मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः । यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति स्वाहा ॥८॥ इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व स्वाहा ॥ ९ ॥ अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्यानिषद्य स्वाहा

॥ १० ॥ प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः। उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा ॥ ११ ॥ संगच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्। हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा॥१२॥ अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्। अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै स्वाहा ॥१३॥ यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः स्वाहा॥ १४॥ यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत। स नो देवेष्वायमद्दीर्घमायुः प्रजीवसे स्वाहा ॥१५॥ यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन। इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥ ऋ० मंड० १०। सू० १४ ॥ कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान्। हिरण्यरूपं जनिता जजान स्वाहा ॥१७॥ ऋ० मं० १०। सू० २०। मं० ९ ॥

इन ऋग्वेद के मन्त्रों से चारों जने १७ सत्रह २ आज्याहुति दे कर निम्नलिखित मन्त्रों से उसी प्रकार आहुति देवें ॥

प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः स्वाहा ॥१॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥२॥ अग्नये स्वाहा ॥३॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥४॥ वायवे स्वाहा॥५॥ दिवे स्वाहा ॥ ६ ॥ सूर्याय स्वाहा ॥ ७ ॥ दिग्भ्यः स्वाहा ॥८॥ चन्द्राय स्वाहा ॥९॥ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥ अद्भ्यः स्वाहा ॥११॥ वरुणाय स्वाहा॥१२॥ नाभ्यै स्वाहा॥१३॥ पूताय स्वाहा ॥१४॥ वाचे स्वाहा॥१५॥ प्राणाय स्वाहा॥१६॥ प्राणाय स्वाहा ॥ १७ ॥ चक्षुषे स्वाहा ॥१८॥ चक्षुषे स्वाहा॥ १९॥ श्रोत्राय

स्वाहा ॥२०॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥२१॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥२२॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥ त्वचे स्वाहा ॥ २४ ॥ त्वचे स्वाहा ॥ २५ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २६ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥२७॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ मा॑सेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ मा॑सेभ्यः स्वाहा ॥ ३१ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३२ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३३ ॥ अस्थभ्यः स्वाहा ॥३४॥ अस्थभ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥३६॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३७ ॥ रेतसे स्वाहा ॥ ३८ ॥ पायवे स्वाहा ॥३९॥ आयासाय स्वाहा॥ ४० ॥ प्रायासाय स्वाहा ॥४१॥ संयासाय स्वाहा ॥४२॥ वियासाय स्वाहा ॥४३॥ उद्यासाय स्वाहा ॥४४॥ शुचे स्वाहा ॥४५॥ शोचते स्वाहा ॥४६॥ शोचमानाय स्वाहा ॥ ४७ ॥ शोकाय स्वाहा ॥४८॥ तपसे स्वाहा ॥ ४९ ॥ तप्यते स्वाहा ॥ ५० ॥ तप्यमानाय स्वाहा ॥ ५१ ॥ तप्ताय स्वाहा ॥५२॥ घर्माय स्वाहा ॥ ५३ ॥ निष्कृत्यै स्वाहा ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्यै स्वाहा ॥ ५५ ॥ भेषजाय स्वाहा ॥ ५६ ॥ यमाय स्वाहा ॥ ५७ ॥ अन्तकाय स्वाहा ॥ ५८ ॥ मृत्यवे स्वाहा ॥ ५९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥ ६१ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ६२ ॥ द्यावापृथिवीभ्या॑ स्वाहा ॥ ६३ ॥ यजु० अ० ॥ ३९ ॥

इन ६३ तिरसठ मन्त्रों से तिरसठ आहुति पृथक् २ दे के निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवें ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः । अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा

शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते । येभ्यो मधु प्रधावधि तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ २ ॥ ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः । ऋषींस्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् स्वाहा ॥ ३ ॥ तपसा ये अनाधृष्या-स्तपसा ये स्वर्ययुः।तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ ४ ॥ ये युद्ध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः । ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छता स्वाहा ॥५॥ स्योनास्मै-भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी। यच्छास्मै शर्म स प्रथाः स्वाहा ॥६॥ अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तन्निर्वहत परिग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार स्वाहा ॥७॥ यमः परोवरो विवस्वांस्ततः परं नातिपश्यामि किञ्चन। यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वा ततान स्वाहा ॥ ८ ॥ अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते। उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादद्दुद्दा मिथुना सरण्यूः स्वाहा ॥९॥ इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे। ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चावगच्छतात् स्वाहा ॥ १० ॥ अथर्व० कां० १८। सू० ॥ २ ॥

इन दश मन्त्रों से दश आहुति दे कर—

अग्नये रयिमते स्वाहा ॥ १ ॥ पुरुषस्य सयावर्यपेदघानि मृज्महे । यथा नो अत्र नापरः पुरा जरस आयति स्वाहा ॥२॥ य एतस्य पथो गोप्तारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ य एतस्य पथो-रक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ ख्यात्रे स्वाहा ॥ ६ ॥ अपाख्यात्रे स्वाहा ॥ ७ ॥

अभिलालपते स्वाहा ॥ ८ ॥ अपलालपते स्वाहा ॥९॥ अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥ १० ॥ यमत्र नाधीमस्तस्मै स्वाहा ॥११॥ अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ १२ ॥ आयातु देवः सुमनाभिरूतिभिर्यमो ह वेह प्रयताभिरक्ता । आसीदता-ऽऽसुप्रयते ह बर्हिष्यूर्जाय जात्यै मम शत्रुहत्यै स्वाहा ॥ १३ ॥ योऽस्य कौष्ठ्य जगतः पार्थिवस्यैक इद्दशी । यमं भङ्ग्यश्रवो गाय यो राजाऽनपरोध्यः स्वाहा ॥१४॥ यमं गाय भग्यङ्श्रवो यो राजा ऽनपरोध्यः । येनाऽऽपो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढा स्वाहा ॥ १५ ॥ हिरण्यकक्ष्यान्त्सुधुरान् हिरण्याक्षानयः शफान् । अश्वाननश्शतो दानं यमो राजाभितिष्ठति स्वाहा ॥ १६ ॥ यमो दाधार पृथिवीं यमो विश्वमिदं जगत् । यमाय सर्वमित्तस्थे यत् प्राणद्वायुरक्षितं स्वाहा ॥ १७ ॥ यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्चदशर्षयः । यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यथैक ऋषिर्विजानते स्वाहा ॥ १८ ॥ त्रिकद्रुकेभिः पतति षडूर्वीरे-कमिद्बृहत् । गायत्री त्रिष्टुप्छन्दाꣳसि सर्वा ता यम आहिता स्वाहा ॥ १९ ॥ अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत् । वैव-स्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यमः स्वाहा ॥ २० ॥ वैवस्वते विविचयन्ते यमे राजनि ते जनाः । ये चेह सत्ये नेच्छन्ते य उ चानृतवादिनः स्वाहा ॥ २१ ॥ ते राजन्निह विविच्यन्तेथा यन्ति त्वामुप । देवांश्च ये नमस्यन्ति ब्राह्मणांश्चापचित्यति स्वाहा ॥ २२ ॥ यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः । अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणा अनुवेनति स्वाहा ॥ २३ ॥ उत्ते तभ्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अहꣳ रिषम् ।

एताꣳ स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादनात्ते मिनोतु स्वाहा ॥ २४ ॥ यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्त्तव ऋतुभिर्यन्ति क्लृप्ताः । यथा न पूर्वमपरो जहात्येवाधा तरायूꣳषि कल्पयैषां स्वाहा ॥ २५ ॥ न हि ते अग्ने तनुवै क्रूरं चकार मर्त्यः । कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायुर्गौरिव । अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघं मृत्यवे स्वाहा ॥ २६ ॥ तैत्ति० प्रपा० ६ । अनु० १—१० ॥

इन छब्बीस आहुतियों को करके ये सब (ओं अग्नये स्वाहा) इस मन्त्र से ले के (मृत्यवे स्वाहा) तक एक सौ इक्कीस आहुति हुईं अर्थात् ४ जनों की मिल के ४८४ चारसौ चौरासी और जो दो जने आहुति देवें तो २४२ दो सौ बयालीस यदि घृत विशेष हो तो पुनः इन्हीं एक सौ इक्कीस मन्त्रों से आहुति देते जांय यावत् शरीर भस्म न हो जाय तावत् देवें जब शरीर भस्म हो जावे पुनः सब जने वस्त्रप्रक्षालन स्नान करके जिस के घर में मृत्यु हुआ हो उस के घर की मार्जन लेपन प्रक्षालनादि से शुद्धि करके पृष्ठ८—१४ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन शान्तिकरण का पाठ और पृष्ठ ४—८ में लि० ईश्वरोपासना करके इन्हीं स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से जहां अङ्क अर्थात् मन्त्र पूरा हो वहां स्वाहा शब्द का उच्चारण करके सुगंध्यादि मिले हुए घृत की आहुति घर में देवें कि जिस से मृतक का वायु घर से निकल जाय और शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे और सब का चित्त प्रसन्न रहै यदि उस दिन रात्रि हो जाय तो थोड़ी सी देकर दूसरे दिन प्रातःकाल उसी प्रकार स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से आहुति देवें तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो तब मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जा कर चिता से अस्थि उठा के उस श्मशान भूमि में कहीं पृथक् रख देवे बस इस के आगे मृतक के लिये कुछ भी कर्म कर्तव्य नहीं है क्योंकि पूर्व (भस्मान्तꣳ शरीरम्) यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थिसंचयन से पृथक् मृतक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्तव्य नहीं है हां यदि वह संपन्न हो तो अपने जीते

जी वा मरे पीछे उन के सम्बन्धी वेदविद्या वेदोक्त धर्म का प्रचार अनाथपालन वेदोक्त धर्मोपदेश की प्रवृत्ति के लिये चाहे जितना धनप्रदान करें बहुत अच्छी बात है ॥

इति मृतकसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्यस्य वेदविहिताचारधर्मनिरूपकस्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः कृतौ संस्कारविधिर्ग्रन्थः पूर्त्तिमगात् ॥

नगयुगनवचन्द्रे विक्रमार्कस्य वर्षे-
सासितदलसहस्ये सोमयुग्युग्मतिथ्याम् ।
निगमपथशरण्ये भूय एवात्र यन्त्रे
विधिविहितकृतीनां पद्धतिर्मुद्रिताभूत् ॥ १ ॥

शुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३	१	मनो	नमो
१२	५	रुद्रभिः	रुद्रेभिः
२१	१७	चपने२	अपने २
२६	३	०	इदं प्रजापतये
३८	१४	मं० ११	मं० १०
४१	१६	दृढ	दृढ़
४२	३	सर्वनः	सर्वनः
४७	५	पुंसा	यदा पुंसा
४८	१९	सुपुत्रः	सुपुत्रः
५३	११	सात	छः
५६	१९	द्रोण	द्रोणा
५६	२३	किंवदूद्रा	किंवदूभ्यः
६३	११	भूरे	भूरेः
६३	१६	मन्त्रों	मन्त्र
६८	१०	उदन्तु	उन्दन्तु
७४	२४	साङ्गा	साङ्गो
७९	२१	ब्राह्मण	(ब्राह्मण)
८०	२४	अददातु	आददातु
८०	२४	वाचत्ता	वाधत्तां
८७	२०	प्राणापानौ	प्राणापानौ
११२	१	रूपमन्नाद्यम्	रूपमन्नाद्यम्
१२४	६	बठा	बैठा
१२६	१८	इनन्न	इदन्न
१३२	३२	कर्त्ता	वर्त्ता
१३४	५	शरतम्	शतम्
१३४	१९	बध	वधू
१४३	१५	अभावने	अभावसे
१५४	१४	गृहे	गृहे
१५७	२	पं	रूपं
१५८	७	त्वयि	त्वयि
१६६	१७	शोते	सोते
१७०	२	नृवन्तः	नृवन्तः
१७१	८	हाथसे पकड़े	हाथसे न पकड़े
१७५	५	म	में
१७५	१७	लिचे	लिखे
२०३	१८	सत्यानृने	सत्यानृते
२०६	२	तृनीयंम्	तृतीयम्
२०९	२३	स्वाहा	०
२१२	४	ऋतनवाकेन	ऋतनवाकेन
२१४	११	कृधीन्द्रायेन्द्रो	कृधीन्द्रायेन्द्रो
२१५	१६	पतयो	पतयो
२१५	२४	निषेदुरग्ने	निषेदुरग्ने
२२८	४	प्रजापनेर्वा	प्रजापतेर्वा
२२८	४	विक्रमानन्नु	विक्रमाननु
२४४	१६	वैवश्वतो	वैवस्वतो

इति

विज्ञापन

श्रीमती वैदिकयन्त्रालय प्रबन्धकर्तृसभा ने आज्ञा दी है कि आगे को बिना मूल्य किसी को भी पुस्तक न भेजे जावें अतः सर्व महाशयों से प्रार्थना है कि जो पुस्तक मंगाना चाहें नकद मोल भेज कर मंगा लें ।

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य टीक भेज कर मंगावें (२) टीक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डांक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा । ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक को आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१२५	४५)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	२८)	
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	मू०	डा०
बिना जिल्द की	२)	≠)
„ जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	‌=)	)॥
सन्धिविषय	।≠)॥	)॥
नामिक	।≠)॥	)॥
कारकीय	।=)॥	)॥
सामासिक	।≠)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	।≠)	-)
अव्ययार्थ	≠)॥	)॥
सौवर	≠)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	≠)॥
पारिभाषिक	≠)॥	)॥
धातुपाठ	।≠)	)॥
गणपाठ	।=)	)॥
उणादिकोष	॥≠)	-)
निघण्टु	।≠)	)॥
अष्टाध्यायी मूल	।=)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≠)	)॥
व्यवहारभानु	≠)	)॥

	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
मेलाचांदापुर	=)	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	=)	)॥
गोकरुणानिधि	=)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	≠)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	≠)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	=)	)॥
आर्य्याभिविनय	।)	-)
„ जिल्द की	।≠)	=)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	-)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	=)॥	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	≠)॥	)॥
„ जिल्द की	।≠)॥	-)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)॥
सत्यार्थप्रकाश छपता है		
संस्कारविधि	१॥)	≠)